प्रीति है राह मुक्ति की

बाउल फकीरों के गीतों पर सदगुरु मा ओशो प्रिया जी द्वारा आस्था टी. वी. चैनल पर दिए गए 34 सहज–स्फूर्त प्रवचनों का संकलन

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा
131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

अनुक्रमांक

अध्याय	विषय	पृष्ठ
00	दो शब्द	04
01.	प्रभु दर्शन नहीं, प्रभु मिलन!	06
02.	गुरु–द्वार से प्रभु में प्रवेश	16
03.	जीवन का परम उद्देश्य क्या?	22
04.	जीवंत प्रकृति में छिपा प्रभु	28
05.	परम स्वर रूपी परमेश्वर	34
06.	सत्संग की महिमा	40
07.	मुर्शिद ही इकलौता सहारा	46
08.	कौन है अनजाना मानुष?	54
09.	साकार या निराकार?	60
10.	उसका प्रेम कैसे पाऊँ?	66
11.	मूल को भूलने की भूल	72
12.	प्रीति : रसवंती दासी सी	78
13.	ब्राह्मण : जो ब्रह्म को जाने	86
14.	साधना या नियति को मानना?	94
15.	अनाक्षर में एकाक्षर को जानो	100
16.	प्रीतम की पदचाप सुनो	106
17.	अर्धनारीश्वर है अस्तित्व	114
18.	जीवन का सम्मान	120
19.	रोशनी जपने से अंधेरा मिटेगा?	128
20.	त्रिवेणी संगम में ज्ञानोदय	134
21.	काठ की नहीं, श्वासों की माला	140
22.	प्रवृत्ति–निवृत्ति–सम्वृत्ति	146
23.	कौन मेरा, मैं किसका?	154
24.	देह : परमात्मा की पवित्र भेंट	160
25.	गुरु : अंधकार–हर्ता	166
26.	मुर्शिद ही अल्लाह है	172
27.	कौन मालिक, कौन गुलाम?	178
28.	फकीरी का सार	184
29.	प्रेम–प्रेम में भेद	190
30.	गुरु चरणों में प्रभु मिल	196
31.	शून्य में उतरता है पूर्ण	202
32.	प्रेम में गिरना नहीं, उठना	208
33.	दीया बिना उजियारा	214
34.	परम बन्धु : अवर्णनीय	220

दो शब्द

जीवन को अत्यंत प्रेम व सम्मान करने वाले, आनंद–उत्सव में जीने वाले अदभुत बाउल फकीरों द्वारा गाए प्यारे गीतों में साधना के गहन सूत्र छिपे हैं। जिस खजाने की ये चाबियां हैं, वह सम्पदा हम सबके भीतर विद्यमान है।

हृदय की सहज स्फुरणा से जन्मे ये गीत, साहित्यिक कविताएं नहीं हैं। बाउल तो बावरे, अर्थात् दीवाने होते हैं। परमात्मा की मदिरा पीने वाले भाव–विभोर मस्ताने होते हैं। अपने प्रियतम का जिक्र करने वालों को शब्दों और मात्राओं की कहां फिक्र!

आलोचक के नजरिये से इनमें भाषा और व्याकरण की त्रुटियां मत खोजना, वरना चूक जाओगे। उपमाएं तो साधारण जीवन की हैं, लेकिन उनके माध्यम से जिस ओर इशारे किये जा रहे हैं; वे असाधारण, अद्वितीय, असीम, अकथनीय, शब्दातीत सत्य हैं।

अध्यात्म को समझने में बुद्धि काम नहीं आती। इन गीतों के भावों को हृदयंगम करना। सिर्फ दिमाग से ही नहीं, दिल से भी समझा जाता है। समझने का यही भावनात्मक तरीका ही संतों की, बुद्धों की, फकीरों की, जिनों की, भक्तों की पारलौकिक वाणी से जोड़ निर्मित कर पाता है।

इन गीतों में बाउलों की आंतरिक अनुभूतियां प्रगट हुई हैं। यद्यपि दिव्य

अनुभूतियां तो सभी को समान होती हैं, किंतु अभिव्यक्तियां बड़ी भिन्न-भिन्न शैलियों में होती हैं। इन अनूठे नाचते-गाते-बजाते संतों का अंदाज भी बेजोड़ और निराला है! शायद पृथ्वी के अन्य किसी कोने में परमात्मा इस भांति प्रगट नहीं हुआ, जैसा बंगाल की धरती पर हुआ-- ज्ञान+भक्ति+कर्म की उत्सवमयी त्रिवेणी बनकर अवतरित हुआ!

ध्यान यानी निर्विचार जागृति को साधने से शांति घटित होती है। शांतिपूर्ण हृदय में अलौकिक प्रीति उमगती है। प्रीति शुद्धतर होते-होते श्रद्धा, शिष्यत्व, समर्पण-भावना और अंततः भक्ति में रूपांतरित हो जाती है। पराभक्ति से मुक्ति फलित होती है। संक्षेप में बस यही है धर्म का मार्ग, यही है परम युक्ति--

जागृति-शांति-प्रीति-भक्ति-मुक्ति।

आएं; हम जहां हैं, वहां से अगला कदम उठा लें।

हरि ओम् तत्सत्। जय ओशो।

-मा अमृत प्रिया

प्रभु–दर्शन नहीं, प्रभु–मिलन!

तूई तारे धोरबी कैमोन कोरे
बेद बिधीर उपोर बोशे आछे शे
शौप्तो तालार पौरे।।
बौड़ो निगुम धौरे बोशे आछेन साँई
शेथा चौन्द्रोशुर्जेर ओधिकार नाई (हायरे)
(ओ) तार आपोन रूपे आलो कोरे
बोशेछे मोन्दिरे।।
(ओ) तार हौस्तो नाइ–धोरिते पारे
नौयोन नाइ–देखे शौबारे (हायरे)
चौरोन नाइ–चोलिते पारे जेथा मोने कौरे।।
जाने चौक्रोभेदी शिक्खा जारा
धोरले धोरते पारे तारा
चोण्डी बौले ओ पाशोंडो तूइ
रोलि ना शे घौरे।।

अर्थात् कैसे धरेगा उसको रे तू? कैसे उसे तू पकड़ पायेगा, जान पायेगा? क्योंकि वह तो समस्त वेद-विधि के ऊपर है। उसका आसन तो सप्त तल के पार है

साँई तो निर्गुण-विराट में समाये हैं जहाँ सूर्य-चंद्र का प्रवेश भी नहीं होता। जो स्वयं प्रकाशित है और मंदिर-घट में वास है उसका।

उसके हाथ नहीं परंतु सबको धारण किये हुए है। उसके नयन नहीं किंतु सब कुछ देखता है। चरण नहीं, पर हर जगह आता-जाता रहता है। चक्रभेदन की कला जिसने अपने सद्गुरू से जानी है वही उसे जान सकता है।

चण्डीदास कहते हैं रे पाशण्ड! अहंकार का त्यागकर और एक बार उसके घर जाकर तो देख; उस परम वस्तु की प्राप्ति तुझे भी होगी।

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

प्रसिद्ध बाउल फकीर और आज के इस प्यारे गीत के रचनाकार–चण्डी गोसाँई गाते हैं–

'तूई तारे धोरबी कैमोन कोरे
बेद बिंधीर उपोर बोशे आछे शे
शौप्तो तालार पौरे।।'

जो समस्त विधि–विधानों के परे है; उस परम तत्व को तू कैसे स्पर्श करेगा, हाथों में पकड़ेगा, देखेगा, सुनेगा, जानेगा? सप्ततलों के पार भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, जिसका हम दर्शन कर सकें। भगवान तो समग्र शक्ति का नाम है। वह दृश्य नहीं, जिसका दीदार मुमकिन हो, किंतु उसका अनुभव 'स्व–बोध' के रूप में कर सकते हैं। भगवान है संपूर्ण अस्तित्व का नाम, भगवान है 'होने–मात्र' का नाम; यह जीवन ही प्रभु है।

ज्ञानी उसे सत्य कहते हैं, भक्त उसे भगवान कहते हैं। सत्य, रूखा–सूखा सा, गणित और विज्ञान की भाषा जैसा लगता है। भगवान, प्रियतम, प्रभु, ईश्वर, परम–बंधु; ये भाव भरे, प्रीतिकर संबोधन हैं। इनसे आत्मीयता का बोध होता है।

आंखों से उसे देख नहीं सकते, मगर आंखों के माध्यम से देखने वाले के रूप में उसे महसूस कर सकते हैं। अगर कोई दूसरा हो, दूरी हो; तो देखना संभव है। द्रष्टा को भला द्रष्टा खुद कैसे देखेगा! परमात्मा का दरश–परस नहीं किया जा सकता, परमात्मा में डूबा जा सकता है, उसके साथ एक होकर उसे जाना जा सकता है। प्रभु का दर्शन नहीं, मात्र अनुभूति होती है। 'सव' में 'सर्व' और 'सर्व' में 'स्व' की प्रतीति होती है। एकात्मीयता घटित होती है।

जैसे हमारे भीतर हमें प्रेम की अनुभूति होती है। प्रेम–भाव हमारे भीतर है, हम अनुभव तो कर सकते हैं; मगर क्या हम उसका दर्शन कर सकते हैं? नहीं, यह अनुभव की बात है। उस सदभावना के के संग एकाकार हुआ जा सकता है, लेकिन दर्शन नहीं किया जा सकता। ऐसे ही भगवान का अनुभव, भगवान के साथ एक होकर किया जा सकता है। वह कैसे हो? चण्डी गोसाँई बताते हैं–

'बौड़ो निगुम धौरे बोशे आछेन साँई, शेथा चौन्द्रोशुर्जेर ओधिकार नाई (हायरे)
(ओ) तार आपोन रूपे आलो कोरे, बोशेछे मोन्दिरे।।'

साँई तो निर्गुण–विराटाकाश हैं, जहां स्वयं सूर्य–चंद्र का प्रवेश भी नहीं होता। जो स्वयं प्रकाशित है और मंदिर–घट में वास है उसका। प्रभु गुणरहित है यानी

तमस–रजस–सत्व के पार है। आकारहीन है, और इसीलिए समस्त विराट अस्तित्व में समाया हुआ है। यानी वो सब जगह है, केवल उसे देखने भर की अंतदृष्टि चाहिए, उसे पकड़ने की सूक्ष्म कला चाहिए। ये चर्मचक्षु और स्थूल हाथ काम न आएंगे। वह कला कैसे आए? जैसे ही पकड़ने की कला और आंख आती है, सभी दिशाओं में उसकी उपस्थिति प्रगट हो जाती है।

रात्रि में देखा होगा...अन्यथा एक बार जरूर देखो...बाहर निकलो घर से, और रात तारों से भरे आकाश को एकटक देखो। सोचो मत तारों के बारे में, लगातार देखो। और तुम पाओगे, अचानक कोई रहस्य खुल गया, अनायास प्रवेश द्वार मिल गया, सब कुछ ठिठक गया, थम गया। और भीतर एक अद्भुत, अपार, आनंद बरस गया। ऐसे अवाक, सजग, संवेदनशील क्षण में परमात्मा का द्वार खुल जाता है।

प्रभु के प्रवेश द्वार पर पर्दा नहीं है, केवल हम पर विचारों का पर्दा है। हम जहां होते हैं, वहां होना हमें नहीं आता। जब हम किसी को देखते हैं तो हम उस व्यक्ति को ही नहीं देखते। भीतर बहुत कुछ और भी चलता रहता है। कुछ अतीत, कुछ भविष्य! इसीलिए वर्तमान से चूक जाते हैं।

'नजरें तो टिकी हुई थी चांद और सितारों पर।
खुद अपने ही आंगन की जमीं पर फिसल गए।।
दूर–दूर खोजा करतीं, जिन्हें निगाहें
अफसोस बहुत पास से, वो मेरे निकल गए।।'

क्योंकि उस वक्त हम कुछ और सोच रहे होते, आंख कहीं देख रही होती, मन कहीं और होता। आंख किसे देख रही है, सोच किसी और के विषय में रहे हैं हम। काश, हम दर्शन मात्र कर पाते... केवल हम देखने वाले हो जाते, शुद्ध दर्शन रह जाता, तो उस समय परम जीवन का द्वार खुल जाता। प्रभु–अनुभूति का रहस्य हम पर बरस जाता। वर्तमान में होने की कला, अभी और यहीं होने की कला सीखनी होगी।

एक बार की बात है, एक धर्म का खोजी किसी गुरु के पास जाता है। कहता है कि मैं धर्म को जानना चाहता हूं, प्रभु को पाना चाहता हूं। गुरु ने पूछा कि क्या तुमने कभी जलप्रपात की ध्वनि सुनी है? झरना बरसता हुआ, पानी प्रवाहित हो रहा... कल–कल–कल... या बरसात की ध्वनि सुनी है– रिमझिम रिमझिम? भोर में तुमने कभी चिड़ियों का संगीत सुना है?

उस धार्मिक खोजी ने कहा, ठीक मेरे घर के पास ही एक पर्वत है और वहां से झरना गिरता है। किंतु उसे तो मैंने कभी गौर से सुना नहीं। गुरु ने कहा, अरे, तब तो वहीं से शुरू करो! उसे सुनना शुरू करो, उसे सुनते-सुनते तुम पाओगे कि खजाना मिल गया तुम्हें। राज खुल गया। बस वहीं से प्रवेश करो, वह ध्वनि ही प्रभु-मंदिर का प्रवेश द्वार है। किसी अन्य मंदिर, तीर्थ आदि जाने की आवश्यकता नहीं है। सजगतापूर्वक, प्रेमपूर्वक, संवेदनशील बनकर सुनो। क्रमशः भीतर विचारों का जंजाल क्षीण होने लगेगा। शीघ्र ही निर्विचार जागृति के पलों में परमानंद बरसेगा! सच ही प्रवेश द्वार इतना ही निकट है- पहाड़ से गिरते झरनों में, हवाओं में डोल रहे वृक्षों के पत्तों में, सागर पर नाच रही सूरज की किरणों में। पर हर प्रवेश द्वार पर पर्दा है और बिना उठाये वह उठता नहीं है। वस्तुतः वह पर्दा प्रवेश-द्वारों पर नहीं है, वह हमारी दृष्टि पर ही है और इस भांति एक परदे ने अनंत द्वारों पर परदा कर दिया है।

ओशो कहते हैं कि 'मैं तो प्रकृति में ही परमात्मा को देखता हूं। प्रतिक्षण, प्रतिघड़ी उसका मुझे अनुभव हो रहा है। एक श्वास भी ऐसी नहीं आती-जाती है, जब उससे मिलना न हो जाता हो। जहां भी आंख पड़ती है, देखता हूं कि वह उपस्थित है और जहां भी कान सुनते हैं, पाता हूं कि उसका ही संगीत है। फूल जब खिलते हैं तो मैं जानता हूं ईश्वर खिला। और जब रात तारों से भर जाती है तो मैं जानता हूं ईश्वर ही अनंत-अनंत तारों में छितर गया है। मेरा ईश्वर एक काव्य है। मेरा ईश्वर एक संगीत है। तुम्हें अगर मेरे ईश्वर से परिचित होना है तो प्रकृति के करीब आओ, क्योंकि मेरा ईश्वर प्रकृति में ही छिपा है; प्रकृति उसका घूंघट है। उठाओ घूंघट और तुम मालिक को पाओगे। जहां भी घूंघट उठाओगे उसी को पाओगे।'

उस आंतरिक चैतन्य लोक के विषय में जीसस कहते हैं कि 'प्रभु के राज्य में समय नहीं है'। गुरु नानक कहते हैं कि 'नानक सुन्न समाधि में, नहीं सांझ, नहीं भोर।' इसी सत्य को उपमा देकर चण्डी गोसाईं कहते हैं कि वहां चांद-सूरज नहीं उगते-डूबते, दिन रात नहीं होते।

'चलहु सखी वहिं देस, जहवां दिवस न रजनी।
पाप पुन्न नहीं चांद सुरज नहीं, नहीं सजन नहीं सजनी।।'

उस देश में वहां जाना है, जो कि समय के पार है। जहां काल का प्रवेश नहीं है। वो देश कहां है? वो देश जब हम आंखें बंद करते हैं, बंद आंखों से अपने अंतर्जगत के पार, निराकार आकाश में पाते हैं कि वही देश है हमारा। और जब हमें वहां ठहरने की कला आती है, वहां पर उस परमात्मा की अनुभूति होती है, उस परमात्मा के दर्शन होते हैं। जिसको संत कहते हैं–

वडा मेरा गोविंद अगम अगोचर आद निरंजन निरंकार जीउ।

ता की गति कही न जाई अमित वडिआई मेरा गोविंद अलख अपार जीउ।'

इतना विराट है मेरा गोविन्द, उसके बारे में क्या कहें? अलख है, निरंजन है। इन इंद्रियों से नहीं देखा जाता और इतना विराट है, कि सर्वत्र है। लेकिन उसकी अनुभूति पहले अपने भीतर होती है। और फिर सर्वत्र प्रकृति में उसकी अनुभूति होती है।

'तार हौस्तो नाइ–धोरिते पारे

नौयोन नाइ–देखे शौबारे

चौरोन नाइ–चोलिते पारे जेथा मोने कौरे।'

उसके हाथ नहीं, पर सबको धारण किए हुए है। नयन नहीं, पर सब कुछ देखता है। चरण नहीं, पर हर जगह आता–जाता रहता है।

'बिनु पग चलै, सुनै बिन काना'

पैर नहीं, फिर भी चलता है। आंख–कान नहीं, फिर भी सब देखता–सुनता है। सुरति–निरति की अतीन्द्रिय क्षमता चेतना में मौजूद है। धर्म की परिभाषा ही यही है कि जो हमें धारण किए हुए है। धर्म वो नहीं जो हमने बनाया है, धर्म वह नहीं है जो हमने किताबों में पढ़ा है, ग्रंथों में लिखा है। धर्म का कोई शास्त्र नहीं है। धर्म की एक अनलिखी किताब है, बस; उसका नाम है– 'अस्तित्व'। उस किताब का एक पन्ना सूरज है। उस किताब का दूसरा पन्ना हवाएं हैं, उस किताब के अनंत पन्ने सारी प्रकृति छटके हैं। सारा जीवन उसकी पुस्तक है। जिंदगी उसकी किताब है, मनुष्य की छापी हुई किताबें उसकी नहीं। और ये जो अल्लाह, भगवान, प्रभु या गॉड कहो...ये पूरे विश्व की, जगत की जो धक–धक है...ये जो धड़कन है, वही तो ईश्वर है।

कोयल जब गाती है, तो जिसने उस धड़कन को महसूस किया है, उसने प्रभु को महसूस किया। कोयल थोड़ी गा रही...उनके लिए परमात्मा ही गाता है। पंछी के मधुर गीत; गीता, उपनिषद और वेद को भी मात कर जाते हैं। जलप्रपात की आवाज, कुरान और

बाईबिल को मात कर जाती है। जिसे सुनने की कला आ गई है, जिसे डूबने की कला आ गई है; उसके जीवन में धर्म का स्वाद आ जाता है, प्रभु का अवतरण होता है।

'जाने चौक्रोभेदी शिक्खा जारा, धोरले धोरते पारे तारा
चोण्डी बौले ओ पाशोंडो तूइ, रोलि ना शे घौरे।।'

अपने सद्गुरू से चक्रभेदन की कला जिसने सीखी है, वही उसे जान सकता है। चण्डीदास कहते हैं– 'रे पाशण्ड! अभिमान को त्याग, एक बार उसके घर जाकर तो देख; वह परम वस्तु की प्राप्ति तुझे भी होगी।'

चक्रभेदन की कला से तात्पर्य है कि हमारे शरीर में जो सोए हुए चक्र हैं, कैसे वे चक्र खुलें? कैसे सक्रिय हों? उसकी विधि गुरु हमें देता है? इन चक्रों के माध्यम से शरीर और चेतना का संपर्क है। इन कान्टेक्ट फील्ड्स से, जब उस बिन्दु पर हम पहुंचते हैं, वहां से चेतना में छलांग, आत्मा में प्रवेश संभव है। और जिस घड़ी आत्मा में प्रवेश हुआ, परमात्मा बरस जाता है हम पर। ब्रह्मानुभव हो जाता है। परमात्मा का दर्शन वहां हो जाता है। ये चक्र द्वार हैं आत्मा में प्रवेश के। आत्मा में प्रवेश लेकर वहां से प्रभु का स्वाद उपलब्ध होता है।

अहंकार का त्यागकर और एक बार उसके घर यानि अपने अंदर जाकर देख। एक ही बाधा है– अहंकार। अहंकार ही एक ऐसी किरकिरी है, जिससे कि परमात्मा का दिखना हमें बंद हो गया है। अहंकार रूपी चश्मा के माध्यम से ये सारा जगत, ये सारी प्रकृति हमें संसार की तरह दिखती है। और जिस दिन ये चश्मा उतर जाए, हमारी आंखें बिना चश्मे की, बिना धारणाओं की हो जाएं, बिना ज्ञान की, बिना पूर्वाग्रह की, बिना जानकारी की हो जाएं, उस दिन परमात्मा का दर्शन पल–प्रतिपल होता है।

हे सर्वेश्वर! हे साकार; बरस रहा है तेरा प्यार!! प्रतिपल बरस रहा है उसका प्यार, प्रकृति के माध्यम से, पत्तों के माध्यम से, फूलों की सुगंध के माध्यम से, बरसात के माध्यम से, धूप के माध्यम से, चांदनी के माध्यम से, हवाओं के माध्यम से। लेकिन अहंकार को कैसे छोड़ें? हम तो अहंकार का छाता लगाकर बैठे हैं। ये अहंकार कैसे छूटे? जिस दिन ये अहंकार छूटा, हम पाते हैं सारा अस्तित्व हमारा घर है। अहंकार का मतलब हमने अपने आप को अलग–थलग समझ लिया। हम अस्तित्व से टूट गए हैं– ऐसा मान लिया। कैसे ये जोड़ फिर से बन जाए? हमने ही तो काल्पनिक लक्ष्मण रेखा खींची है।

संत जार्ज गुरजिएफ एक घटना का वर्णन किया करते थे कि कजाकिस्तान के एक गरीब कबीले में वे गए और वहां पर देखते हैं कि उस कबीले में माताएं जब काम करने के

लिए जाती हैं, तो अपने बच्चे के आस–पास एक रेखा खींच देती हैं, और कहती हैं कि इस रेखा के बाहर तुम नहीं निकल सकते बेटे, और बच्चा कभी नहीं निकलता। दिन भर बच्चा उस रेखा–वर्तुल के भीतर ही रहता है, सारे खतरों से दूर। बच्चा ऐसा हिप्नोटाईज्ड हो जाता है, सम्मोहित हो जाता है कि वो उस रेखा के पार जा ही नहीं सकता। इस तरह माताएं आराम से निश्चिंत होकर काम करती हैं, और शाम को जब लौटती हैं, तो बच्चों को सुरक्षित रेखा के भीतर पाती हैं।

बरसों बाद गुरजिएफ उस कबीले मे फिर से गया और उसने देखा कि अभी भी वह परंपरा जारी है। तब उसने एक सत्तर साल के वृद्ध को कहा कि आओ, तुम भी इस रेखा के भीतर आकर देखो। अब क्या तुम बाहर निकल सकते हो? वो सत्तर साल का वृद्ध उस रेखा को पार नहीं कर पाया। भीतर उसके अवचेतन में ऐसा बैठ गया है, वो रेखा इतनी मायने रखती है उसके लिए कि उसे पता है कि उस रेखा को वो पार ही नहीं कर सकता। गुरजिएफ ने बहुत कोशिश की, पकड़ के खींचने की कोशिश की, लेकिन कुछ ऐसा होता था कि वो बूढ़ा फिर–फिर पीछे हट जाता, और वही बूढ़ा नहीं, सारे कबीले के युवा, बूढ़े, बच्चे सभी, उनके भीतर ऐसा सम्मोहन बैठ गया है। कबीले की कोई स्त्री जब आकर रेखा मिटाती है, तब वे लोग बंधन से बाहर निकल पाते हैं।

ऐसे ही तो हमारे भीतर समाज ने सम्मोहन भर दिया है। हम बच्चे थे, हमारे भीतर एक रेखा खींच दी गई, तुम इस जाति के हो, इस वर्ण के हो, इस कुल के हो, तुम्हें बड़े होकर ऐसा नाम रोशन करना है, ये बनना है, वो बनना है। इस तरीके से उन्होंने हमारे सामने रेखा खींच दी अहंकार की। और इस रेखा से जिंदगी भर हम बाहर नहीं आ पाते। जिस दिन हम इस अहंकार की रेखा को पार कर जाएं, उस दिन हम पाते हैं अस्तित्व के साथ अभेद हो गए। एकत्व की अनुभूति से भर गए, और जीवन धन्य–धन्य हो गया। हां, एक भेद स्मरण रखना– तथाकथित विनम्रता को अहं–मुक्ति न समझ लेना। निरअंहकारिता सच्चा सिक्का है, विनम्रता झूठा सिक्का है। इंसान और भगवान के बीच की हवाई दीवार, यह काल्पनिक लक्ष्मण रेखा, अहंकार का मिथ्या घेरा क्या है? आएं, इस सूक्ष्म अंतर के संबंध में परमगुरु ओशो के प्रज्ञा–वचन सुनें–

'दुनिया में कुछ चीजें हैं जो तुम संकल्प से न कर सकोगे। और उन्हें ठीक–ठीक समझ लेना, अन्यथा जीवन में भूल होती ही चली जाती है। जैसे, निरहंकार–भाव तुम संकल्प से पैदा न कर सकोगे। विनम्रता पैदा

कर सकते हो। दोनों एक–से लगते हैं। निरहंकार–भाव चेष्टा से, उपाय से, आयोजन से नहीं होता। निरहंकार–भाव कोई चरित्र का लक्षण नहीं है– चरित्र से मुक्ति है। क्योंकि सब चरित्र अहंकार के आसपास होता है– बुरे आदमी का चरित्र भी और अच्छे आदमी का भी। असाधु भी और साधु भी, दोनों अहंकार पर जीते हैं। संत वह है जो अहंकार के बाहर जीता है। निरहंकार–भाव की कोई साधना नहीं हो सकती। लेकिन अगर तुम साधना करोगे तो तुम विनम्रता जरूर पैदा कर सकते हो। विनम्रता संकल्प के भीतर है; और विनम्रता निरहंकार–जैसी मालूम होती है, यही खतरा है।

दुनिया में असली खतरा उन चीजों से है, जिनसे धोखा पैदा होता है। अहंकार से बड़ा खतरा नहीं है, क्योंकि अहंकार तो साफ है कि अहंकार है। उससे खतरा क्या होगा? जहर की बोतल है, जहर का 'लेबल' भी है। विनम्रता से खतरा है– बोतल जहर की है, 'लेबल' अमृत का है। और विनम्रता से खतरा है, क्योंकि विनम्रता निरहंकारिता जैसी मालूम होती है। बस मालूम होती है, असली नहीं है। क्योंकि विनम्रता साधी जा सकती है। और निरहंकार–भाव उतरता है– प्रसाद है। जब तुम मिट जाते हो तब आगमन होता है उसका। तुम चेष्टा करते रहते हो तो जो बना पाते हो चेष्टा से, वह विनम्रता है। विनम्रता अहंकार है– शीर्षासन करता हुआ। निरहंकार–भाव अहंकार का विसर्जन है।

तुमने प्रसिद्ध वचन सुना है न : 'सत्यमेव जयते'। सत्य जीतता है। परमात्मा जीतता है। झूठ कितने ही भरोसे दिला दे, जीत नहीं सकता। और अहंकार सबसे बड़ा झूठ है। और सब झूठ उसकी संतान हैं; वह महापिता है। जैसे ब्रह्मा ने जगत रचा, ऐसे अहंकार ने सारे झूठों का संसार रचा है। एक झूठ को सम्हालने के लिए हजार झूठों के सहारे लेने पड़ते हैं।

तुमने देखा ही होगा, एक झूठ बोलो और मुश्किल शुरू हुई। फिर दस झूठ बोलने पड़ते हैं उसे बचाने को। फिर उन दस झूठों को बोलने के लिए और हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर झूठ से झूठ– और तुम फंसते जाते हो, उलझते जाते हो। सच बोलो, फिर तुम्हें कुछ भी फिकर नहीं करनी पड़ती। इसलिए झूठ वही आदमी बोल सकता है जिसके पास अच्छी स्मृति हो। नहीं तो झूठ बोलना बड़ा मुश्किल है। स्मृति कमजोर हो तो झूठ मत बोलना क्योंकि बड़ी याददाश्त रखनी पड़ती है– किससे क्या कहा। सब हिसाब रखना पड़ता है। स्मृति ठीक न हो तो सच ही बोलना; उसमें याद

नहीं रखना पड़ता। सच तो याद रखना ही नहीं पड़ता। सच तो सच है– ज्यूं का त्यूं ठहराया– अब उसमें याद क्या रखना है? अगर सुबह छह बजे सुबह हुई थी और तुमने कहा, सुबह छह बजे सुबह हुई थी, तो याद क्या रखना? लेकिन किसी से कहा, सुबह सात बजे सुबह हुई थी, और किसी से कहा सुबह आठ बजे सुबह हुई थी, और किसी से कहा सुबह नौ बजे सुबह हुई थी– अब मुश्किल में तुम पड़ोगे। अब तुम्हें याद रखना पड़ेगा कि तीनों कहीं आपस में न मिल जाएं, कहीं एक–दूसरे से बात न कर लें, कहीं इनको पता न चल जाए! और फिर तुम्हें याद रखना पड़ेगा– किससे क्या कहा है?

सत्य सीधा–साफ है। झूठ जटिल है। और सबसे बड़ा झूठ क्या है संसार में? सबसे बड़ा झूठ है कि मैं हूं। क्यों कहता हूं कि सबसे बड़ा झूठ है यह? क्योंकि यह वस्तुतः है ही नहीं। परमात्मा है, तुम नहीं हो। न मैं हूं, न तुम हो– परमात्मा है। न वृक्ष हैं, न पहाड़ हैं, न पर्वत हैं– परमात्मा है। न चांद है, न तारे हैं– परमात्मा है। यहां एक का ही आवास है। उस एक की ही हजार–हजार तरंगें हैं, रूप हैं, रंग हैं, ढंग हैं। वही अभिव्यक्त है। ये सब लहरें उसी एक सागर की हैं। मगर हर लहर दावा कर रही है कि मैं हूं, यह भी दावा है कि मुझसे बड़ी कोई लहर नहीं। यह भी दावा है कि मुझसे बड़ी कोई लहर को होने भी न दूंगी। और यह भी दावा है कि टिकूंगी और रहूंगी और सदा के लिए स्थान बनाकर रहूंगी। अमर हो जाऊंगी। बस झूठों का जाल शुरू हुआ। हार न होगी तो क्या होगी?'

अहंकार को गलाने की, मिटाने की विधि है प्रेम। प्रेम ही बाउल फकीरों का एकमात्र साधन है, साध्य है, मार्ग है और मंजिल भी है। प्रेम परमात्मा का द्वार है। प्रेम की पराकाष्ठा ही परमात्मा की अनुभूति है। प्रेम का फूल ही जब पूरी तरह खिलता है, तो जो सुवास उठती है, उस सुवास का नाम ही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं। परमात्मा अनुभूति है– तुम्हारे अंतरात्मा से उठती सुवास की। और डूबे बिना यह नहीं होगा। डूबने का क्या अर्थ? डूबने का अर्थ हैः अहंकार का विसर्जन। डूबने का अर्थ हैः मैं भाव को छोड़ देना। मैं भाव को जिन्होंने पकड़ा है, वे किनारे से अटके रह जाएंगे। मैं भाव को जिन्होंने पकड़ा है, वे ऐसी नावें हैं जिनकी जंजीरें किनारों से बंधी हैं। फिर तुम पतवार कितनी ही चलाओ, यात्रा नहीं होगी।

सदगुरु ओशो ने एक प्यारी कथा सुनाई है कि एक पूर्णिमा की रात्रि, कुछ शराबी खूब

पी गए और फिर नदी–तट पर गए। मांझी तो जा चुके थे घर नावों को बांध कर जंजीरों से। एक सुंदर सी नाव उन्होंने चुनी। पतवारें उठाईं, नाव को खेना शुरू किया। धुत थे नशे में। खूब पतवारें चलाईं। सर्द रात थी, लेकिन पतवारें चला–चला कर पसीने–पसीने हो गए। जब सुबह होने के करीब आई, थोड़ी ठंडी हवा के झोंके आए, थोड़ा नशा उतरा, तो किसी एक ने कहा कि जरा उतर कर तो देखो, हम न मालूम कितनी दूर निकल आए हों! रात भर हो गई है पतवार चलाते–चलाते, एक क्षण भी तो रुके नहीं हैं कहीं। अब लौटना भी होगा। घर पत्नी–बच्चे राह भी देखते होंगे।

तो एक उनमें से उतरा किनारे पर और फिर ऐसा खिलखिला कर हंसा कि अपना पेट पकड़ कर वहीं बैठ गया। दूसरों ने पूछा, बात क्या है? उसने कहा कि तुम भी आ जाओ! बात बताने की नहीं, जानने की है। वे भी उतर कर आए। जो उतरा वही हंसा। जो उतरा उसी ने अपना पेट पकड़ लिया और लोट–पोट होने लगा। सब उतर आए तब समझ में बात आई कि जंजीर खोलना तो भूल ही गए! पतवार तो रात भर चलाई, मगर इंच भर यात्रा न हुई।

और यह कहानी सिर्फ कहानी नहीं है, यह अधिकतम लोगों के जीवन का यथार्थ है। जीवन भर दौड़ते हो, पहुंचते कहां? पतवार तो बहुत चलाते हो, यात्रा कहां होती? मंजिल तो दूर, पड़ाव भी नहीं मिलते। और कारण? कारण है अहंकार। जोर से अपने को पकड़े हो। और जो अपने को पकड़े है वह परमात्मा को नहीं पा सकता। दोनों हाथ लड्डू नहीं हैं संभव। कारण है। तुम चाहो कि कमरे में अंधेरा भी रहे और रोशनी भी, यह नहीं हो सकता। यह जीवन के गणित के खिलाफ है। अंधेरा चाहते हो तो रोशनी नहीं, रोशनी चाहते हो तो अंधेरा नहीं। कोई समझौता नहीं हो सकता। समझौते की कोई विधि नहीं है कि दोनों साथ रहें। कोई सह–अस्तित्व नहीं हो सकता।

अहंकार अंधेरा है। परमात्मा प्रकाश है, नूर है, ओंकार का नाद है।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं– तमसो मा ज्योतिर्गमय। चलो अहंकार से ओंकार की ओर।

धन्यवाद। जय ओशो। हरि ओम् तत्सत्।

गुरु–द्वार से प्रभु में प्रवेश

'गुरु रुपे नौयोन दे रे मोन, गुरु बिने केऊ नाइ तोर आपोन।
गुरु रूपे औधोर मानुश दिबे तोरे दौरोशौन।।
गुरु के रूप में नयन दे मेरे मना, गुरु बिन तेरा कोई नहीं अपना।
अधर मानुष का, हे मेरे मन, सद्‌गुरु में होता है दर्शन।।
पितार भाण्डे कि रूप छिलि, मायेर गौर्भे किरूप होली मोन।
पूर्बो–पौरे निरौंतौरे गुरु रूपे निरौंजौन।।
पिता ने हमें दिया ये तन, मातृ–गर्भ में बना ये मन।
आदि–अंत में बसा निरंतर, सद्‌गुरु का रूप निरंजन।
रौजो बींजे मिलौन के कोरिलो, कोथाय आछे तार आशोन
ब्रोह्माण्डेर गौड़ोन गौड़े शे कोन जौन।।
रज–बीज का मिलन हुआ जब, इस जग में आगमन हुआ तब।
ब्रह्मांड–रचना हुई कैसे कब? गुरु से मूल–सत्य जानो अब।
कोथाय छिलि, कार बा शाथे भौबे एलि ओरे मोन।
औधींन पांज बौले, गुरुधोरे कौरो, तार औन्बेशौन।।
कहे पंज करले गुरु धारण, रे मन, वहीं करेंगे तारण।'

रे मन! गुरु स्वरूप में हीं मन स्थिर करो। गुरु बिना इस संसार में तेरा कोई अपना नहीं है। गुरु स्वरूप में हीं वो अधर वस्तु है जो तोहे दर्शन देंगे। गुरु स्वरूप हीं ओंकार स्वरूप है।

पिता ने तुझे शरीर दिया, माँ के गर्भ में मन पाया। लेकिन पूर्व और अंत में गुरु स्वरूप हीं है जो निरंजन रूप में तुझमें समाया है। गुरु का निराकार–निरंजन स्वरूप हीं परम सत्य है।

रज–बीज के मिलन से तू संसार में आया पर इस ब्रह्माण्ड के रचयिता कौन हैं, किसके सहारे तू इस संसार में है? संत पंज शाह कहते हैं सद्‌गुरु के पास हीं तू जान सकता है, कि इन सबका मूल कहाँ है? गुरु के द्वारा हीं तेरी खोज पूरी होगी और परम सत्य से सद्‌गुरु हीं परिचित करवाएंगे।'

मेरे प्रिय आत्मन, नमस्कार।

बाउल फकीर पंज शाह का गीत है–

ये मन जो है...मन से कह रहे हैं...फकीर, तुम तरह–तरह के आकारों में उलझते हो, तुम्हारी आंखें तरह–तरह के आकारों में अटकती हैं, एक आकार में अपनी आंखों को केंद्रित कर लो।

'गुरु के रूप में नयन दे मेरे मना।'

वो आकार है– गुरु का रूप।

भारत में एक बड़ी पुरानी लोकोक्ति है––कलयुग में गुरु की बहुत जरूरत होगी, सतयुग में उतनी जरूरत नहीं थी। कलयुग में क्यों जरूरत होगी? कलयुग का अर्थ है, सोए हुए लोगों का युग, मूर्च्छित लोगों का युग। और जितनी–जितनी हम मूर्च्छा में होंगे, गुरु की उतनी जरूरत होगी। सतयुग, जब लोग सचेत थे, जब लोग सरल थे, जब लोग सावधान थे, उस समय गुरु की उतनी जरूरत नहीं थी। बुद्ध, महावीर के धर्म की जरूरत आज पूरी नहीं होगी। आज चाहिए हमें, नानक का धर्म, जिसमें गुरु की सत्ता को महत्त्व दिया जाता है। बुद्ध, महावीर के समय लोग ज्यादा सरल थे, ज्यादा सहज थे, ज्यादा सचेत थे। लेकिन आज कुछ ऐसे समझें कि हम जैसे–जैसे पीछे खिसकेंगे, उतनी–उतनी सरलता हमें मिलेगी।

जब कोई बच्चा है, बच्चा ज्यादा सरल है। जैसे ही वह जवान हुआ, ज्यादा जटिल हो गया। और बूढ़ा हो गया, तो और भी जटिल हो गया। अहंकार उसका उतना ठोस हो गया। तो जितना हमारा ठोस अहंकार होगा, उतनी ही ज्यादा हमें गुरु की जरूरत होगी। हमें ऐसे मनुष्य की जरूरत है, जो अहंकार के कारागृह से बाहर निकल चुका है। और जिसने बाहर के आकाश के चांद–तारों का मजा लिया है, और बाहर के आकाश में वह जीता है। और उस काल–कोठरी से, उस अहंकार की कैद से, वह बाहर निकलने का रास्ता दूसरों को बता सकता है।

आज देखें, कोई छोटा सा भी काम करता है, तो कितने अहंकार से भर जाता है? मैंने एक गाड़ी ले ली, मैंने अच्छा पद पा लिया, मैंने एक अच्छा घर बना लिया, अहंकार से भर जाते हैं। हमने मंदिर जाना शुरू किया, हमने कोई खास साधना शुरू की, हम अहंकार से भर जाते हैं।

जब संसार में हम इतने अहंकार से भरते हैं, तो जब हम साधना करेंगे तो और–और अहंकार से भर जाएंगे, और यही अहंकार एक कोठरी है, जिससे कि गुरु बाहर निकलने का रास्ता बताता है; गुरु की इतनी जरूरत है इस युग में। जब भी आदमी अहंकार से ठोस हो जाएगा, उसे गुरु के बिना उस कोठरी से हमें कोई भी बाहर नहीं निकाल सकता।

'गुरु बिन तेरा कोई नहीं अपना।'

इस संसार में कहने को तो सब अपने हैं, इतने नाते रिश्तेदार, लेकिन कहने को ये नाते रिश्तेदार हैं। अंतिम समय में कोई भी नाते–रिश्ते काम नहीं आएंगे। एक ही नाता, एक ही रिश्ता असली रिश्ता है, जो मौत के पार और जीवन में दोनों समय काम आता है, वह है– गुरु और शिष्य का रिश्ता। सद्‌गुरु के सम्मुख झुकने से, मिटने से, समर्पण करने से, हमें यह अनुभूति होती है कि हम अस्तित्व से भिन्ना नहीं हैं, और जब हमें यह अनुभूति हो गई कि हम अस्तित्व से भिन्ना नहीं हैं तब, 'तत्वमसि श्वेतकेतु।' उस समय परमात्मा की अनुभूति होती है कि हम वही तो हैं।

आएं, अब हम परमगुरु ओशो की अमृत–वाणी सुनते हैं–

'जो प्रकाशित हो उठा हो, जिसके भीतर जल उठी हो ज्योति उसके चरणों में झुक जाओ। क्योंकि झुके बिना तुम्हारी झोली न भरेगी। नदी की धार बह रही है, तुम प्यासे खड़े हो और अगर झुककर अंजुली न बनाओगे तो तुम्हारी अंजुली में जल न भरेगा और तुम्हारा कंठ प्यासा का प्यासा रह जाएगा। झुको, नदी से जल हाथ में भरना होता है तो झुकना होता है। अंजुली बनाओ, कंठ तक ले जाओ जल को। नदी तुम्हारे कंठ तक नहीं जा सकती। सद्‌गुरु तुम्हारे सामने मौजूद हो सकता है मगर झुकना तुम्हें होगा, अंजुली तुम्हें बनानी होगी, पीना तुम्हें होगा।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों से पियो मुझे, पचाओ मुझे, बनने दो मुझे रक्त–मांस–मज्जा। ठीक कहा है। गुरु को पीना होगा। गुरु कोई व्यक्ति तो नहीं है, अमृत की धार है। गुरु कोई व्यक्ति तो नहीं है, प्रकाश का अवतरण है। गुरु कोई देह तो नहीं है। देह तो आवरण है, देह के भीतर छिपा है कोई, उससे संबंध जोड़ो। झुकोगे तो ही संबंध जुड़ता है। क्यों झुकने से संबंध जुड़ता है? झुकने की कला है। झुकने का अर्थ है, मैं अपना मैं–भाव छोड़ता हूं। जब तक तुम कहते हो –'मैं मैं', तब तक अकड़ होती है।

कल ही एक सज्जन ने पत्र लिखा कि बड़े दूर से आया हूं। मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं। मैं स्वयं गुरु हूं। मेरे शिष्य भी हैं। आपके दर्शन करना चाहता हूं। मैंने पुछवाया कि जब तुम्हें अपने दर्शन हो गए तो तुम इतने दूर नाहक क्यों परेशान हुए हो? दो में से कुछ एक बात तय कर लो, या तो तुमने स्वयं को जान लिया, तब बातचीत की कोई अर्थ नहीं है। जान ही लिया, बात खत्म हो गई। स्वागत तुम्हारा! धन्यभागी हो तुम! या तो तय कर लो कि

तुमने अपने को जान लिया है। तो फिर इतने दूर आने का कोई प्रयोजन न था। और या अगर मिलना है तो फिर तय कर लो कि अभी जानना नहीं हुआ है।

लोग जानना भी चाहते हैं और झुकना भी नहीं चाहते। अहंकार को बचाकर लोग सत्य को जान लेना चाहते हैं। यह न तो कभी हुआ है, न कभी हो सकेगा। अहंकार ही तो बाधा है। गुरु के चरणों में झुकने से थोड़े ही सत्य मिलता है। चरणों में झुकना तो केवल बहाना है। अहंकार को गिराने का बहाना है। अगर तुम बिना चरणों में झुके अहंकार गिरा सकते हो तो काम हो जाएगा। असली सवाल अहंकार के गिरने का है। इसलिए यह भ्रांति मत लेना कि चरण छूने से सत्य मिलता है। चरण छूने से क्या सत्य मिलेगा। लेकिन अहंकार के गिरने से सत्य मिलता है। चरण छूना अहंकार को गिराने का केवल एक उपयोग, एक प्रयोग, एक विधि, एक माध्यम, एक निमित्त।'

एक बार की बात है, एक गांव में एक साधु आया। और साधु जब आया तो बहुत सारे उसके भक्त आए, बहुत सारे रुपये–पैसे चढ़ाए, उस पर फल–फूल सब कुछ चढ़ाया, बड़ा दान दिया लोगों ने। उस गांव में एक चोर भी पहुंचा था। उसने देखा कि ये साधु महात्मा इस गांव में आए, और इतना आदर–सत्कार इसका, इतनी इसे दान दक्षिणा मिली। और मैं चोर, मुझे सब जगह दुतकार ही मिलती है, क्यों ना मैं साधु ही बन जाऊं? उसने अपना गांव बदला, दूसरे गांव गया और झूठा साधु का वेश उसने धारण कर लिया। जब उसने झूठा साधु का वेश धारण कर लिया; कुछ दिन बाद लोग उसके पास भी आने लगे, मनौती मांगने लगे, दान दक्षिणा करने लगे, बहुत धन का अंबार लग गया। उसके मन में आया कि मैं झूठा साधु हूं और इतने धन के अंबार मेरे आस–पास लग गए, तो जब मैं सच्चा साधु हो जाऊंगा, तब मेरे आस–पास परम धन का अंबार निश्चित रूप से लगेगा। और उसके भीतर एक क्रांति घटित हुई और उसी दिन उसके भीतर असली संन्यास का उदय हुआ।

अगर हम सीखने को तैयार हैं। गुरु को खोजने जाने की जरूरत नहीं है। अगर हम तैयार हैं, अगर शिष्यत्व की घटना हमारे भीतर घट चुकी है, तो पूरा अस्तित्व हमारा गुरु है। यानी कण–कण में उपदेश लिखे हुए हैं, सारा अस्तित्व हमें सिखाने के लिए तत्पर है। हमारे भीतर सीखने की कला होनी चाहिए। जिस दिन हम तैयार हैं, उस दिन कोई भी घटना हमारे भीतर क्रांति का कारण बन जाती है।

लाओत्सु को देखो, एक गिरता हुआ पत्ता उसका गुरु बन गया और उसे अंतिम परम अनुभूति हुई।

बायजिद बच्चे को देखकर, एक वेश्या को देखकर, एक कुत्ते को देखकर, जहां कहीं, जो भी वजह मिली हर वजह से उसने सीखा और उसके जीवन में शिष्यत्व की घटना घटी। तो फिर उसके जीवन में परम घटना की अनुभूति हो गई।

हमें गुरु खोजने के लिए नहीं जाना, हम खोज भी नहीं सकते।

'गुरु के रूप में नयन दे मेरे मना।'

हम तैयार हो जाएं कि कैसे हमारे भीतर सीखने की कला आए, और जिस दिन हम सीखने के लिए तत्पर हो जाते हैं, हमारे पास अस्तित्व गुरु भेज देता है।

'गुरु के रूप में नयन दे मेरे मना
गुरु बिन तेरा कोई नहीं अपना।
अधर मानुष का, हे मेरे मन
सद्गुरु में होता है दर्शन।।
पितार भाण्डे कि रूप छिलि
मायेर गौर्भे किरूप होली मोन
पूर्बो–पौरे निरौंतौरे गुरू रूपे निरौंजौन।।
पिता ने हमें दिया ये तन
मातृ–गर्भ में बना ये मन।
आदि–अंत में बसा निरंतर
सद्गुरु का रूप निरंजन।'

सद्गुरु का निरंजन रूप कैसे आदि और अंत में बसा है?

झेन फकीर के पास जब कोई शिष्य सीखने जाता है तो वे कहते हैं कि अपने उस चेहरे को पहचानो, जो जन्म के पूर्व था और मृत्युपर्यंत रहेगा। अपने असली चेहरे को पहचानो। ये असली चेहरा 'ध्यान' में पहचाना जाता है। और जिस दिन उसकी पहचान होती है...इसी असली चेहरे को...इसी वास्तविक चेहरे को, जिसको कि झेन कह रहे हैं असली चेहरा... यही है गुरु का रूप, और वो हमारे भीतर बसा हुआ है। वो हमारा असली गुरु हमारे भीतर हीं बैठा हुआ है। और उस असली रूप की पहचान गुरु के पास जाकर होती है।

'रौजोबीजे मिलौन के कोरिलो
कोथाय आछे तार आशोन
ब्रोह्माण्डेर गौड़ोन गौड़े शे कोन जौन।।
रज–बीज का मिलन हुआ जब
इस जग में आगमन हुआ तब।
ब्रह्मांड–रचना हुई कैसे कब?
गुरु से मूल–सत्य जानो अब।'

जब हम गुरु के पास जाते हैं तो गुरु हमें बताता है।

'दीया जले अगम का, बिन बाती बिन तेल।'

एक ऐसी ज्योति, जिससे पहचान करवाता है, जो बिना बाती के, बिना तेल के निरंतर जल रही है। जिसका कोई स्रोत नहीं है, जिसका न उद्‌गम है, जिसकी न समाप्ति है। ऐसा ही जीवन चलता जाता है, न इसका उद्‌गम है, न इसका अंत है, यह निरंतर चलता जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें, तो विज्ञान भी कहता है कि आज हम किसी भी चीज को, कोई भी पदार्थ को नष्ट नहीं कर सकते, एक रेत के कण को भी हम नष्ट नहीं कर सकते। और जब नष्ट नहीं कर सकते, रूप तो बदल सकते हैं उसके। रूप बदल जाएंगे, लेकिन जो ऊर्जा है, वह जो निराकार ऊर्जा छिपी हुई है, उसे हम नहीं बदल सकते, वो सदा-सदा शाश्वत रहेगी। विज्ञान इस जगह पर पहुंचा है कि ऊर्जा शाश्वत है, निराकार ऊर्जा शाश्वत है; तो धर्म कहता है कि परमात्मा शाश्वत है, उसका भी अंत नहीं है।

ये जो परमात्मा है, ये जो चैतन्य है, ये जो चैतन्य का प्रवाह है, ये शाश्वत है। और जब इसका अंत नहीं है, तो प्रारंभ कैसे हो सकता है? कोई एक डंडा जिसका कोई एक छोर नहीं है, तो दूसरा छोर कैसे हो सकता है? जिसका हम अंत नहीं कर सकते, तो प्रारंभ कैसे हो सकता है? ये निरंतर चलता हुआ जीवन--चलता जा रहा, चलता जा रहा--लेकिन ना कभी इसका उद्‌गम हुआ है, न इसका कभी अंत होगा।

'कोथाय छिलि, कार बा शाथे भौबे एलि ओरे मोन
औधीन पांज बौले, गुरुधोरे कौरो, तार औन्बेशौन।।'

संत पंज शाह कहते हैं, सद्‌गुरु के पास ही तू जान सकता है कि इन सबका मूल कहाँ है? गुरु के द्वारा ही तेरी खोज पूरी होगी और परम सत्य से सद्‌गुरु ही परिचित करवाएंगे।

भीखा कहते हैं, सुगम उपाय क्या है? न तप, न दान, न नियम। सुगम उपाय है सद्‌गुरु से जुड़ जाओ। सद्‌गुरु के शरण में चले जाओ। सद्‌गुरु के पास जाकर बैठोगे, उसकी शांति के प्रभामण्डल में तुम भी शांत होने लगोगे। और इस शांति की दशा में जब हम अपने भीतर जाएंगे, वहां जाकर पता चलता है, इस जगत का मूल क्या है? इस का उत्तर भीतर जाकर मिलता है। और याद रखना जब हम शांति में शांत होने लगते हैं, अपने भीतर जाते हैं, तो प्रश्न हमारे गिर जाते हैं। उस निष्प्रश्न की दशा में हमारे भीतर एक समाधान घटित होता है। और वो गुरु की मौजूदगी में, गुरु की कृपा से होता है।

आज का पंज शाह का ये गीत यहीं पूरा होता है। धन्यवाद।

सदगुरु ओशो के पावन चरणों में शत-शत नमन।

हरि ओम् तत्सत!

जीवन का परम उद्देश्य क्या?

‘बाउल जींबोन कारे कौय
कैमोन जींबोन, बोस्तु कि शे जन्मोकोथाय हौय।।
जे बोस्तु जींवोनेर कारोन
ताइ बाउल कौरे शाधोन
जींबोन पौरोम निरूपौम 2, बाउलेरा कौय।।
बाउलेरा कौय
जींबोनी तीर्थो–धैर्मो–पौथ
एइ कौथा बाउले मौत
बोस्तुबादी बाउल आद्यो, 2 केहो–केहो हौय।।
ना कौरे ओनुमान भौजोन
कौरे ना मुक्तिर औन्बेशौन
जींबोनी शोत्तो निरूपौम, दीन दृद्दू जानौए।।’

बाउल ‘जींवन’ किसे कहेंगे? उनके जीवन में वस्तु क्या है? कहाँ उसका जनम होता है? बाउल जीवन उस परमवस्तु का ही आनंद स्वरूप है।

जो वस्तु जीवन का उद्देश्य है, कारण है, बाउल तो उसी की साधना करते हैं, जीवन को इसलिए परम–निरुपम कहते हैं

जीवन का धारण करना, मनुष्य जनम ही तो परम् तीरथ है, धर्म है। यही बाउल का धर्म मत है। वस्तु रूपी ओंकार को ही बाउल आदि स्वरूप मानते हैं।

केवल अनुमान भजन से ही बाउल संतुष्ट नहीं होते। मुक्ति की खोज या इच्छा भी नहीं रखते। निरुपम की साधना को दद्दू शाह लक्ष्य मानते हैं। जीवन का उद्देश्य ही ‘परमसत्य वस्तु’ को जानना है।’

मेरे प्रिय आत्मन, नमस्कार।

बाउल फकीर दीन दूद्दू शाह कहते हैं–

'बाउल जीबोन कारे कौय
कैमोन जीबोन, बोस्तु कि शे जन्मोकोथाय हौय।।'

बाउल 'जीवन' किसे कहेंगे। उनके जीवन में वस्तु क्या है, कहाँ उसका जन्म होता है?

जन्म को ही हम जीवन मान बैठते हैं। जन्म तो प्रच्छन्न मृत्यु है, छिपी हुई मृत्यु है। और इसका विकास, और फिर अंतिम निष्कर्ष, मृत्यु तक जाता है। जीवन क्या है फिर? जीवन है– जो जन्म रूपी अवसर हम लेकर आते हैं। एक अनगढ़ पत्थर की तरह ये अस्तित्व हमें यह अवसर देता है कि इस अनगढ़ पत्थर से हमें मूर्ति बनानी है। जन्म रूपी अनगढ़ पत्थर की मूर्ति बनाना, ... और इस अभीप्सा का नाम ही धर्म है। और असली जीवन क्या है? बाउल किसको जीवन कहते हैं? जीवन तो विराट है सागर जैसा। और जो थोड़ी सी लहरें हैं उन्हीं में हम रुक जाते हैं, वहीं हम अटक जाते हैं, वह जीवन नहीं है। बहुत बड़ा हिस्सा जो दिखाई नहीं देता, उस दिखाई नहीं देने वाले जीवन की अनुभूति का नाम बाउल का 'जीवन' है।

वो नहीं दिखाई देने वाला जीवन क्या है?

जीवन एक रहस्य है और जितना हम इसे सुलझाने की कोशिश करेंगे, जितना हम इसे हल करने की कोशिश करेंगे, हम और–और रहस्य में घिरते जाएंगे। और यही फर्क है पहेली और रहस्य में, लोग समझते हैं जीवन पहेली है और उलझे हुए जीवन को सुलझाने की कोशिश करते हैं, लेकिन फिर वो लहरों में अटक जाते हैं। जब कि जीवन रहस्य है और जितना हम इसकी गहराई में जाएंगे, हम रहस्य से और–और घिरते जाएंगे। और उस रहस्य से घिरने के बाद जो आनंद की अनुभूति होती है और जहां सारे प्रश्न गिर जाते हैं...उस समाधान की, उस तृप्ति की जो अनुभूति होती है, उसका नाम धर्म है।

अब इस रहस्य का अनुभव हो तो कैसे हो?

हम सोचते हैं कि कोई तार्किक निष्पत्ति होगी। तर्क के माध्यम से हम कोई उत्तर खोज लेंगे, वाद–विवाद से उत्तर खोज लेंगे, सिद्धांतों से उत्तर खोज लेंगे, शास्त्रों से उत्तर खोज लेंगे कि लोग हमें उत्तर दे देंगे, दूसरा कोई उत्तर दे देगा। बिल्कुल नहीं! इस रहस्य में डूबने से ही इस चमत्कारिक जीवन की अनुभूति होती है, इस रहस्य की अनुभूति होती है। बाउल जीवन उस परम वस्तु का ही आनंद स्वरूप है।

जन्म तो हमें मिला है, जन्म तो हमें प्रकृति ने दिया है। 'जीवन' को साधना से पाना पड़ता है। जन्म हमें उपहार के रूप में मिला है। तो हर एक व्यक्ति जो जीवन को एक साधना बना लेता है, जिसको की बाउल जीवन कहते हैं, उसे कहलाने का अधिकारी हो जाता है वह।

एक बार की बात है, एक वृद्ध साधु करीब-करीब सत्तर साल जिसकी उम्र थी, दीक्षित हो गया। फिर और लोगों ने उससे पूछा कि आपकी उम्र क्या है? एक साल बाद सब लोग मिले थे, बाकी लोग जिन्होंने उसके साथ दीक्षा ली थीं, और भी कई लोग आए हुए थे। सम्मेलन था, कोई उत्सव था गुरु के द्वार पर, सारे लोग इकट्ठे हुए थे। लोगों ने इस सत्तर साल के वृद्ध साधु से पूछा कि आपकी उम्र क्या है? उसने कहा मेरी उम्र एक साल मात्र है। कई लोग आश्चर्यचकित हो गए कि आप इतने बूढ़े और एक साल का कहते हैं खुद को! उसने कहा, जिस दिन से मैंने दीक्षा ली, उस दिन से मैंने जीवन की अनुभूति की, तभी तो मैं अपने जीवन की उम्र को आंक सकता हूं। मेरा मात्र एक साल का जीवन है। जिस दिन हम जीवन की अनुभूति करने लगते हैं, वो अपने होने की अनुभूति, अपने बीइंग में जाने पर जो आनंद की अनुभूति होती है, जो मिटने की अनुभूति होती है, जो शांति और तृप्ति की अनुभूति होती है, वहीं से हमारे जीवन की शुरुआत होती है, वही हमारा वास्तविक जीवन है।

बाउल का जोर जीवन को परिपूर्णता से जीने का है और परमगुरु ओशो का भी यही जोर है। कि जीवन को समग्रता से जियो, आनंद से जियो। और इसे जी कर ही जाना जा सकता है इसका रहस्य।

आएं परमगुरु ओशो को सुनते हैं, वे क्या कहते हैं इस रहस्य के बारे में-

'जीवन एक अवसर है। जीवन तथ्य नहीं, केवल एक संभावना है- जैसे बीज, बीज में छिपे हैं हजारों फूल, पर प्रकट नहीं- अप्रकट हैं, प्रच्छन्न हैं। बहुत गहरी खोज करोगे तो पा सकोगे। पा लोगे तो जीवन धन्य हो जाएगा। फूलों की सारी सुगंध फिर तुम्हारी है, और उनके सारे रंग भी, और उनकी कोमलता, और उनका सौंदर्य, और उनसे प्रकट होने वाली परमात्मा की अनुभूति।

फूल तो नृत्य हैं अस्तित्व के। फूल तो आकांक्षा हैं पृथ्वी की आकाश के तारों को छू लेने के लिए। लेकिन जो बीज ही रह जाए, वह अभागा है- हुआ भी और न भी हुआ; व्यर्थ ही हुआ। होने और

न होने में क्या भेद? अगर बीज ही रह जाना है, तो न भी होते तो भी चल जाता। अंतर तो तब पड़ेगा जब बसंत आएगा। अंतर तो तब पड़ेगा जब फूल हवाओं में और सूरज की किरणों में नाचेंगे। अंतर तो तब पड़ेगा जब मधुमक्खियां और तितलियां उनके पास गीत गाएंगी। उस रास से अंतर पड़ेगा। फूल की बांसुरी पर जब पक्षी अपनी धुन बिठाने लगेंगे, तब बीज को पता चलेगा कि मैं वस्तुत: क्या था? वह नहीं था जो दिखाई पड़ता था; वह था जो कभी दिखाई नहीं पड़ता था। दृश्य नहीं था, अदृश्य था।

लेकिन स्मरण रहे कि बीज को तोड़ कर तुम फूल नहीं पा सकते हो। बीज को खंड–खंड करके फूल पाना तो दूर, फूलों की संभावना भी समाप्त हो जाएगी।'

वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों ही इस रहस्य को नहीं जान सकते, क्योंकि तर्क से नहीं, अनुभूति से जीवन को जाना जा सकता है। उसकी विधि है– प्रेम। जो प्रेम से भरता है जीवन के प्रति, अस्तित्व के प्रति, वह जीवन को समझ पाता है, वह इस रहस्य में डूब पाता है।

'जे बोस्तु जींवोनेर कारोन
ताइ बाउल कौरे शाधोन
जींबोन पौरोम निंरूपौम 2, बाउलेरा कौय।।'

जो वस्तु जीवन का उद्देश्य है, कारण है, बाउल तो उसी की साधना करते हैं, जीवन को इसलिए परम–निंरुपम कहते हैं।

जीवन का उद्देश्य क्या है? बाउल कहेंगे जीवन का उद्देश्य, जीवन का लक्ष्य मुक्ति नहीं है, मोक्ष नहीं है, जीवन का उद्देश्य जीवन ही है। बहुत लोग आज तक जीवन के उद्देश्य को, जीवन के लक्ष्य को मुक्ति और मोक्ष मानकर जीते हैं। लेकिन अगर हम जीवन को पूरी परिपूर्णता से जीते हैं, जीवन को समग्रता से जीते हैं, तो बाई–प्रोडक्ट की तरह मुक्ति फलित होती है, मोक्ष का द्वार खुलता है। लेकिन अगर हम मोक्ष को साधने लगे जीवन में, मुक्ति को साधने लगे, तो फिर जीवन भी हाथ से फिसल जाता, मुक्ति तो आती ही नहीं है। कुछ ऐसा समझें कि मुक्ति जो है, वह भूसे की तरह है। जैसे अनाज होता है, हम गेहूं बोएं तो गेहूं का जो छिलका है, वो है मुक्ति। छिलके की तरह है मुक्ति, और अगर हम सोचने लगे, जिसका जीवन का उद्देश्य ही मुक्ति हो जाए, और वैसे ही वह जीने लगे, तो कुछ ऐसा

कर रहा है कि वह छिलके को बो रहा है, भूसे को बो रहा है, भूसे को बोने से बीज पैदा नहीं हो सकता। हां, बीज हम बोएंगे तो भूसा बाई–प्रोडक्ट की तरह आएगा। ऐसे ही हम जीवन को जिएंगे तो मुक्ति बाई–प्रोडक्ट की तरह आएगी। और बहुत लोगों ने जीवन में यह भूल की है, मुक्ति को जीवन का लक्ष्य मानकर, जीवन को छोड़ते चले गए। जीवन का सम्मान नहीं किया।

जीवन में एक–एक चीज छोड़ना...छोड़ना...छोड़ना, और मृत्यु की तरह, मौत की तरह मरे हुए जीना, यह बाउल का जीवन नहीं है। बाउल कहता है कि इस जीवन को परिपूर्णता से जियो। ये चांद तारे, ये सुन्दर आकाश, ये उड़ती हुई तितलियां, ये प्यारे–प्यारे लोग, इतना प्रेमल जीवन है, इसको रसमय ढंग से जीने का नाम बाउल का जीवन है। और जो इस तरह से जीता है उसके सारे बंधन अपने आप टूट जाते हैं और मुक्ति का द्वार खुल जाता है।

'जीबोनी तीर्थो–धौर्मो–पौथ
एइ कौथा बाउले मौत
बोस्तुबादी बाउल आद्यो, 2 केहो–केहो हौय।।'

जीवन का धारण करना, मनुष्य जन्म ही तो परम तीर्थ धर्म है। यही बाउल का धर्म मत है। वस्तु रूपी ओंकार को ही बाउल आदि स्वरूप मानते हैं।

जैसे हम किसी वृक्ष को देखें, फूल को देखें, लेकिन उसका जीवन कहां से आ रहा है? वे जड़ें दिखाई नहीं देतीं। ऐसे ही हमारा जीवन है। जीवन जो दिखाई पड़ रहा है, लेकिन ये जीवन रस कहां से आ रहा है? वो हमारी बीइंग...हमारी सत्ता क्या है? कहां है? उसकी अनुभूति जब हम करते हैं, उसे बाउल जीवन कहेंगे।

उसकी अनुभूति हम कैसे करें? वे कहते हैं– दिस वेरी बॉडी इज बुद्धा...ये ओशो का वचन है कि दिस वेरी बॉडी इज बुद्धा। दिस वेरी अर्थ इज द लोटस पैराडाइस, इस तन में ही, इस शरीर में ही जब हम भीतर जाते हैं, अपने बीइंग में पहुंचते हैं, तब अपनी जड़ों की अनुभूति होती है, जिसका नाम आत्मा है। अपने बीइंग पर जाकर, जब हम अपने होने की अनुभूति से भरते हैं, और एक संगीत गूंज जाता है हमारे जीवन में, हम ओंकार स्वरूप हो जाते हैं। वह है हमारा जीवन, वह है बाउल का असली जीवन।

'ना कौरे ओनुमान भौजोन
कौरे ना मुक्तिर औन्बेशौन

जीबोनी शोत्तो निरूपौम, दीन दूद्दू जानौए।।'

केवल अनुमान भजन से ही बाउल संतुष्ट नहीं होते। मुक्ति की खोज या इच्छा भी नहीं रखते। दूद्दू शाह कहते हैं कि जीवन का परम् सत्य निरुपम है, उसे जानो।

अनुमान से भजन नहीं। जब तक हमने परमात्मा को जाना नहीं, जिसे जाना नहीं, उसका भजन कैसे कर सकते हैं? उसके प्रेम में, उसकी प्रीति में कैसे डूब सकते हैं? बाउल कहते हैं पहले जानो, अनुमान से भजन नहीं करो, पहले परमात्मा को जानो, उसके प्रेम में डूबो, उसकी गूंज में डूबो, उसके संगीत से भर जाओ और ये संगीतमय जीवन ही बाउल का जीवन है। और जो कि बाहर से दिखाई नहीं पड़ता है, भीतर उसकी गूंज निरंतर मौजूद है। और एक बाउल उसी गूंज में डूबा हुआ जीता है, अपनी जड़ों से जुड़कर जीता है। अपनी आत्मा की भूमि में रहकर इस संसार में जीता है।

कैसे हम अपने बीइंग तक पहुंचे? कैसे उस संगीत से, उस परम संगीत से भरकर इस जीवन को जिएं? उसकी विधि है– जागरूकता, उसकी विधि है अपनी संवेदनशीलता को बढ़ाना, अपनी सेन्सिटिविटी को बढ़ाना।

संवेदनशीलता कैसे बढ़े? जागरूकता कैसे बढ़े? एक ही निदान है, उसका नाम है– ध्यान।

हरि ओम् तत्सत्!

जीवंत प्रकृति में छिपा प्रभु

'जैन्तो काली घौरेर माझे देखली ना
पुतूल पूजे मोली हारे दिनकाना।।
जैन्तो तारे ना चिनिया
खौड़ेर बून्देय धौर्ना दिया
कि पेंली बौल रे भाया
बौल रे शोना।।
ऐमोन मुर्खो हिन्दू जाति
ना जेने कोथाय प्रोकृति
पुतूल पूजे दिबा राति
मौरे दैख ना।।
जे शोक्तीते सृजौन शौंशार
तारे केउ चिनले ना एबार
दृद्दू बौले जौगोत माझार कि रूप कारखाना।।'

'जीवित काली घर में तेरे एक बार ना देखा तू...जीवित काली तो तेरे अंदर ही है। माटी का पुतला बनाकर पूजते फिरते हो जैसे दिन में ही तुम अंधे बने हो।

जीवित में अगर दर्शन नहीं हो रहा है, तो घास-फूस-पैरा की मूर्ति बनाकर उसके सामने धरना देने से क्या होगा मेरे सोना।

ऐसी मूर्ख जाति है जो प्रकृति को ही नहीं जानती, पुतला पूज-पूज कर दिन-रात मरते हैं। जीवित में ही वह परम वस्तु है इसका तनिक ज्ञान नहीं।

जिस शक्ति से इस संसार का सृजन हुआ उस आदि स्वरूप को ही नहीं पहचानते। दद्दू शाह कहते हैं संसार रूपी अजब कारखाने में अजब तमाशा देखता हूँ जीवित में न ढूंढ़ कर मृत में खोजते फिरते हैं।'

मेरे प्रिय आत्मन, नमस्कार।

बाउल फकीर दुद्दू शाह का गीत है–

'जैन्तो काली घौरेर माझे देखली ना

पुतूल पूज़े मोली हारे दिनकाना।।'

जीवित काली तो तेरे अंदर ही है। माटी का पुतला बनाकर पूजते फिरते हो, जैसे दिन में ही तुम अंधे बने हो।

जीवन से हमने धर्म को नहीं जोड़ा, हम जीवन से कहीं और जाकर धर्म को खोजते हैं। जीवन से बाहर धर्म को खोजते हैं। जबकि धर्म है जीवन की कला, धर्म है जीवन में खोजने की कला, धर्म है इसी शरीर में, यह जो शरीर हमें मिला है, यह जो असली मूर्ति है, इस मूर्ति के भीतर हमारी प्रसुप्त शक्तियों को खोजने की कला का नाम धर्म है।

'जैन्तो काली घौरेर माझे देखली ना'

एक बार की बात है, एक फकीर एक गांव में आया और उस गांव में कुछ दिन के लिए रहने लगा। एक युवक फकीर की सेवा करने लगा। रात–दिन उसकी सेवा करता, चरण दबाता। उस फकीर के पास एक बकरी थी। खूब अच्छे से दिन गुजर रहे थे, आत्मा–परमात्मा की बातें होतीं और खूब सत्संग होता। काफी लोगों की भीड़ लगने लगी। फिर एक दिन समय आया, फकीर को गांव छोड़कर जाना पड़ा। फकीर गांव छोड़कर जा रहा था, तो जिस युवक ने उसकी इतनी सेवा करी थी रात–दिन, उसके पास जो बकरी थी उसे उसने उपहार स्वरूप दे दी। और वह झोंपड़ी भी उस युवक की हो गई।

अब युवक को क्या कमी थी? युवक के पास झोंपड़ी हो गई, बकरी हो गई, बहुत मजे से अब युवक अपने दिन काटने लगा। चूंकि फकीर के आस–पास रहता था तो आत्मा–परमात्मा की बातें सुन–सुन कर वह भी सीख गया। वह भी सत्संग करना सीख गया। लोगों के प्रश्नों के उत्तर देता। जीवन क्या है? मृत्यु क्या है? हर चीज के उत्तर उसके पास तैयार हो गए थे। धीरे–धीरे फिर लोग जमा होने लगे, काफी भीड़ फिर इकट्ठी होने लगी।

एक बार फकीर फिर से उसी गांव से गुजर रहा था, उसने सोचा कि अपने शिष्य को देख लें, अपने मित्र को देख लें। अपनी झोंपड़ी में जाकर रुकते हैं। जब आकर उस फकीर ने देखा कि वो छोटी सी झोंपड़ी तो गायब हो गई। उस झोंपड़ी की जगह तो बहुत बड़ा घर, बहुत बड़ा मंदिर बन गया, वहां और सैकड़ों की भीड़ जमा है। और एक वेदी बनी हुई थी, जिस पर लोग अपनी चढ़ौती चढ़ाते हैं, मनौती मांगते हैं आकर, और बहुत सारी भेंट चढ़ाते हैं उस पर। सत्संग होता, वेदी पर लोग प्रणाम करते अपनी मनोकामनापूर्ति के लिए।

फकीर देखकर खुश हुआ। वह युवक जो उसकी सेवा करता था अब तो महंत बन चुका था, बहुत बड़ा सत्संगी बन गया था। रात हुई, जब सोने का समय आया तो फकीर ने अपने

शिष्य युवक से पूछा कि भई यह माजरा क्या है? ये वेदी किसकी है? तो युवक बोला, अब क्या बताऊं वेदी किसकी है? आप ने जो बकरी दी थी, वो बकरी मर गई, बकरी से बड़ा प्यार था। मैं उस बकरी को कहां ले जाता? उस बकरी को मैंने यहीं पर लिटा दिया और उसकी वेदी बना दी। अब लोग पूछने लगे कि ये वेदी किसकी है? तो बताने में शर्म आए कि ये बकरी की वेदी है। तो मैंने कह दिया किसी देवी की वेदी है और लोग आने लगे। बस फिर क्या था, इतने लोगों की भरमार हो गई। लोग चढ़ाने लगे नारियल, पैसे, मनौतियां मांगने लगे और मनोकामना पूरी भी होने लगी लोगों की, और दरबार लगने लगा।

फकीर हंसने लगा, उसे हंसी आ गई। तो उससे पूछा युवक ने कि आप क्यों हंसे? तो उसने कहा ये बकरी बड़ी कुलीन थी, क्योंकि मैं जिस गांव में रहता हूं, मेरे पास भी उसकी मां की बकरी की वेदी है, और ये बकरी बड़ी कुलीन थी और उसकी मां के भाग्य से आज मैं फकीर बना हुआ हूं। और इतनी लोग मेरी पूजा करते हैं और ये देखो उसकी बेटी बकरी का भी भाग्य देखो, उसके भाग्य से तुम जी रहे हो, तुम संत बन गए।

धर्म के नाम पर, यही तीर्थ व्यवसाय के केन्द्र बन गए हैं, मंदिर व्यवसाय का केन्द्र बन गया है। जीवन से धर्म को नहीं जोड़ा है।

'जैन्तो काली घौरेर माझे'

सब कुछ हमारे भीतर है, जीवित काली हमारे भीतर है, वह है ऊर्जा। वह काली रूपी ऊर्जा हमारे भीतर है। लेकिन उससे हमें परिचित नहीं होना है। हमें तो बाहर जाना है, बाहर खोजना है। जब हम जो चीज बाहर नहीं है, उसे ढूंढ़ने जाएंगे, तो निश्चित रूप से हमें धर्म के नाम पर व्यवसाय करने वाले लोग मिल जाएंगे, और हम इसी तरह चूकते जाएंगे वास्तविक धर्म से, वास्तविक काली से चूकते जाएंगे।

'जैन्तो तारे ना चिनिया
खौड़ेर बून्देय धौर्ना दिया
कि पेंली बौल रे भाया
बौल रे शोना।।'

जीवित में अगर दर्शन नहीं हो पा रहा है, तो घास–फूस की मूर्ति बनाकर उसके सामने धरना देने से क्या होगा मेरे सोना?

घर में किसी के लड़की पैदा हो जाए, तो लोग रोने लगते हैं, दुख मनाते हैं, और काली की पूजा करने जाते हैं। घास–फूस की मूर्ति बना रहे हैं, उस पर चढ़ौती चढ़ा रहे हैं और घर में बेटी पैदा हुई है तो मातम मना रहे हैं।

ये किस तरीके का धर्म है? धर्म को जीवन से जोड़ना होगा क्योंकि धर्म जीवन से जुड़ा हुआ है। जीवन ही धर्म है। धर्म है जीवन को परमात्मा में जीने की कला।

कैसे हम अपने जीवन को दिव्यता से जी सकें? कैसे हम परमात्मामय होकर जी सकें?

कैसे हमारी वाणी से केवल धर्म ही ना निकले, बल्कि जीवन ही धर्म हो जाए। शब्दों से धर्म नहीं बनता।

कायलर का एक वचन है– 'दीपक बोलता नहीं, दीपक जलता है।' ऐसे ही जब जीवन रूपांतरित होता है, इस जीवन में धर्म जलता है, इस जीवन का धर्म जब जलने लगता है, एक लौ लग जाती है जीवन की प्रभु से, तब धर्म पैदा होता है। वैसा धर्म चाहिए, वैसा धर्म ही हमारे जीवन को सत्य की ओर ले जाएगा।

लेकिन हम असंभव से डरते हैं। असंभव क्या है? हमारे भीतर जो प्रसुप्त शक्तियां हैं उसे जगाना असंभव लगता है। हमारे भीतर जो परमात्मा बैठा हुआ है, उसमें जीना असंभव लगता है। लेकिन हम असंभव की अभीप्सा से भरते हैं, इस अभीप्सा मात्र से हमारे भीतर उन प्रसुप्त शक्तियों के जागने की संभावनाएं पैदा हो जाती हैं। हमें असंभव से नहीं डरना है, हमें असंभव को जगाने का प्रयास करना है। अभीप्सा करनी है। हमारा मात्र एक कदम, और पूरा अस्तित्व हमारी मदद करता है उन संभावनाओं को जगाने में।

'जे शोक्तीते सृजौन शौंशार
ऐमोन मुर्खो हिन्दू जाति
ना जेने कोथाय प्रोकृति
पुतूल पूजे दिबा राति
मौरे दैख ना।।'

ऐसी मूर्ख जाति है जो प्रकृति को ही नहीं जानती, दिन रात पुतूल पूज–पूज कर मरते हैं। जीवित में वह परम वस्तु है, इसका तनिक ज्ञान नहीं। हम मुर्दा परिस्थिति वाले लोग हैं। जब जीवित संत हैं, तो हम जीवित संत को तो कष्ट देते हैं।

जब जीसस जीवित हैं, तब हम उन्हें सूली पर लटकाते हैं। जब मंसूर अनलहक कहता है, तब हम उसकी गर्दन उड़ा देते हैं, अंग–अंग काट देते हैं। और बाद में हम उसकी पूजा करते हैं, बाद में हम क्रॉस पर लटकाते हैं। कोई भी संत जब इस जीवन में आता है, उसके साथ हम दुर्व्यवहार करते हैं। जीवित का सम्मान नहीं करते हैं।। जिस दिन वह जीवित नहीं है, मुर्दा हो गया है, तब हम पूजने लगते हैं उसे।

क्यों? हमने जो जीवन के साथ किया था, वह अपराधबोध अब हमें पूजा करने के लिए विवश कर देता है। हम इसलिए मुर्दे की पूजा करते हैं। लेकिन जीवित में ही वह परम वस्तु है।

आएं परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'यह कुछ अजीब धारणा है लोगों की, कि जितना पुराना हो उतना ही मूल्यवान होता है। बिल्कुल मरा–मराया हो, सड़ा–सड़ाया हो, उतना ज्यादा मूल्यवान। लाश ही बची हो, अस्थिपंजर ही रह गए हों, तो और भी मूल्यवान। लोग अपने–अपने धर्म को पुराना सिद्ध करने में ऐसी दीवानगी करते हैं, सच और झूठ की फिक्र ही नहीं करते। गुड़ भी हो तो गोबर कर

देते हैं। सिद्ध करने की चेष्टा कि पुराना, पुराना होना चाहिए।

सारे वैज्ञानिक आधारों से तय होता है कि वेद पांच हजार साल से ज्यादा पुराने नहीं हैं, लेकिन लोकमान्य तिलक की चेष्टा जीवन भर यही रही कि नब्बे हजार साल पुराने हैं। क्यों? ऐसा क्या दीवानापन है? पुराना है, तो मूल्यवान होना चाहिए, जितना पुराना हो। जैसे कि धर्म न हुआ, शराब हुई; जितनी पुरानी हो, उतनी ही कीमती। सभी धर्म इस चेष्टा में लगे रहते हैं; एक-दूसरे को हराने की चेष्टा में लगे रहते हैं।

लोकमान्य तिलक कहते हैं कि नब्बे हजार साल पुराना है वेद। जैन बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक। ठीक कहते हैं आप। नब्बे हजार साल पुराना होना ही चाहिए, क्योंकि; ऋग्वेद में हमारे प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख है। सो निश्चित, हमारे प्रथम तीर्थंकर तुम्हारे ऋग्वेद से भी पुराने हैं। और सम्मानपूर्वक उल्लेख है!

और यह तो आदमी की आदत है कि जिंदा संत को कोई सम्मान देता है? अपमान देते हैं। यह तो सीधा गणित है। जिंदा संत को अपमान, मुर्दा संत को सम्मान।

तो इतने सम्मान से उल्लेख है ऋग्वेद में जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ का, इससे सिद्ध होता है कि कम से कम तीन सौ से लेकर पांच सौ वर्ष तो गुजर ही चुके होंगे। नहीं तो इतना सम्मान नहीं हो सकता। जीवित अगर होते वह, तब तो अपमान होता, गालियां पड़तीं।

आदमी का कुछ गणित है। जिंदा तीर्थंकर हो, गाली दो; क्योंकि जिंदा तीर्थंकर तुम्हारी धारणाओं के विपरीत होगा। और जब मर जाए, तो सम्मान करो; क्योंकि मर जाए, तो फिर पश्चाताप पकड़ता है कि अरे, हमने गालियां दीं, अपमान किया, पाप किया, अब कहीं फल न भोगना पड़े! तो जिंदा हो तो पत्थर मारो, मर जाए तो फूल चढ़ाओ। वे फूल भी तुम्हारे पत्थरों के पश्चाताप हैं, और कुछ भी नहीं। जीसस को सूली दो, और फिर मर जाने के बाद दो हजार साल तक हजारों-हजारों चर्चों में पूजा करो।'

'जीवित में है वह परम वस्तु।'

किस परम वस्तु की बात कर रहे हैं दद्दू शाह? वह परम वस्तु-

'अब एक पहेली बूझो तो जानूं तू बड़ा सयाना है।

कौन सी वस्तु गुरु देता है जिसको संतों ने अमोलक माना है।

क्या राम रतन धन मीरा का, गुरु नानक, संत कबीरा का?

'ओंकारं शरणं गच्छामि, भज ओशो शरणं गच्छामि।।'

वह परम वस्तु ओंकार के रूप में, अनाहत-नाद के रूप में, हमारे भीतर गूंज रही है; जिस गूंज में डूबने से सारी शक्तियां हमारे भीतर जागृत हो जाती हैं। हमारी शक्ति जागृत

होकर हमारे जीवन को दिव्य कर देती है, हमें परमात्मा बना देती है, हमें जीवित काली बना देती है। लेकिन हम तो केवल मूर्ति पूज़–पूज़ कर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। साकार की पूज़ा कर रहे हैं लोग। साकार की पूज़ा अगर करेंगे–

साकार बने यदि आलंबन, तो खोज वहीं रुक जाती है।

हमने साकार की पूज़ा की, शुरुआत के लिए, तो ठीक बात है। कुछ तो चाहिए, हम निराकार को कैसे पूज़ेंगे, जिसको जाना ही नहीं, प्रेम में उसकी पूज़ा कैसे करेंगे? साकार चाहिए शुरुआत के लिए, लेकिन हम साकार में ही अटक जाते हैं।

साकार बने यदि आलंबन, तो खोज वहीं रुक जाती है।

बड़ी आवश्यक बुराई है, साकार चाहिए भी, और फिर सहारा जब मिलता है तो हम उसी में अटक कर रह जाते हैं। आगे बढ़ते ही नहीं।

साकार बने यदि आलंबन, तो खोज वहीं रुक जाती है;

निर्गुण में आलंबन के बिना कुछ दिशा नहीं मिल पाती है।

और जब हम निराकार की पूज़ा करें, निराकार की उपासना करें, तो अब यहां पर कोई आलंबन नहीं, तो कोई दिशा ही नहीं मिलती। दत्तात्रेय कहते हैं कि योगी जो है, शून्य के जंगल में भटक जाता है। कोई पदचिह्न ही नहीं है वहां पर, कोई आलंबन नहीं है; अब वहां पर भी कोई दिशा नहीं मिलती।

प्रभु निर्गुण ज्योतिर्नाद अहो, वह तुम ही हो तुम ही तो अहो।

गुरु बताता है उस निराकार में गूंजते हुए ओंकार को, गुरु दिखाता है उस निराकार में बरसते हुए नूर को।

प्रभु निर्गुण ज्योतिर्नाद अहो, वह तुम ही हो तुम ही तो अहो।

प्रत्येक के भीतर वह निर्गुण ज्योतिर्नाद स्वरूप परमात्मा छुपा हुआ है। और प्रत्येक के भीतर वह संभावना है कि वह उसको पा सकता है। उस संभावनाओं की ओर गुरु का सहारा मिल जाए तो ये जीवन धन्य हो जाता है। असली खोजी, असली साधक, असली पूज़ा करने वाला वही है जो अपने भीतर छिपी हुई शक्तियों की पूज़ा करता है। आत्म पूज़ा में डूबता है।

हरि ओम तत्सत्!

परम स्वर रूपी परमेश्वर

'आछे दीनदूनियाय औचिन मानुष ऐकजौना
काजेर शोमौय पौरोशमोनीं, आर शोमौय केउ चेनेना।।
नोबीं ओलीं एइ दूइजौने
कौलमादाता दौल आरफिने,
बे–कालमाय शे औचिनजौने
पींरेर पीर हौय जान ना।।
जे दिन साँई नोइराकारे
भाषलेनऐका ऐकेश्शौरे,
शोई औचिन मानुष तारे
दोशेर तौत्खौना।।
केउ तारे जेनेछे दौड़ो,
खोदार छोटो नोबींर बौड़ो,
लालोन बौले नौड़ चौड़
शेनोइले दौल पाबो ना।।'

इस दीन दुनिया में एक अन्जाना मानुष है, जो समय पर पारसमणि और जब तक उसे न जाना जाए, चुपचाप पड़ा रहता है। नबीं और अलीं भीं जिसे मानते हैं, वो कलमादाता, अल्लाह कीं धुन जिसमें समाई है। कलमा कीं धुन को जो न जान पाता, वह अनजाना हीं रह जाता है, जो उस अनजाने मानुष को पहचान लेता, जान लेता; वो पींरों के पींर को जान लेता है।

वो साँई निराकार में एक–एकेश्वर है, जो निराकार में समाया है, वो अनजाना मानुष हीं निराकार का परम मित्र है।

कोई–कोई हीं उसे जान पाता है, जो खुदा से छोटा, नबीं से बड़ा है। संत लालन कहते हैं थोड़ा जागो, उठे नहीं तो बिछुड़ जाओगे।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालान शाह के वचन हैं–

‘आछे दीनदूनियय औचिन मानुष ऐकजौना

काजेर शोमौय पौरोशमोनीं, आर शोमौय केउ चेनेना।।’

इस दीन दुनिया में, एक अनजाना मानुष है, जो समय पर पारस मणि और जब तक उसे ना जाना जाए, चुपचाप पड़ा रहता है।

बाउल फकीर परमात्मा को ‘अनजाना मानुष’ कहते हैं। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, अनुभूति है। अगर हम अपने आप को देह मानकर जीते हैं, हम देह में ही जीते हैं। स्वयं को देह मानते हैं तो इस संसार में हमें देह ही दिखाई देगी। परमात्मा एक अनुभूति है और संसार भी एक अनुभूति है। भीतर हम जिस अनुभूति में जीते हैं, वैसी ही प्रतिछवि, वैसा ही प्रतिबिंब संसार में दिखाई देता है।

अगर हम अपने चैतन्य में डूबकर जीते हैं। अपने चैतन्य स्वरूप को जानकर जीते हैं तो यह संसार उसी चैतन्य का विस्तार दिखाई देता है। और अगर हम स्वयं को पार्थिव मान कर और देह में जी रहे हैं, तो यह संसार भी हमारे लिए, बस संसार ही होकर रह जाएगा।

परमात्मा में जिएं तो परमात्मा की छवि है संसार। देह में जिएं तो कई देह का विस्तार है यह संसार। आकार का एक घर है यह संसार। परमात्मा है निराकार, और हम उसे ढूंढ़ रहे हैं साकार में, हम उसे ढूंढ़ रहे हैं आकार में। वह निराकार परमात्मा, उसे कैसे जाना जाए? इसका राज गुरु बताता है।

‘क्या राज बताया भीखा को, जो बता गुलाल गुलाल हुए?

क्या कुंभनाथ ने दिया जो पाकर लाल अचानक लाल हुए?

भारत की असली पूँजी क्या, प्रभु के ताले की कुंजी क्या?

अथ अनहद शरणं गच्छामि, भज ओशो शरणं गच्छामि।।’

उस निराकार की कुंजी क्या है? उस परमात्मा की कुंजी क्या है? वह कुंजी गुरु देता है।

नोबीं ओलीं एइ दूइजौने

कौलमादाता दौल आरफिने,

बे–कालमाय शे औचिनजौने

पीरेर पीर हौय जान ना।।'

नबी और अली भी जिसे मानते हैं वो कलमादाता अल्लाह की धुन जिसमें समाई है। कलमा की धुन को जो न जान पाता, वह अनजाना ही रह जाता है। जो उस अनजाने मानुष को पहचान लेता, जान लेता, वो पीरों के पीर को जान लेता है।

पीरों का पीर परमगुरु तो परमात्मा है। इसलिए तो हम गुरु को भी परमात्मा कहते हैं, क्योंकि गुरु सूक्ष्म रूप में परमात्मा का प्रतिनिधि है। और परमात्मा विराट रूप में गुरु का विस्तार है।

जहां भी ज्ञान है और जहां भी रोशनी है, परमात्मा से आ रही है। गुरु गोमुख है, गंगोत्री परमात्मा के यहां से निकल रही है।

इसलिए तो सभी धर्म कहते हैं, गुरु की शरण में वह रहस्य जाना जाता है। तो गुरु की शरण में जो जाए, उसकी शरण में जो डुबकी लगा ले, उसके चरणों में जो स्नान कर ले, उसके चरणों का गंगा जल जो पी ले; उसके जीवन में उस अनजान मानुष से परिचय हो जाता है। अब परमात्मा उसके जीवन का प्रतिरूप हो जाता है। इसलिए गुरु की इतनी महिमा है। सिक्ख धर्म में सिक्खों के धर्म-स्थल को गुरुद्वारा कहते हैं। क्योंकि गुरु के द्वार से उस अनजान मानुष तक पहुंचा जाता है।

जिसके लिए कबीर साहब कहते हैं-

'गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांए।

बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताए।।'

नबी और अली जिसे मानते हैं, वो कलमादाता, अल्लाह की धुन जिसमें समाई है। कलमादाता अल्लाह की धुन ओंकार को कहा गया है। सदा-ए-आसमानी जिसे कहते हैं। जिसने उस धुन को सुन लिया, जिसने उस धुन को पकड़ लिया, वह पहुंच गया परमात्मा तक। जैसे कोई सूरज तक पहुंचने के लिए एक किरण को पकड़ ले और सूरज तक पहुंच जाए।

किसी ने ओशो से पूछा- सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्या है जीवन में, जिसे बचाया जाए? वह एक चीज जिसे बचाकर सारा जीवन बच जाता है?

तो परमगुरु ओशो ने कहा- वह एक चीज है संगीत। जीवन के संगीत को अगर बचा लिया, तो सारा जीवन बच गया। यह जीवन का संगीत, जिसे अल्लाह की धुन कहा जाता है। फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई-

एक बार की बात है एक बहुत सुन्दर सारंगी बजाने वाला संगीतज्ञ...जंगल घूमने का उसे शौक था। सुबह घूमते–घूमते अचानक वह भटक गया जंगल में और उसे रात हो गई। अब रात अंधकारपूर्ण हो गई, कहां जाए कुछ समझ में नहीं आया। उस अंधकार में एक जगह बैठकर, वह संगीत बजाने लगा। तभी वहां से डाकुओं का एक गिरोह निकल रहा था, उन्होंने संगीतज्ञ को देखा। वे डाकू भी अब अंधेरे में कहां जाते? वे भी वहीं विश्राम करने के लिए आ रहे थे। डाकुओं ने जब देखा कि एक आदमी है जिसे लूटा जा सकता है, उन्होंने उस संगीतज्ञ को पकड़ लिया, उसके सारे पैसे छीन लिए, उसका वाद्य भी छीन लिया। सब कुछ छीन लिया, फिर भी संगीतज्ञ कुछ नहीं बोला। जब उसका एकमात्र छोटा सा वाद्य सारंगी छीनने लगे तो वह हाथ पैर जोड़ने लगा, पैरों पर गिर पड़ा, बोला कि मेरा वाद्य भर मत छीनो, सब कुछ ले लो मेरा। तो डाकू भी सोचे कि सब कुछ ले लिया तो दिक्कत क्या है? एक छोटे सा वाद्य, इसकी क्या कीमत हो सकती है? इसकी कीमत नहीं, चलो छोड़ देते हैं।

अब रात पूरी पड़ी थीं, क्या करता संगीतज्ञ, बैठकर संगीत की धुन छेड़ने लगा। डाकू तो पहले बोले, क्या हल्ला कर रहे हो? चुपचाप बैठो। लेकिन उसने कहा कि इतनी तो स्वतंत्रता मुझे दे दो। उसने संगीत की धुन छेड़ ली। अचानक डाकुओं को भी संगीत की धुन छू गई और वे डाकू भी झूमने लग। ऐसी मदहोशी, ऐसा मजा आने लगा कि वे संगीत की धुन में एकदम तल्लीन होने लगे। कब सुबह हो गई, उन्हें पता ही नहीं चला। इतनी शांति उन्होंने तो कभी जानी ही नहीं थी। ऐसी रस की धार, ऐसा आनंद उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया था। उन्हें तो बहुत अहोभाव पैदा हुआ उस संगीतज्ञ के प्रति, सारे डाकू संगीतज्ञ के चरणों में गिर गए। बोले कि तुमने हमें इतनी शांति, इतनी तृप्ति, इतना आनंद दिया है; हम इसके बदले में तुम्हें क्या दे सकते हैं? तुम्हारा ही धन तुम्हें वापस कर देते हैं। और केवल तुम्हारा ही धन नहीं, हमारे पास जो भी है, वह भी तुम्हारा है। और सब कुछ उसे लौटा दिया।

तो जो जीवन के संगीत को बचा लेता है, उसके जीवन में सब कुछ लौट आता है। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह जो डाकू हैं, वे, हमारे जीवन का जो अनुभव है, उसे छीन लेते हैं, हमारे जीवन के आनंद को छीन लेते हैं। लेकिन जब इस संगीत की धुन में हम डूबते हैं। कलमादाता, अल्लाह की धुन में डूबते हैं, तो ये सारे डाकू हमारे खोए हुए चैन को, हमारे आनंद को वापस कर देते हैं। वो कलमादाता अल्लाह की धुन, उसका

रहस्य गुरु बताता है।

आएं, सुनें परमगुरु ओशो क्या कहते हैं, इस कलमादाता अल्लाह की धुन के बारे में–

'शब्द से बेहतर होगा कि कहें पहले ध्वनि थी। मूल थोड़ी कम हो जाती है लेकिन मिट नहीं जाती। क्योंकि ध्वनि को सुनने के लिए भी कोई कान चाहिए। जब कोई भी सुनने वाला नहीं है तो ध्वनि का भी कोई अस्तित्व नहीं होता। शायद तुम सोचते होओगे कि जंगलों में गिरते हुए जलप्रपातों का वह स्वर–संगीत तुम्हारे चले जाने पर भी वैसा ही बना रहता है– तो तुम गलती में हो। तुम गए कि वह भी गया। वह दो के बीच था। तुम्हारे कान जरूरी थे।

ध्वनि भी नहीं हो सकती। तो कौन था जो सबसे पहले था? उपनिषद्? उपनिषद् बहुत ईमानदार हैं। उपनिषदों से ज्यादा ईमानदार किताबें इस जमीन पर दूसरी नहीं हैं। उपनिषद् कहते हैं वह कौन था जो पहले था, किसी को भी कोई पता नहीं है। कैसे हो सकता है पता? वह कौन था जो था? उसका कोई भी तो साक्षी नहीं है। और कौन है जो अंत में रह जाएगा? उसका भी कोई साक्षी नहीं है। और अगर प्रारंभ में अज्ञेय है और अंत में अज्ञेय है तो बीच में भी अज्ञेय ही है। तुम्हारे सब नाम–धाम झूठे हैं। तुम्हारी जाति, तुम्हारे धर्म, तुम्हारी दीवारें झूठी हैं। तुम्हारे राष्ट्र और तुम्हारे सारे भेद झूठे हैं।

ध्यान एकमात्र प्रक्रिया है उस अज्ञेय में उतर जाने की, जहां तुम अचानक मौन हो जाते हो। क्योंकि जो तुम देखते हो उसको कोई भी शब्द नहीं दिया जा सकता।'

'जे दिन साँई नोइराकारे
भाषलेन ऐका ऐकेश्शौरे,
शेई औचिन मानुष तारे
दोशेर तौत्खौना।।'

वो साईं निराकार में एक–एकेश्वर है, जो निराकार में समाया हुआ है। वो अनजाना मानुष ही निराकार का परम मित्र है। जो भीतर जाते हैं, जो अपने निराकार में डूबते हैं, उस शून्य में डूबकी लगाते हैं; वो पाते हैं यह शून्य खाली नहीं है। यह शून्य धुन से भरा हुआ है, शून्य संगीत से पूर्ण है। शून्य प्रकाश से भरा पूरा है। यह शून्य उन्हें पूर्ण के रूप में अनुभव देता है। इसलिए संतों ने इसे निरंकार कहा है। इस निरंकार में एक ध्वनि

कलमादाता अल्लाह की धुन गूंज रही है, और ऐसा ही नूर बरस रहा है।

तो ऐसी परिपूर्ण तृप्ति होती है। ऐसा महाजीवन का अनुभव होता है, विस्तार का अनुभव होता है, उस असीम का अनुभव होता है, उस पीरों के पीर परमात्मा का अनुभव होता है। इसके बारे में लालन शाह ने ये पूरा गीत लिखा है। अगर उस निरंकार की अनुभूति करनी है तो–

'सबसे पहले स्वयं में रमो, शून्य में थिर होकर जमो।
फिर छोड़ो सुधि तन–मन की, और सुनो धुन कीर्तन की
जो भीतर गूंज़ रहीं अविराम, सुमिरन रहे ओम् का नाम.....
ओम् है ब्रह्मा–विष्णु–महेश ओम् के बाहर कुछ भी न शेष।
सुने सो शिष्य, सुनाए सो गुरु, ओम् के साक्षात रूप– सद्गुरु।।
इसी से जन्मे धर्म तमाम, सुमिरन रहे ओम् का नाम....
राम–रतन–धन को अब जानो, स्वर को ही ईश्वर पहचानो।
जो गूंज़ रहा संसार में पूरे, मद्धिम–मद्धिम धीरे–धीरे।।
सुनो शांत होकर निष्काम, भज लो प्यारे ओम् का नाम.....
एकै साधे सब सधे, मिट जाते सब क्षोभ।
ओंकार में ध्यान से, गिरते सब अवरोध।
सुफल होएंगे सारे काम, भज लो प्यारे ओम् का नाम.....'
हरि ओम तत्सत्!

सत्संग की महिमा

'आर कि बोशबो ऐमोन शाधुर बाजारे
ना जानि कोन शौमौय
कोन दौशा हौय आमारे।।
शाधुर बाजार की आनोंदोमौय,
शेथाय औमाबौश्याय पूर्नो चौन्द्रो उदौय कौतो
भाग्येर फौले शे चाँद दृष्टो हौय
भौबो बौन्धौन जाला जायगो दूरे।।
देबेर दूर्लौभ शाधुर पौद शे जे,
शाधुर नाम शौकोल शास्त्रे भाषे
गौंगा जौनोनी पोतींतो–पाबोनी
शाधुर चौरोन शेओ बाँछा कौरे।।
आमी दाशेरो दाशेर जोग्गो नाइ
बोहु भाग्यो फौले शाधुशौंगों पाई,
कौय फोकींर लालोन मोर भोक्तीं शून्यो
मोन, एबार बूझीं पौलाम कादाय चोरे।।'

'कब बैठूंगा ऐसे साधुओं के बाजार में, फिर ऐसा सत्संग कब होगा? न जाने कब कैसी मेरी दशा हो? ऐसे साधुओं का सत्संग फिर कब मिलेगा मुझे?

साधुओं का साथ बड़ा ही आनंददायी है, ऐसा लगता है अमावस्या में पूर्ण चन्द्र उदय हुआ है, ऐसा सुंदर चाँद भाग्य से ही देखने को मिलता है, जिनके दर्शन से ही भव–बंधन–ज्वाला मिट जाते हैं।

देवों को भी साधु पद अति दुर्लभ है। साधु नाम सब शास्त्र में लिखा है। उनकी महिमा सभी शास्त्रों में समाई है।

साधु संग गंगा जननी जैसा है, पतित पावन है। साधु चरण की जो आस लगाए रहते हैं, वे भी निर्मल हो जाते हैं। मैं दासों का दास किसी योग्य नहीं। अनेक पुण्य से, भाग्य से मैंने साधु संग पाया है। संत लालन कहते हैं– मेरी भक्ति शून्य मन है, तभी तो इस पंक से उबर नहीं पा रहा हूँ। भक्ति से शून्य मन उस अमृत को कैसे पा सकता है।'

मेरे प्रिय आत्मन, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह के वचन हैं–

'आर कि बोशबो ऐमोन शाधुर बाजारे
ना जानि कोन शौमौय
कोन दौशा हौय आमारे।।'

कहते हैं– कब बैठूंगा ऐसे साधुओं के संग में? ऐसा सत्संग कब होगा? न जाने ऐसी परिस्थिति कब निर्मित होगी?

भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं का एक संघ बनाया। उस संघ को बनाने का मकसद था कि सब लोग एक दूसरे के प्रेरणा स्रोत बन जाएं। अंतर्यात्रा के साथी मिल जाएं। कभी कोई एक थक जाए तो दूसरा उसे ऊर्जा से भर दे, उत्साह से भर दे, संकल्प से फिर–फिर भर दे।

सत्संग का अर्थ है– जैसे कोई परदेश में, अनजाने देश में, अचानक अपने देश का कोई अनजान व्यक्ति भी मिल जाए तो हमें अपने देश की याद आ जाती है। ऐसे ही सत्संग में, साधु के संग में, उन्हें देखकर अपने वास्तविक घर की याद आ जाती है। हमें जीवन की व्यर्थता का एहसास होने लगता है। जीवन की सार्थकता की याद आने लगती है, श्रेष्ठ का स्वाद जगने लगता है। निरर्थक पता चलने लगता है कि यह जीवन कैसे बीता चला जा रहा है? ऐसे ही बीता जा रहा है। यह याद दिलाने वाले लोग, साधुओं का संघ है।

'शाधुर बाजार की आनोंदोमौय,
शेथाय औमाबौश्याय पूर्नो चौन्द्रो उदौय
कौतो भाग्येर फौले शे चाँद दृष्टो हौय
भौबो बौन्धौन जाला
जायगो दूरे।।'

साधुओं का साथ बड़ा ही आनंददायी है, ऐसा लगता है अमावस्या में पूर्ण चन्द्र उदय हुआ है। ऐसा सुंदर चाँद भाग्य से ही देखने को मिलता है, जिनके दर्शन से ही भव–बंधन–ज्वाला मिट जाते हैं।

गुरु साहिबान कहते हैं–

'वडभागी हरि संगति पावहि। भागहीन भ्रमि चोटा खावहि।
बिनु भागा सतसंगु न लभै बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ।।'

बड़े भाग्य से सत्संग मिलता है, साधुओं का संग मिलता है। और जब तक सत्संग ना मिल जाए, साधुओं का संग ना मिल जाए, यह मन निर्मल नहीं होता। मन की मैल धुलती नहीं है। और ऐसे सत्संग में, ऐसे सद्गुरुओं के साथ में, अगर हमारे जीवन का एक कदम भी उठ जाए तो वह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। कुछ ऐसा समझें कि जीवन में पूर्णिमा ही आ गई। और बिना गुरु के साथ के, बिना साधुओं के साथ के जीना अमावस्या की तरह है, अंधेरे में जीने की तरह है। और जो पूर्णिमा और अमावस्या है, इसमें तो पंद्रह दिन का

फासला होता है। लेकिन जीवन की पूर्णिमा, जो कि साधुओं के साथ बैठने पर आती है, सद्गुरुओं के चरणों में आती है; जीवन की पूर्णिमा और अमावस्या में सिर्फ एक ही फासला है–'समर्पण'। और 'समर्पण'––यानी जीवन की पूर्णिमा आ गई; और 'अहंकार'––यानी जीवन की अमावस्या आ गई।

एक बार की बात है, राजा जनक के पास एक साधु आया। साधु ज्ञान लेने के लिए उनके पास आया था। लेकिन राजा जनक की परिस्थितियां देखकर, उनके जीने का ढंग देखकर, साधु के मन में उनके प्रति कोई श्रद्धा पैदा नहीं हुई, पर फिर भी साधु ने प्रणाम किया। और कहा कि आपके पास मेरे गुरु ने भेजा है कि आगे का ज्ञान आपसे लिया जाए।

राजा जनक बोले, ठीक है। खूब स्वागत किया, सत्कार किया। रात को बैठे थे दोनों साथ में, तो राजा जनक से साधु ने पूछा कि आपके जीने का ढंग, आप जिस तरह से जीते हैं, तो आप में और साधारण संसारी में क्या फर्क है? ये भेद मैं समझ नहीं पा रहा। कृपया मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।

राजा जनक बोले– ठीक है, कल इसका उत्तर मिलेगा। सुबह हुई, दोनों साथ–साथ नदी में स्नान करने जाते हैं; दोनों नदी में स्नान कर रहे हैं और अचानक एक व्यक्ति दौड़ा–दौड़ा आता है और कहता है कि आपके महल में आग लग गई। राजा जनक ठीक वैसे ही स्नान करते रहे, वैसे ही नदी का मजा लेते रहे और साधु तो घबड़ा गया, बोला आप क्या कर रहे हैं? आपके महल में आग लग गई और आप तनिक भी विचलित नहीं हैं और कोई जल्दबाजी नहीं है आपको बाहर निकलने की, जाने की। मेरी तो लंगोटी जलने वाली है और मैं क्या करूंगा? मेरी एकमात्र लंगोटी और उससे भी मैं हाथ धो बैठूंगा। मैं तो दौड़ रहा हूं।

राजा जनक बोले– देखो यही फर्क है तुम में और मुझ में। तुम संसारी हो, तुम्हारे पास मात्र एक लंगोटी की पकड़ है और मेरे पास सारा साम्राज्य है लेकिन मैं साम्राज्य में रहते हुए भी जल में कमलवत हूं। उस महल पर मेरी कोई पकड़ नहीं है। मैं महल का उपयोग करता हूं, उसमें रहता हूं, पूर्ण जागरूक होकर रहता हूं, जल में कमल की तरह, मुझे जल नहीं छूता। साधु ऐसी याद दिला देते हैं, साधु यह समझ पैदा कर देते हैं।

और जरूरी नहीं है ऐसे साधु के वेश में जो रहते हैं, उसी रूप में मिले, बिल्कुल भी जरूरी नहीं है। कोई क्रियाकांड करने वाला, कोई तपस्या करने वाला, कोई साधुओं के वेश में रहने वाला, बिल्कुल भी जरूरी नहीं कि अभी उसके भीतर साधुता घटित हुई हो। और एक बिल्कुल साधारण सा व्यक्ति, घर में रहने वाला, जिसका पता भी नहीं चले और उसके भीतर, ऐसी साधुता पैदा हो सकती है।

ऐसे साधुओं के बीच में रहने से हमारे भीतर एक प्रज्ञा पैदा होती है। हमें भी याद आती है कि कैसे हम उस दिव्यता की ओर उड़ सकें? कैसे हम साक्षित्व में जी सकें? कैसे हम तथाता भाव में जी सकें? कैसे हम इस संसार में रहते हुए भी, उस संसार के, उस परमात्मा

के आकाश के वासी हों।

‘देबेर दूर्लौभ शाधुर पौद शे जे,
शाधुर नाम शौकोल शास्त्रे भाषे
गौंगा जौनोनी पोतीतो–पाबोनी
शाधुर चौरोन शेओ बाँछा कौरे।।’

देवों को भी साधु पद अति दुर्लभ है। साधु नाम सब शास्त्र में लिखा है। उनकी महिमा सभी शास्त्रों में समाई है।

साधु संग गंगा जननी जैसी है। पतित–पावन है, साधु चरण की जो आस लगाए रहते हैं, वे भी निर्मल हो जाते हैं।

साधु संग के लिए तो कबीर साहब भी कहते हैं–

‘राम बुलावा भेजिया दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु संग में सो बैकुंठ न होय।।’

इस संसार से जाने की पूरी तैयारी होते हुए भी एक ही दुख था, वह दुख था कि साधुओं का संग नहीं मिलेगा, सत्संग नहीं मिलेगा। यह साधु का संग कैसे मिलेगा वहां? राम ने बुलावा भेजा है, खुशी की भी बात है और दुख की भी बात है। दुख की बात यह है कि अब साधु संग से बिछुड़ना होगा। और जो साधु संग में सुख है, वह बैकुण्ठ में भी नहीं है। वैसा सुख बैकुण्ठ में भी नहीं है।

सत्संग का अर्थ है– जिसका दीया जल गया है, उसके पास बैठ जाएं। उसके पास बैठते ही हमारी भी चेतना की लौ ऊर्ध्वगामी हो जाएगी। हमारे जीवन का दीया भी जल जाएगा। यही सत्संग का अर्थ है। सत्संग का अर्थ है– जिसने एक पात्र से परमात्मा की शराब पी हो, उसी पात्र में हम पानी भी डालकर पी लें तो हमें परमात्मा का स्वाद लग जाएगा।

लेकिन साधु संग में, सत्संग में एक ही दीवार है। साधुओं के बीच बैठने पर भी सत्संग नहीं हो सकता, दीवार बनकर हम बैठ सकते हैं। वह दीवार क्या है? वह दीवार है– अहंकार की दीवार।

आएं परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

‘तत्वमसि’ तब फिर तुम वही हो जो परमात्मा है, फिर जरा भी भेद नहीं। भेद कभी था भी नहीं, तुमने ही भ्रांति बना ली थी तो भेद हो गया था। तुमने ही लक्ष्मण रेखा खींच रखी थी अपने चारो तरफ और मान लिया था कि इसके बाहर नहीं जा सकता हूं। बस मानने की बात थी, ख्याल रखना। लक्ष्मण रेखाएं किसी को रोक नहीं सकती। बस मानने की बात है। और अगर मान लो तो रोक लेती।

‘अहंकार सिर्फ एक मानी हुई भ्रांति है जो बचपन से हमें समझायी

गई है कि तुम हो; तुम अलग हो; कि तुम भिन्न हो; कि तुम्हें कुछ दुनिया में करके दिखाना है; कि तुम्हें नाम छोड़ जाना है; कि इतिहास में तुम्हें अपने चिह्न छोड़ जाने हैं, ऐसे ही मत मर जाना है, यह लक्ष्मण रेखा गहरी हो गई है।

इस लक्ष्मण रेखा को मिटाने के लिए कुछ उपाय खोजने जरूरी हैं।

गुरु के चरणों में सिर रखना बहुत उपायों में से एक उपाय है और बहुत कारगर उपाय है। क्योंकि मंदिर की मूर्ति के सामने भी तुम सिर रख सकते हो लेकिन कारगर नहीं होगा। क्योंकि मंदिर में पत्थर की मूर्ति है, उसके सामने झुकने में तुम्हारे अहंकार को चोट नहीं लगती। जब तुम अपने ही जैसे मांस–मज्जा के बने मनुष्य के सामने झुकते हो तब चोट लगती है। पत्थर के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। आकाश में बैठे परमात्मा के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण, राम, बुद्ध, अतीत में हुए सत्पुरुषों के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तुम्हारे सामने जो मौजूद हो, तुम्हारे जैसा हो, भूख लगती हो, प्यास लगती हो, सर्दी–धूप लगती हो, बीमार होता हो, बूढ़ा होता हो, ठीक तुम जैसा हो, उसके सामने झुकने में बड़ी अड़चन होती है। अहंकार कहता है इसके सामने क्यों झुकूं? यह तो मेरे जैसा ही है। मुझमें–इसमें भेद क्या है? अहंकार बचाव करता है।

इसलिए जीवित सद्गुरु के सामने जो झुक गया उसका अहंकार तत्क्षण गिर जाता है। मगर यह मत सोचना कि सिर्फ झुकने से गिर जाता है। झुकना औपचारिक भी हो सकता है– जैसा इस देश में है। इस देश में झुकना औपचारिक हो गया है। लोग झुक जाते हैं, झुकने का कोई ख्याल ही नहीं आता। झुकते रहे हैं। जो आया उसके सामने झुकते रहे हैं। झुकना एक शिष्टाचार हो गया है। जैसे पश्चिम में लोग हाथ मिलाते हैं, ऐसे ही यहां लोग पैर पड़ लेते हैं। जैसे नमस्कार करते हैं वैसे ही पैर पड़ लेते हैं। नमस्कार भी एक तरकीब थी। राम की जय बोलते हैं, वह भी औपचारिक हो गया है। अब हम राम की जय बोल लेते हैं। न दूसरे में राम दिखाई पड़ता। न अपने में राम दिखाई पड़ता।'

सत्संग का अर्थ होता है– जहां सत्य दिख जाए, वहां पर प्रार्थना से भर जाना है। हे प्रभु! मेरे हृदय में उतर आओ। मेरे हृदय को तुम ही ऐसा कर दो कि यह हृदय खुल जाए, मैं ग्रहणशील हो जाऊं। और तुम्हें मैं आत्मसात् कर सकूं। यह निवेदन सत्संग है।

आमी दाशेरो दाशेर जोग्गो नाइ
बोहु भाग्यो फौले शाधुशौंगों पाई,

कौय फोकीर लालोन मोर भोक्ती शून्यो मोन,

एबार बूझीं पौलाम कादाय चोरे।।'

मैं दासों का दास किसी योग्य नहीं अनेक पुण्य से, भाग्य से मैंने साधु संग पाया है। संत लालन कहते हैं– मेरा भक्ति शून्य मन इस पंक से उबर नहीं पा रहा। भक्ति से शून्य मन उस अमृत को कैसे पिए?

'प्रभु जी संगत शरण तुम्हारी, जगजीवन राम मुरारी।

गली–गली को जल बह आयो, सुर सरी जाए समायो।।

संगत के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो।'

बस यह भक्ति से शून्य मन कैसे भक्ति से पूर्ण हो जाए? और कोई उपाय नहीं है। जिनके साथ हम रहते, जैसा संग वैसा ही रंग चढ़ता है। एक ही उपाय है साधुओं के संग बैठो। ऐसे लोगों का साथ करो, जो प्रभु के प्रेम में जीते हैं। ऐसे लोगों का साथ करो जो जीवन को दिव्यता की ओर उठाने में संलग्न है। ऐसा साथ हमारे जीवन को परिवर्तित कर देता है। जीवन के पंक से, जीवन के कीचड़ से हम तभी बाहर आ सकते हैं। कुछ कमल खिले हों जहां पर, वहां पर जाकर बैठो, अपने जीवन का समय गुजारो।

लोग तो अपने जीवन का ज्यादा से ज्यादा समय ऐसे लोगों के साथ गुजारते हैं, जो हमें सिखाते हैं कि कैसे हम संसार में सफल हों? कैसे हम चालाकियां सीखें? कैसे हम और–और ज्यादा कुशल हो जाएं, अपने आप को अपनी निम्नता की ओर ले जाने में।

रविदास कहते हैं–

'संगती के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो।

तुम चंदन हम रेंड बाप री, निकट तुम्हारे बासा।।

संगत के परताप महातम, आवै बास सुवाषा।'

हम तो अरण्डी के पेड़ जैसे हैं और तुम हो प्रभु चंदन की तरह। अरण्डी का पेड़ जिसमें की कोई खुशबू, कुछ भी नहीं, कोई गंध नहीं होती। लेकिन वह चंदन के साथ रहते–रहते चंदन की तरह महकने लगता है। यह है सत्संग का प्रताप।

आज का प्रवचन यहीं पूरा हुआ।

हरि ओम् तत्सत्!

मुर्शिद ही इकलौता सहारा

'मुर्शिद बौल रे आमार मोन पाखी।
भौबे केउ कारोर दूःखेर नौय रे दूखी।।
भूलो ना रे भौबो–भ्रांतो काजे,
आखेरे ए शौब कांडो मिछे,
मोन रे आस्ते ऐका,
जेते ऐका,
ए भौबो पिरितेर फौल आछे कि।
हौल्ला कोलाहौले शूफौद किछू नाइ,
बाड़ीर बाहीर कौरेन शौबाइ
मोन तोर केबा आपोन
पौर के तौखोन,
देखे–शूने खेदे बूझबे आँखी।।
गोरेर किनारे जौखोन लोय जाय
काँदिये शौबे जींबोन छाड़ते हौय,
औधीन लालोन बौले
कारो गोरे
केउ तो जाय ना
थाक्ते हौय एकाकी।।'

ओ मेरे मन पंछी 'मुर्शिद' बोल, मुर्शिद का नाम ले। इस भवसागर में कोई किसी के दुख में दुखी नहीं है, मुर्शिद ही एकमात्र सहारा है। इस संसार में आकर भ्रम में पड़कर मुर्शिद को ना भूल। अंत में तू जानेगा कि ये सभी कांड मिथ्या है। इस संसार के प्रेम में पड़ना व्यर्थ है, क्योंकि आना–जाना तो अकेले हीं पड़ता है। व्यर्थ हल्ला–कोलाहल से कोई सुफल नहीं मिलता, और लोग घर के बाहर निकालेंगे। यहां कौन तेरा अपना है, और कौन पराया है। ये सब देख सुनकर अति खेद में आँख मुंदोगे। सारे बंधन तोड़कर जब किनारे जाना पड़ता है, सकल संसार छोड़ना पड़ता है। संत लालन कहते हैं– किसी के बाँधने से कोई नहीं बँधता। जाना तो अकेले ही पड़ता है। इसलिए ऐ मन! मुर्शिद से नाता जोड़, वे ही एकमात्र सहारा हैं।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

संत लालन शाह का ये प्यारा गीत है–

'मुर्शिद बौल रे आमार मोन पाखीं।

भौबे केउ कारोर दू:खेर नौय रे दूखीं।।'

ओ मेरे मन पंछी मुर्शिद बोल! मुर्शिद का नाम ले, इस भवसागर में कोई किसी के दुख में दुखी नहीं है। मुर्शिद ही एकमात्र सहारा है।

भगवान बुद्ध के समय की घटना है, जब वे राजगृह में विहरते थे, उस समय की घटना है। दो बच्चे मित्र थे और दोनों सदा साथ खेला करते थे। एक मित्र हर तरह के खेल में हर बार जीतता था। और दूसरा जो बच्चा था वह सदा–सदा हारता था। यह जो मित्र हमेशा जीतता था, हारने वाले से, हर एक आयाम में कमजोर ही था, लेकिन फिर भी जीतता था।

यह दूसरा बच्चा जो सदा हारता था, गौर से देखता कि यह मित्र जो जीतता है, उसके मन में ना तो जीतने की बहुत आकांक्षा है; न जीतने के बाद वह बहुत दंभ से, गर्व से फूल जाता है, उसके भीतर कोई भी परिवर्तन नहीं आता; उसकी विनम्रता वैसी की वैसी ही रहती, जैसे कोई फलाकांक्षा है ही नहीं उसके भीतर। हर बार जीतते हुए मित्र को, दूसरा मित्र जो हारता था, वह गौर से देखने लगा यह क्या करता है, जो हर बार जीतता है? जैसे–जैसे वह खेलता, जिस–जिस तरह से वह चलता, हर बाजी को ठीक वैसे, दूसरा मित्र जो हारता था वो फॉलो करने लगा, लेकिन फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ा। फिर भी वह हार–हार जाता।

एक बार उसने देखा कि ये जो जीतने वाला मित्र है, वह खेल शुरू करने से पहले आंख बंद कर लेता है, और कुछ मन ही मन बुदबुदाता है।

मित्र ने पूछा जीतने वाले मित्र से कि तुम सदा जीतते हो, मुझे इसका राज बताओ। और तुम ये बताओ कि तुम खेल शुरू करने से पहले क्या करते हो? मन ही मन आंख बंद कर के क्या बुदबुदाते हो?

तो मित्र ने बताया कि मन ही मन मैं नमो बुद्धस्स का पाठ करता हूं। और उसके बाद खेल शुरू करता हूं।

अब जो हारने वाला मित्र था इसके मन में आकांक्षा पैदा हो गई, जीतने की आकांक्षा थी। उसने सोचा क्यों न मैं भी ऐसा ही करूं? उसने भी शुरू कर दिया, नमो बुद्धस्स का पाठ शुरू कर दिया।

किया तो था उसने अनुकरण से, किया तो था देखा–देखी, लेकिन उसे धीरे–धीरे रस आने लगा। धीरे–धीरे भीतर ही भीतर जैसे कुछ मिश्री घुलने लगी। इतनी मिठास

पैदा होने लगी, नमो बुद्धस्स मंत्र का पाठ करने से। धीरे–धीरे तो वह भूल ही गया कि उसे जीतना है। जीतना तो गौण हो गया, अब ये पाठ प्रमुख हो गया। उसके जीवन में भी शांति आने लगी, उसके जीवन में भी स्थिरता आने लगी। वैसा ही प्रसाद उसके जीवन में बरसने लगा।

एक बार की बात है, वह अपने पिताजी के साथ गया था। बैलगाड़ी पर बैठ कर गया था। उसके पिता जंगल में गए थे, लकड़ी काट कर बैलगाड़ी पर लादकर ला रहे थे। रास्ते में थक गए। उन्होंने गाड़ी को बीच जंगल में रोका और बैलों को भी खुला छोड़ दिया कि ये लोग भी कुछ खा पी आएं। बीच जंगल था, और पास में मरघट का सन्नाटा था। पास में ही मरघट था। जब देखा पिता ने कि बैल कहां गायब हो गए, तो पिता खोजने के लिए निकल गया। खोजते–खोजते देखा कि नगर के भीतर चले गए थे बैल। अब पिता को बैलों को खोजने के लिए नगर के भीतर जाना पड़ा। और लौटते समय देर हो गई, नगर के द्वार बंद हो गए, पिता अब नगर से बाहर जंगल की ओर नहीं आ सकता था। बहुत उसने मिन्नतें की लेकिन उसकी बात कौन मानता? उसे रात को नगर में ही रहना पड़ा।

और उसका बच्चा, उसे मरघट में रहना पड़ा, उस एकांत में रहना पड़ा। उस एकांत में, जहां वह भय से मर सकता था; जो उसके जीवन का अभिशाप बन सकता था, वही वरदान बन गया। उसने कभी ऐसा एकांत देखा ही नहीं था। क्योंकि घर में तो बहुत भीड़–भड़क्के में रहता था। बड़ा परिवार था, छोटा सा घर था, उसने ऐसा एकांत कभी पाया ही नहीं था। ऐसा सन्नाटा, ऐसा एकांत, ऐसा निर्जन सब कुछ, और रात जो हो गई थी, अमावस की रात थी। छिटके हुए तारे, उसे तो मजा ही आ गया।

नमो बुद्धस्स का पाठ करने लगा, जंगली जानवरों की आवाज जब आने लगी तो उसने याद किया बुद्ध को और नमो बुद्धस्स, नमो बुद्धस्स करते–करते...करते–करते उसको जाने कब नींद लग गई। नींद नहीं थी वो, उसे तो समाधि ही लग गई। पाठ करते–करते उसके अंतस के तार जुड़ गए। और ऐसा प्रकाश बरसा, भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। और उसकी नींद साधारण नींद नहीं थी, योगनिद्रा बन गई; जिसमें कि शरीर सोया हुआ था लेकिन उसका मन, उसकी चेतना जागी हुई थी। और धीरे–धीरे वह भगवान बुद्ध के साथ एकरूप हो गया।

हम जिसका नाम लेते हैं, हम जिसकी याद में जीते हैं, हम उससे एकरूप हो जाते हैं, उसकी तरह ही हो जाते हैं। जब हम अपने मुर्शिद का नाम लेते हैं बारंबार, तो हमारे भीतर मुर्शिद की शांति, हमारे भीतर मुर्शिद की तरंगें, मुर्शिद के भीतर जो गोविन्द की बरसात है वह छूने लगती है। और हमारे भीतर रूपांतरण होने लगता है। और धीरे–धीर हम ठीक

मुर्शिद के स्वरूप, जो वे हैं, जो उन्हें हुआ है, वह हमें घटित हो जाता है।

ये है मुर्शिद के नाम का चमत्कार। याद तो करना पड़ेगा, शुरुआत तो करनी पड़ेगी नामरूप से, क्योंकि हम नाम और आकार में हीं जीते हैं। इस आकार के जगत में जब हम जीते हैं, तो मुर्शिद के नाम का ही सहारा लेना होगा। और उस नाम के सहारे, नाम को जपते–जपते, एक दिन निराकार के आकाश में उस अरूप से हमारा साक्षात्कार हो जाता है। जिसका नाम परमात्मा है, जिसका नाम गोविन्द है।

गुरु साहिबान कहते हैं–

'गुरु गुरु गुरु करि मन मोर, गुरु बिना मैं नाही होर।'

ऐ मेरे मन! गुरु–गुरु की रटन लगा। गुरु के बिना मैं और कुछ भी नहीं हूं ऐसा जान, इसे अनुभव कर।

'गुर की टेक रहुहु दिनु राति, जा की कोई न मेटै दाति।'

गुरु की जीवन में टेक लग जाए, सहारा मिल जाए, मन को टेक...बारंबार जैसे गीत का टेक होता है, हर बार लौट कर उसी लाइन पर आते हैं; ऐसे ही जग में हम कुछ भी कर रहे हों लेकिन लौट–लौट कर ये मन पंछी जो है, बार–बार गुरु की याद में डूब जाए। बारंबार लौट–लौट कर, उड़–उड़ कर वापस उस डाल पर बैठ जाए, जिसका नाम गुरु है।

'गुरु परमेसरु एको जाणु।'

गुरु और परमेश्वर एक ही हैं। गुरु का जो अरूप तत्व है, वह परमात्मा है। गुरु का जो रूप तत्व है, वह परमात्मा ने आकार ले लिया है।

'गुर चरणी जा का मनु लागै, दुखु दरदु भ्रमु ता का भागै।'

जिसका गुरु चरण में मन लग गया, उसके जीवन की दुख–दरिद्रता, सब कुछ भाग जाती है, उसका जीवन सौभाग्य में बदल जाता है।

'आखेरे ए शौब कांडो मिछे,
मोन रे आस्ते ऐका,
जेते ऐका,
ए भौबो पिरितेर फौल आछे कि।'

इस संसार में आकर, भ्रम में पड़कर मुर्शिद को ना भूल; अंत में तू जानेगा कि ये सभी कांड मिथ्या हैं। इस संसार के प्रेम में पड़ना व्यर्थ है क्योंकि आना–जाना तो अकेले ही पड़ता है। हम तो अपना सारा जीवन दूसरों के लिए बिता देते हैं। हमारी नजरें सदा दूसरों की ओर रहतीं हैं। हम यह भूल ही जाते हैं कि जो परम यात्रा है, अंतिम यात्रा है उस यात्रा में तो हमें

अकेले ही जाना है। तो हम जीते जी ही उस एकांत की अनुभूति में कभी नहीं डूबते। हमें तो सदा साथ चाहिए और दुनिया के सारे कर्मकांडों में अपने जीवन को उलझाए हुए जीवन की बाजी को हारते जाते हैं।

'हर नफस मौत का इशारा है, जिंदगी आंसुओं का धारा है
हमने अपने लहू की सुर्खी से चहर ए–जिंदगी निखारा है
आज गुलशन में खारो–खस ने भी लाल–ओ–गुल का रूप धारा है
दिल धड़कता है इस तरह जैसे कोई टूटा हुआ सितारा है
जिंदगी के उदास लम्हों में अब तेरे नाम का सहारा है।'

गुरु का नाम मात्र एक सहारा है। इस जिंदगी में गुरु का साथ, जीवन के सौभाग्य की शुरुआत है। यह शरुआत है गुरु के साथ की और अंत है परमात्मा का साथ; यही सत्संग का सार निचोड़ है। इसलिए तो गुरु को परमात्मा कहा है। गुरु के साथ पहला कदम और परमात्मा के साथ मंजिल। सभी संत मृत्यु की याद दिलाते हैं, ऐसा क्यों? ताकि शाश्वत अमृत की खोज इस जीवन में रहकर ही की जा सके, वो खोज शुरू हो जाए, जैसे ही हमें मौत की याद आ जाए। मरते दम तक लोगों को मौत की याद नहीं आती।

आंसुओं का धारा है हमने अपने लहू की सुर्खी से चहर ए–जिंदगी निखारा है आज गुलशन में खारो–खस ने भी लाल–ओ–गुल का रूप धारा है दिल धड़कता है इस तरह जैसे कोई टूटा हुआ सितारा है जिंदगी के उदास लम्हों में अब तेरे नाम का सहारा है।' गुरु का नाम मात्र एक सहारा है। इस जिंदगी में गुरु का साथ, जीवन के सौभाग्य की शुरुआत है। यह शरुआत है गुरु के साथ की और अंत है परमात्मा का साथ; यही सत्संग का सार निचोड़ है। इसलिए तो गुरु को परमात्मा कहा है। गुरु के साथ पहला कदम और परमात्मा के साथ मंजिल। सभी संत मृत्यु की याद दिलाते हैं, ऐसा क्यों? ताकि शाश्वत अमृत की खोज इस जीवन में रहकर ही की जा सके, वो खोज शुरू हो जाए, जैसे ही हमें मौत की याद आ जाए। मरते दम तक लोगों को मौत की याद नहीं आती।

आश्चर्य की बात है, लोग दूसरों की मौत पर पश्चाताप करते हैं, रोते हैं, उनके बारे में सोचते हैं, बेचारा! लेकिन कभी यह याद नहीं आती कि मेरे भी जीवन का अंतिम निष्कर्ष यही है। मुझे भी एक दिन जाना है, ऐसी याद से कोई नहीं भरता। जिंदगी भर व्यस्तता की शराब का नशा पीते–पीते हम जिंदगी को गुजार देते हैं।

रामनाथ नामक एक साधक ने परमगुरु ओशो से पूछा कि मुझे अब बुढ़ापे में मृत्यु की याद सताने लगी है, डराने लगी है, क्या करूं?

आएं परमगुरू ओशो ने क्या उत्तर दिया सुनते हैं–

'मृत्यु है, इस याद को झुठलाना मत। इस याद को भुलाने की कोशिश मत करना। यह याद उपयोगी है। इसका उपयोग कर लो। बुद्धिमान तो वही है जो हर चीज का उपयोग कर ले। इसको भी सीढ़ी बना लो।

मृत्यु कीमती चीज है। अगर दुनिया में मृत्यु न होती तो संन्यास न होता। अगर दुनिया में मृत्यु न होती तो धर्म न होता। अगर दुनिया में मृत्यु न होती तो परमात्मा का कोई स्मरण न होता, प्रार्थना न होती, पूजा न होती, आराधना न होती; न होते बुद्ध, न महावीर, न कृष्ण, न क्राइस्ट, न मोहम्मद। यह पृथ्वी दिव्य पुरुषों को तो जन्म ही न दे पाती, मनुष्यों को भी जन्म न दे पाती। यह पृथ्वी पशुओं से भरी होती। यह तो मृत्यु ने ही झकझोरा। मृत्यु की बड़ी कृपा है, उसका बड़ा अनुग्रह है। मृत्यु ने झकझोरा, याद दिलाई।

बुद्ध को भी स्मरण आया था, मृत्यु को ही देखकर। एक मरे हुए आदमी की लाश को देख कर पूछा था अपने सारथी से, इसे क्या हो गया? उस सारथी ने कहा कि यह आदमी मर गया। बुद्ध ने कहा, क्या मुझे भी मरना होगा? सारथी झिझका, कैसे कहे? बुद्ध ने कहा, झिझको मत। सच–सच कहो, झूठ न बोलना। क्या मुझे भी मरना होगा? मजबूरी में सारथी को कहना पड़ा कि कैसे छिपाऊं आपसे। आज्ञा तो यही है आपके पिता की कि आपको मौत की खबर न होने दी जाए, क्योंकि बचपन में आपके ज्योतिषियों ने कहा था कि जिस दिन इसको मौत का स्मरण आएगा, उसी दिन यह संन्यस्त हो जाएगा। मगर झूठ भी कैसे बोलूं! मृत्यु तो सबको आएगी। आपको भी आएगी, मालिक! मृत्यु से कोई कभी बच नहीं सका है। मृत्यु अपरिहार्य है।

बुद्ध ने उसी रात घर छोड़ दिया, क्रांति घट गई। जब मृत्यु होने ही वाली है तो हो ही गई; तो जितने दिन हाथ में हैं इतने दिनों में हम उसको खोज लें जो अमृत है।

अगर मृत्यु से भय लग रहा है तो अशुभ नहीं है, शुभ हो रहा है। तुम पूछते हो क्या मृत्यु से छुटकारा संभव है?

मृत्यु से छुटकारा संभव नहीं लेकिन मृत्यु का अतिक्रमण संभव है। मृत्यु तो घटेगी, बुद्ध को भी मरना होता है, महावीर को भी मरना होता है। राम को भी और कृष्ण को भी। मृत्यु से तो छुटकारा संभव

नहीं लेकिन मरने की भी एक कला है। जैसे जीने की कला है। मरने की कला है– शांत मौन। ध्यान में मरना, जीने की भी वही कला है। ध्यान से जियो, जितने दिन शेष हैं, ध्यान में जियो। शांत, मौन, जागे हुए ताकि शांत, मौन, जागे हुए मर भी सको। जो शांत, मौन मरने में सफल हो जाता है, वो जानता हुआ मरता है कि मैं नहीं मर रहा हूं। वह जागा हुआ मरता है कि देह छूटी, मन छूटा मगर मैं तो वही का वही हूं।

चैतन्य तो वैसा का वैसा है अछूता। चैतन्य की इस शाश्वतता को जिसने देख लिया। उसके जीवन में आनंद की बरखा हो जाती। फूल ही फूल झर जाते हैं अमृत के। वैसे ही फूल तुम्हारे जीवन में झर सकते हैं। मृत्यु के इस भय का उपयोग कर लो। इसे शत्रु मत मानना यह मित्र है। मृत्यु भी मित्र है अगर समझो और नासमझी हो तो जीवन भी शत्रु हो जाता है।

महावीर ने कहा है: व्यक्ति अपना ही मित्र है, अपना ही शत्रु। अगर हम जागकर उपयोग करना सीख जाएं जीवन की सारी संभावनाओं का, जिनमें मृत्यु की संभावना भी सम्मिलित है। तो हम अपने मित्र हैं, नहीं तो हम अपने शत्रु। इस दुनिया से अधिक लोग गवां कर ही लौटते हैं। रामनाथ, कोई जरूरत नहीं कि तुम भी गवां के लौटो, कमा के लौट सकते हो। जागो, समय रहते जागो!'

'हौल्ला कोलाहौले शूपौद किछू नाइ,

बाड़ीर बाहीर कौरेन शौबाइ

मोन तोर केबा आपोन

पौर के तौखोन,

देखे–शूने खेदे बूझबे आँखीं।।'

व्यर्थ हल्ला–कोलाहल से कोई सुफल नहीं मिलता और लोग घर के बाहर निकालेंगे। मृत्यु के बाद लोग घर से बाहर निकाल देंगे। मन तेरा कौन अपना और कौन पराया है? ये सब देख सुनकर भीं अंत में तुम अति खेद से रोते हुए आंखें मुंदोगे। अंत में लोग आंखों में आंसू भरे हुए, पश्चाताप के लम्हों में अपना अंत समय बिता देते हैं। और मृत्यु आ जाती है।

'ऐ मेरे हमनशीं चल कहीं और चल, इस चमन में अब अपना गुज़ारा नहीं।

बात होतीं गुलों तक तो सह लेते, अब तो काँटों पे भी हक हमारा नहीं।।'

जो हमने बनाया साम्राज्य, जिसके लिए हम जिंदगी भर अपना सारा जीवन, सारी

ऊर्जा निछावर करते रहे, उस पर हमारा कोई हक नहीं, दूसरे हड़पने के लिए बैठे हैं। मौत आने–आने को है, उसके पहले ही लोग हड़पने के लिए बैठे हैं। और ना भी हड़पें तो क्या? क्या हम इसे साथ ले जा सकते हैं?

कांटो तक तो साथ, अब तो कांटो पर भी हमारा हक नहीं।'

फूल की तो बात दूर अब तो कांटो पर भी हक हमारा नहीं।

'दी सदा दार पर और कभी दूर पर किस जगह तुमको पुकारा नहीं,

ठोकरें यूं खिलाने से क्या फ़ायदा, साफ कह दो कि मिलना गवारा नहीं।।

और इस पश्चाताप में हम कहां–कहां आवाजें देते हैं? किस–किस को पुकारते हैं? लेकिन परमात्मा की प्रतिध्वनि हमें कभी सुनाई नहीं पड़ती क्यों? क्योंकि प्रतिध्वनि कैसे सुनाई पड़ेगी? जिंदगी भर जिसको पुकारा नहीं, जिंदगी भर जिसकी याद नहीं की। अब अंतिम समय में क्या कर सकते हैं हम? पूरे जिंदगी का पैटर्न ही तो अंतिम समय में एक निचोड़ की तरह आता है। आज आए हो, कल तुम चले जाओगे। जिनको जिंदगी भर प्यार किया था।

'आज आए हो तुम कल चले जाओगे, ये मोहब्बत को अपनी गवारा नहीं।

उम्र भर का सहारा बनो तो बनो, दो घड़ी का सहारा–सहारा नहीं।।'

सहारे दो घड़ी के हैं, उम्र भर का सहारा कहां है? उम्र भर का सहारा दिखता है लेकिन कौन सा सहारा है? दिखते हैं लोग साथ–साथ लेकिन कहां साथ होते हैं? कितने अकेले हैं सब? कितने अजनबी हो जाते हैं एक दूसरे से?

'गुलिस्ताँ को लहु की जरूरत पड़ी, सबसे पहले ही गर्दन हमारी कटी,

फिर भी कहते हैं मुझसे कि अहले चमन, ये चमन हमारा तुम्हारा नहीं।।'

सारी जिंदगी हमने अपना सब कुछ, सर्वस्व दिया, लेकिन फिर लोग कहते हैं तुम्हारा इस पर क्या हक है? ये सब कुछ हमारा है। मौत घड़ी भर में सब कुछ छीन लेती है। जो हमने जिंदगी भर जमा किया, इस जगत में, इस जगत का वो सब कुछ मौत छीन लेती है, लोगों के हिस्से आ जाता है।

ऐसा पदार्थ खोजो, जो शाश्वत है। ऐसे चरण पकड़ो जो शाश्वत की ओर दिशा देते हैं। वे चरण हैं गुरु के चरण।

'मुर्शिद बौल रे आमार मोन पाखी।'

हरि ओम् तत्सत्!

कौन है अनजाना मानुष?

ऐक औजान मानुष फिरछे देशे तारे चिन्ते हौय
तारे चिन्ते हौय, तारे मान्ते हौय।।
शोरीयतेर बुनियादे
पाबे ना तो कोनो मौते,
जाना जाबे मारफौते
जोदी मोनेर बिकार जाय।।
मूल छाड़ा एक आजगोबी फूल
फूटेछे शे भौबोनोदीर कूल,
चिरोदिन ऐक रोशीक बुलबुल
शे फूलेर मोधु–खाय।।
शुनेछि एक मानुषेर खौबोर,
आलेफेर जेर मिमेर जौबोर,
लालोन बौले होश्ने फाँफोर
मुर्शिद धोरले जाना जाय।।'

'एक अनजाना मानुष फिरता है देश में, पहचान ले उसे, एक अनजाना मानुष देश में ही है, उसे तू पहचान ले, जान ले और उसके होने को मान ले। शरीयत की बुनियाद पर तू उसे नहीं पा सकता। अर्थात् जबरदस्ती उसे तू नहीं पा सकता। समस्त विकार जाते ही गुरु के मार्फ़त उसे जाना जा सकता है। इस संसार रूपी नदी में एक अजब फूल खिला है, जिसका मूल नहीं है अर्थात् जड़ नहीं है और हर दिन एक रसिक बुलबुल उस फूल का मधुपान कर जाता है। वह मधुर संगीत सुना कर अमृत पान कराता है। उस मानुष की खबर अलफ के जोर से ही जानी जाती है। संत लालन कहते हैं, यह सब देख सुनकर फेर में मत पड़। कामिल मुर्शिद ही उसकी पहचान करवाएगा। कामिल मुर्शिद ही तुझे उस बुलबुल का संगीत सुनवाएंगे और अमृत का पान करवाएंगे।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह के वचन हैं–

'ऐक औजान मानुष फिरछे देशे तारे चिन्ते हौय

तारे चिन्ते हौय, तारे मान्ते हौय।।'

एक अनजाना मानुष इस देश में ही है और उसे पहचानना होता है। उसे तू पहचान ले, उसे तू जान ले और उसके होने को मान ले।

एक बार की बात है, दो मित्र गुरुकुल में एक साथ पढ़ते थे। बड़ा होकर एक मित्र बादशाह बना, दूसरा मित्र फकीर बना। वह फकीर दुनिया में जगह–जगह घूमा, दुनिया के हर कोने में घूमता–फिरता था, बड़ी ख्याति थी उसकी। और बादशाह की भी बहुत ख्याति थी। वह फकीर सारी दुनिया की परिक्रमा कर के, अपने मित्र बादशाह से मिलने के लिए जा रहा था। बादशाह भी उससे मिलने के लिए बहुत उत्सुक था। बादशाह ने पूछा, तुम सारी दुनिया घूम कर आए हो, मेरे लिए क्या लाए हो? क्या उपहार लेकर आए हो?

फकीर बोला मैंने तरह–तरह से सोचा, तुम्हारे लिए ये ले चलूं...तुम्हारे लिए वो ले चलूं, लेकिन हर चीज तो तुम्हारे पास होगी। तुम बादशाह हो और हर चीज, जो भी मैं लाऊंगा, तुम्हारे पास वह होगी, उससे कई गुनी अच्छी। तुम्हारे लिए लाने लायक, मैं कुछ समझ ही नहीं पाया। लेकिन फिर भी तुम्हारे लिए एक उपहार लेकर आया हूं। उसने एक फटी सी थैली निकाली।

राजा उत्सुक होकर देखने लगा कि यह कौन सा उपहार लेकर आया है मेरा मित्र?

धीरे से उसने एक छोटा सा आईना निकाला और कहा– मेरे मित्र मैं तुम्हारे लिए यह उपहार लेकर आया हूं। तुम्हारे पास दुनिया की सारी चीजें होगीं, लेकिन यह तुम्हारे पास नहीं है। इसमें तुम स्वयं को देख सकते हो।

यह आईना तो एक प्रतीकात्मक रूप था, यह प्रतीक था ध्यान का। ध्यान के आईने में हम स्वयं को देख सकते हैं। ध्यान के आईने में हम उस अनजाने मानुष की छवि को देख सकते हैं।

ध्यान क्या है? ध्यान कोई क्रिया नहीं है, ध्यान अक्रिया है। ध्यान है– चित्त में जो सारी क्रियाएं चल रही हैं, उन सब का ठहर जाना। और उस ठहराव में जब हम कुछ नहीं करते होते हैं, उस अक्रिया की दशा में, ज्ञान का अविच्छिन्न प्रवाह, निरंतर वो जो होने का बोध है, वह होता है। उसकी अनुभूति का नाम है– ध्यान। और उस परम अनुभूति में, उस अनजाने मानुष से पहचान हो जाती है। बाउल परमात्मा को अनजाना मानुष कहते हैं।

'तारे चिन्ते हौय, तारे मान्ते हौय।।

ऐक औजान मानुष फिरछे देशे तारे चिन्ते हौय।'

फिरछे देशे! कौन सा देश है, किस देश में वो अनजान मानुष रहता है? हमारे अंतर में,

हमारे भीतर वह देश है। बाहर के देशों में नहीं घूमना है। हमारे भीतर ही वह देश है, हमारे निराकार का देश...अंतर आकाश...उस देश में जब हम जाते हैं...तारे चिन्ते हौय! और वहीं होतीं है उससे पहचान, और मान्ते हौय! मानने का मतलब, उसके प्रेम में पड़ना होता है।

पहले पहचान हो जाए, फिर उसके प्रेम में पड़ना होता है, और यह कैसे हो? यह प्रक्रिया कैसे हो? आगे लालन शाह कहते हैं–

विभिन्ना संप्रदायों में प्रभु को हजारों नामों से पुकारा जाता है। उस अनजाने मानुष को बाउल, अनजाना मानुष हीं कहते हैं, उस परम सत्य को नाम नहीं देते। उस अज्ञात रहस्य कीं ओर इंगित करते हैं।

इस संबंध में आएं परमगुरु ओशो क्या इंगित करते हैं, सुनें–

'हम सब नामों से चिपके हैं; झूठे नाम, पैदा हुए थे तो साथ में ना कोई आइडेन्टिटी कार्ड था, न कोई नाम की छोटी सी स्लिप थी, अज्ञात तुम आए थे। नाम तो हमने चिपका दिए, लेबल है जो तुम पर लगा दिए और जिस दिन तुम जाओगे उस दिन उन लेबलों को हम अलग कर लेंगे। क्योंकि फिर तुम अज्ञात में प्रवेश कर रहे हो। लेकिन इन दो अज्ञातों के बीच में तुम इस भ्रम में रहे कि तुम अपने संबंध को जानते हो। दो अज्ञातों के बीच में भी जो था वह भी अज्ञात था। नाम, प्रतिष्ठा, सम्मान, उपाधियां.... वे सब चिपकाई हुई बातें थीं... जो सब उखड़ जाएंगे।

मैं यह कहना चाहता हूं कि जगत को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है। ज्ञात, द नोन; अज्ञात, द अननोन; और अज्ञेय, द अननोएबल। जो आज ज्ञात है, कल अज्ञात था। जो आज अज्ञात है, शायद कल ज्ञात हो जाए। विज्ञान केवल दो कोटियां मानता है: ज्ञात की और अज्ञात की। विज्ञान सोचता है कि एक दिन आएगा, एक घड़ी आएगी– उनके हिसाब से शुभ की घड़ी, मेरे हिसाब से दुर्भाग्य का क्षण– जिस दिन सब अज्ञात ज्ञात में बदल जाएगा। उस दिन जीवन अर्थहीन होगा। उस दिन जीवन के पास न कोई नई चुनौती होगी, न खोज के लिए कोई नया आयाम होगा। नहीं, यह घटना कभी नहीं घटेगी। क्योंकि एक और कोटि है अज्ञेय की: जो सदा अज्ञेय है। जो पहले भी अज्ञेय था, अब भी अज्ञेय है और कल भी अज्ञेय रहेगा। तुम वही हो– अननोएबल। और अपने को इस भांति पहचान लेना कि मेरे भीतर अज्ञेय का वास है, स्वयं को मंदिर में बदल लेना है। क्योंकि 'अज्ञेय' ईश्वर का दूसरा नाम है। हम उसका रस तो पी सकते हैं। उपनिषद् कहते हैं– रसो वै स:। हम उसका स्वाद तो ले सकते हैं, लेकिन उसकी व्याख्या, उसकी परिभाषा, उसे नाम नहीं दे सकते।

मैंने उस रस को चखा और तुम्हारे भीतर भी उस रस को चखने की जन्मों–जन्मों से प्यास है। वही प्यास तुम्हें खींच लाती है, तुम्हारे भय के बावजूद! क्योंकि खतरा है अज्ञेय में प्रवेश का। ज्ञात से तो आदमी संतुष्ट

होता है, जानता है, पहचानता है। अज्ञात से भी इतना डर नहीं लगता, आज नहीं कल जान लेंगे, लेकिन अज्ञेय! वहां तो सिर्फ खो जाना है, विलीन हो जाना है। विराट विस्तार के साथ एक हो जाना है। इस अज्ञेय को हमने नाम देकर बड़ी भूलें की। किसी ने ईश्वर कहा, किसी ने खुदा और किसी ने परमात्मा और किसी ने यहोवा और हजार–हजार नाम हमने दिए। ये सब झूठे नाम हैं, हम उसे जानते ही नहीं, जान सकते भी नहीं, लेकिन जी सकते हैं, जी रहे हैं। वह हमारी श्वास–श्वास में है। हमारी आंखों की झलक–झलक में है। तो जानने की यात्रा के लिये मेरा आमंत्रण नहीं। मेरा आमंत्रण है होने की यात्रा। वही तुम्हें खींच लाता है, वही तुम्हारे लिए आकर्षण है। मैं तुम्हें ज्ञानी नहीं बनाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम इतने निर्दोष हो जाओ, जितने निर्दोष जन्म के पहले क्षण में, आंखें खुली थीं, सब दिखाई पड़ता था, लेकिन कोई नाम ना था। कोई शब्द ना था।'

'शोरीयतेर बुनियादे
पाबे ना तो कोनो मौते,
जाना जाबे मारफौते
जोदी मोनेर बिकार जाय।।'

शरीयत की बुनियाद पर तू उसे नहीं पा सकता।

'पाबे ना तो कोनो मौते'

और जबरदस्ती उसे पाया नहीं जा सकता

'जाना जाबे मारफौते'

मार्फत उसे जाना जा सकता है।

'जोदी मोनेर बिकार जाए।।'

सारे विकार जब चले जाएं, सूफी परंपरा में चार चरण हैं अध्यात्म के। पहला है–

'तरीकत'––जिसमें कि तौर–तरीके, विधि–विधान आता है।

दूसरा है–

'शरीयत'––जिसमें कि शास्त्र।

और तीसरा है– 'मार्फत'।

मार्फत यानी गुरु। तो बाउल कहता है मार्फत के द्वारा जाना जाता है।

'जाना जाबे मारफौते'

मार्फत यानी जब हम गुरु के पास जाएंगे, गुरु के मार्फत, गुरु के माध्यम से उसे जाना जा सकता है। ना तो किसी विधि–विधान से जाना जा सकता है, ना शास्त्र से जाना जा सकता है। गुरु के मार्फत उसे जाना जा सकता है।

और चौथा चरण है फिर– 'हकीकत'। जब गुरु के मार्फत उस अनजाने मानुष को हम जानते हैं; उससे वह परिचय करवाता है, तब उसके प्रेम में हम पड़ते हैं, तो चौथा चरण 'हकीकत' अपने आप घटित होता है। अद्वैत की अनुभूति। फिर हम उस अनजाने मानुष से एकाकार हो जाते हैं। लेकिन इस सारी प्रक्रिया में एक ही साधना है, वह यह कि 'मैं' भाव कैसे गिर जाए? जो कि है ही नहीं। वह जो नहीं है, वह कैसे नहीं हो जाए?

'दस्तूर–ए–दुनिया है जो आया सो जाएगा'

उसके लिए कुछ खाली होना सीखना पड़ेगा। हम जो विचारों से भर गए हैं, हम जो संस्कारों से भर गए हैं, जिन जानकारियों से हम भर गए हैं, जो हमने बाहर से ज्ञान एकत्रित कर लिया है, उससे थोड़ा विदा लो।

'दस्तूर–ए–दुनिया है जो आया सो जाएगा,
थोड़ा सा धीरज धर फिर से कोई आएगा।'

पहले सारे ज्ञान को विदा करो, अपने आप को खाली करना सीखो; ये है ध्यान।

'थोड़ा सा धीरज धर फिर से कोई आएगा।
जल्द ही फिर मेरे दिल पे नई दस्तक होगी,'

जब हम खाली हो जाते हैं, उस एकांत में जब हम बैठते हैं, उस शून्य में जब हम बैठते हैं, थिर होते हैं तो फिर कोई आएगा। वह जो गूंज है, वह जो परमात्मा है, जो दस्तक दे रहा है, धीमी–धीमी गूंज सुनाई देनी शुरू होती है।

'मकान खाली हुआ है कोई तो आएगा,
मैं अपनी राह में दीवार बन के न बैठूं,
वो अगर आएगा तो किस रास्ते से आएगा?'

वो अगर आएगा तो किस रास्ते से आएगा? वो आएगा तो गुरु के रास्ते आएगा। गुरु के मार्फत आएगा। गुरु बताएगा कि क्या है ध्यान? कैसे हम शून्य हों? कैसे हम अक्रिया में जाएं? और क्या है निराकार? क्या है अंतर–आकाश? हमें क्या नहीं करना है? ये गुरु बताएगा। और कैसे क्या करना है? ये गुरु बताएगा। वो 'नहीं करना' और 'करने' में जो भेद है, वह गुरु बताएगा। और फिर जब हम खाली होकर, शून्य होकर बैठेंगे तो वह धीरे से हृदय के रास्ते से हमारे भीतर चला आएगा, जो कि भीतर है ही। इसलिए तो बाउल कहते हैं–

शरीयत के माध्यम से, तरीकत के माध्यम से नहीं जाना जा सकता। क्योंकि जो दूर हो उसे तो तरीकत के माध्यम से जाना जा सकता है। कोई भी साधन, किसी भी साधना से वह नहीं जाना जा सकता। मान लो हमें कहीं जाना है और किसी से मिलना है तो वह अगर दूर कहीं रहता है, तब तो हम किसी वाहन से मिलने के लिए जाएंगे। चल के जाएंगे, वाहन से जाएंगे, किसी विधि जाएंगे; लेकिन जब कोई दूर है ही नहीं, पास रहता है, हमारे भीतर

ही रहता है तो हम किस वाहन से जाएंगे? और कैसे जाएंगे? वहां तो किसी वाहन की जरूरत नहीं, वहां कोई साधन की जरूरत नहीं, वहां किसी साधना की जरूरत नहीं है। मात्र, सब कुछ छोड़ देने की कला आ जाए, शून्य होने की कला, रिक्त होने की कला आ जाए तो बात बन जाती है।

'शुनेछि एक मानुषेर खौबोर,
आलेफेर जेर मिमेर जौबोर,
लालोन बौले होश्ने फाँफोर
मुर्शिद धोरले जाना जाए।।'

उस मानुष की खबर अलफ के जोर से ही जानी जाती है। संत लालन कहते हैं यह सब देख सुनकर फेर में मत पड़ जाना। कामिल मुर्शिद ही उसकी पहचान करवाएगा। साधना के जगत में बहुत–बहुत भटकाव है। क्योंकि हमने सदा इस जगत में, इस संसार में, जब भी कुछ पाना चाहा है, कुछ हासिल करना चाहा है तो हमने हमेशा श्रम किया है, भागदौड़ की है, करने की भाषा में सोचा है। लेकिन हम जितना करेंगे, उतने ही उलझते जाएंगे। यह नितांत वैयक्तिक तरीका होता है। और वह वैयक्तिक तरीका गुरु बताता है, गुरु के चरण पकड़ने से।

'मुर्शिद धोरले जाना जाए।।'

मुर्शिद के चरण पकड़ो, मुर्शिद का साथ पकड़ो, तभी जाना जा सकता है उस अनजाने मानुष को। आज का यह प्रवचन पूरा हुआ।

हरि ओम् तत्सत्!

साकार या निराकार?

‘साँई आमार कौखोन खैले कोन खैला
जीबेर कि शाद्धो आछे ताइ बौला।।
कौखोनो धौरे आकार,
कौखोनो हौय निराकार,
केउ बौले साकार, केउ निराकार
औपार भेबे होइ घोला।।
औबोतार औबोतारी
शे तो शौभाबे तारी
दैखो जौगोत भोरी
ऐक चाँदे हौय उजौला।।
भाण्ड–बेभाण्डो माझे
साँई बिने कि खेल आछे
लालोन कौय नाम धोरे छे
कृष्णो कोरीम काला।।’

‘मेरे साँई कब कैसा खेल रचाते हैं कोई जान नहीं पाता। जीव का साध्य क्या है, जो उसका बखान कर सके?

कभी वो आकार धारण करता है, कभी वही निराकार है। इसलिए तो कोई उसे साकार या कोई निराकार कहता है। वो तो अपरम्पार है, यह सोचकर ही फेर में पड़ जाता हूँ। अवतार या अवतारी, ये तो उसका स्वभाव ही है। इस संसार में वही एक तो समाया है। उसी एक चाँद से तो जगत उजियारा होता है।

इस ब्रह्माण्ड में उसी साँई का ही तो खेल समाया है। संत लालन कहते हैं– कृष्ण, करीम, काला उसी साँई का ही नाम है।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'साँई आमार कौखोन खैले कोन खैला

जींबेर कि शाद्धो आछे ताइ बौला।।'

मेरे साँई कब कैसा खेल रचाते हैं, कोई जान नहीं पाता। जींव का साध्य क्या है, जो उसका बखान कर सके? जींवन में साध्य क्या है? यह जींवन परमात्मा के द्वारा रचाया गया एक खेल है। जींवन अस्तित्व की एक लींला है। और इस खेल में हमने अहंकार को जोड़कर बहुत गंभींर बना लिया है। कैसे हम इस खेल को गैर–गंभींर होकर लें? यहीं बात अध्यात्म हमें सिखाता है।

एक बार परमगुरु ओशो से किसीं अभिनेता ने पूछा कि कुछ अभिनय के गुर मुझे बताईए। कैसे मेरा अभिनय और अच्छा हो सके?

उन्होंने कहा कि जींवन तुम ऐसे जियो, जैसे कि अभिनय है। और अभिनय को ऐसे करो, जैसे कि यह वास्तविक जींवन है। इन दो लाईनों में अध्यात्म का पूरा सार सूत्र आ जाता है। भाव आ गया। जींवन एक लींला हो गई।

हम राम को, कृष्ण को अवतार कहते हैं क्योंकि उन्होंने अपने जींवन को लींला की तरह जिया। यह तो नहीं कहते हैं कि राम का नाटक खेल रहे हैं, कहते हैं रामलींला। यह तो नहीं कहते हैं कि कृष्ण का अभिनय कर रहे हैं, कहते हैं कृष्णलींला। क्यों? क्योंकि उन्होंने अपने जींवन को लींला की तरह जिया। और जो भीं सत्य का दर्शन करता है, वह पाता है कि उसका जींवन एक लींला है। और हमारा जींवन––हमने इसे बहुत गंभींर बना दिया है––अहंकार को जोड़कर।

एक बार कीं घटना है––यह घटना है कि हम जींवन को कैसे जींते हैं? ––यह इंगित करतीं है। एक राजमहल के सामने पत्थरों का बहुत ऊंचा ढेर पड़ा हुआ था। पत्थर आपस में बातें करते थे राजमहल कीं, चकाचौंध देखते थे, वहां कीं चमक देखते थे। काश! हमारे पंख होते और हम भीं इस राजमहल के दर्शन कर के आते, सुना है कि यहां का राजा बहुत हीं सुन्दर है, बहुत हीं प्रतिभाशालीं, हम भीं देखकर आते।

हां, पत्थर भीं उड़ना चाहते थे, पत्थरों का भीं अहंकार होता है। वे उड़ना चाहते थे, देखना चाहते थे, राजमहल में जाना चाहते थे।

एक बार ऐसा हो गया। एक बच्चा आया, उसने पत्थर कीं ढेरीं में से एक पत्थर उठाया और उस पत्थर को जोर से महल कीं ओर महल कीं खिड़कीं पर मारा। पत्थर जब ऊपर कीं ओर जाने लगा। जैसे हीं उछाला गया तो नींचे देखकर वह अपने पत्थर साथियों से बोला– देखा, मैं कहता था न कि मैं विशिष्ट हूं, मेरा सपना एक दिन पूरा होगा।

दूसरे पत्थर भीं सोचे, हां भई इसके तो पंख लग गए, यह तो अवतारीं है, साधारण पत्थर नहीं है यह। यह प्रतिभाशालीं और अवतारीं पत्थर है।

तो वे ईर्ष्या से जल–भुन उठे। उन्हें भी लगने लगा कि काश! हम कुछ कर सकें, लेकिन वे क्या करते? वे तो पत्थर हैं, हिल–डुल भी नहीं सकते। ये पत्थर जैसे ही ऊपर गया, खिड़की पर कांच था, वहां जोर से टकराया। पत्थर ने कहा– देखा, मैंने कहा था मेरे रास्ते में जो कोई आएगा चकनाचूर हो जाएगा। मेरी महत्त्वाकांक्षाओं के बीच में जो भी रोड़े अटकाएगा, टूट–टूट जाएगा, बिखर–बिखर जाएगा, देखा टूट गए तुम, चकनाचूर हो गए।

कांच चकनाचूर हो गया। पत्थर महल के कालीन पर जा गिरा। महल के भीतर जब आवाज आई तो नौकर दौड़ा आया, उसने देखा कि एक पत्थर आया है और गिर गया है, कालीन गंदा हो गया है। उसने आकर पत्थर को हाथ में उठाया।

पत्थर ने कहा, कितनी सुन्दरता है यहां पर? कितने भले लोग हैं यहां पर? ये कालीन मेरे लिए, मेरे स्वागत के लिए बिछाया था और अब तो देखो मुझे हाथों–हाथ उठाया जा रहा है। और मुझे उठाकर राजा से मिलाया जाएगा। बहुत खुश हो गया।

और फिर थोड़ी देर में नौकर ने पत्थर को उठाकर खिड़की के बाहर फेंक दिया।

अब जब पत्थर वापस गिरने लगा तो कहा, अरे! वहां कौन रहता? मुझे तो मेरे साथियों की याद आ रही थी। और जाकर अपने साथियों से बोला, मैं तो तुम्हारे बिना कैसे रह सकता? अगर मित्रों का साथ ना हो तो स्वर्ग भी नर्क हो जाता है। इसलिए मैं तो तुम्हारे लिए, तुम्हारे वास्ते लौट कर आ गया।

हमारा जीवन ऐसा ही तो है। हमारे भीतर महत्त्वाकांक्षा पैदा होती है। कोई सोचता है मुझे संगीतज्ञ बनना है, कोई सोचता है मुझे अभिनेता बनना है, कोई सोचता है मुझे खिलाड़ी बनना है।

किसने हमारे भीतर यह महत्त्वाकांक्षा भरी? हम सोचते हैं हमने भरी। इस जीवन का अभिनय हमें दिया गया है। कौन अज्ञात हमारे भीतर श्वास ले रहा है? कौन हमारे भीतर महत्त्वाकांक्षा भर रहा है? कौन हमें दौड़ के लिए प्रेरित कर रहा है? हमें नहीं पता। और हम सोचते हैं ये हमारा खेल है। और हम गंभीर हो जाते हैं।

और संत जानता है, भक्त जानता है कि यह परमात्मा का खेल है।

कौन अज्ञात हमारे भीतर श्वास ले रहा है? कौन जानता है? क्या कोई कह सकता है? क्या कोई कह सकता है कि किसने हमें यह जीवन दिया? और हमें कैसे यह पुरस्कार स्वरूप जीवन मिला? और हम यहां आए। जैसे हम आए थे, वैसे वह अज्ञात हमें एक दिन उठा के ले जाएगा। और हमारा जाना हो जाएगा। लेकिन हम इस बीच में—आने के बाद और जाने के पहले—कितना गंभीर हो जाते हैं? इस जीवन को गंभीर बनाकर बोझ जैसे जीते हैं।

'जिंदगी को बोझ जैसी ढो रहा हूं।
जागता दिखता हूं लेकिन सो रहा हूं।।'

ऐसे सोए हैं अहंकार के नशे में और दिखते हैं जागते।

'होठ मुस्काएं पुरानी आदतन।

पूछो अंदर से मगर मैं रो रहा हूं।।'

सब दुखी हैं, सब रो रहे हैं, लेकिन झूठा मुस्कुरा रहे हैं। और इस जीवन को जिसने जान लिया कि यह परमात्मा के द्वारा रचाया गया अभिनय है। और अभिनय की तरह इसे ले लिया तो यह जीवन एक आनंद की कहानी बन जाता है।

अर्जुनदेव जी कहते हैं–

'दुइ दुइ लोचन पेखा।
हउ हरि बिनु अउरू न देखा।
नैन रहे रंगु लाई।
अब बेगल कहनु न जाई।
हमरा भरमु गइआ भउ भागा।
जब राम नाम चितु लागा।।'

जब राम नाम से चित्त लग गया तो हमारा भ्रम चला गया।

भ्रम क्या है? एक ही तो भ्रम है– 'अहंकार', मैं हूं। और भ्रम कब जाता है? जब राम नाम से चित्त लग जाता, तब पता चलता है मैं नहीं हूं और जिस दिन पता चलता मैं नहीं हूं, उस दिन भ्रम दूर हो जाता है।

'बाजीगर डंक बजाई। सभ खलक तमासे आई।'

जैसे जादूगर आता है और डमरू बजाता है और सब भीड़ तमाशा देखने के लिए चली आती है; ऐसे ही परमात्मा ने ये खेल रचाया।

'बाजीगर डंक बजाई। सभ खलक तमासे आई।
बाजीगर स्वांगु सकेला। अपने रंग रवै अकेला।'

बाजीगर ने सारा स्वांग फैलाया, सारा खेल फैलाया और एक दिन फिर इसे समेट लेगा। ऐसा ही तो हमारा जीवन है। उसने फैलाया है अपना स्वांग, उसने फैलाया हुआ है हमारे जीवन का रूप और एक दिन वह समेट लेता है। लेकिन हम इसमें 'मैं हूं' जोड़कर इस जीवन को गंभीर कर डालते हैं। इसकी सुन्दरता को नष्ट कर देते हैं।

कौखोनो धौरे आकार,
कौखोनो हौय निराकार,
केउ बौले साकार, केउ निराकार
औपार भेबे होइ घोला।।'

कभी वह आकार धारण करता है, इसलिए तो कोई उसे साकार और कोई उसे कहता है वह तो अपरम्पार है। लालन कहते हैं कि यह सोचकर ही मैं फेर में पड़ जाता हूं, वह आकार भी है और निराकार भी है। हमारा दिमाग एक ओर ही सोचता है। अगर आकार है तो निराकार कैसे हो सकता है? और निराकार है तो आकार कैसे हो सकता है? कुछ ऐसा सोचो कि सागर है और सागर में उठी लहर है। सागर अगर सत्य है तो लहर झूठ कैसे हो

सकती है? लहर में भी तो वही सागर लहराया है। लहर और सागर में कहां भेद है? कभी सागर ने लहर का आकार ले लिया, फिर वह सागर हो गया।

ऐसे ही तो यह जीवन है। हमारा जीवन परमात्मा के सागर से आया है, उस से उठती हुई लहर हमारा जीवन है और एक दिन फिर यह लहर उसके सागर में समा जाती है। लेकिन हमारा मन एकतरफा सोचता है। वह सोचता है अगर आकार है तो वो आकार ही हो सकता है। वह कहता है जीवन माया है, जीवन असत्य है। कैसे हो सकता है जीवन असत्य? अगर परमात्मा सत्य है और परमात्मा से यह जीवन निकला है तो जीवन असत्य कैसे हो सकता है? जीवन भी उतना सत्य है, परमात्मा भी उतना सत्य है। आकार भी सत्य है, निराकार भी सत्य है। और हमारा 'परमात्मा' का जो अनुभव है वह विचारातीत है, मनातीत है, द्वंद्वातीत है और हम द्वंद्व में ही जीते हैं।

हम सोचते हैं आकार है। द्वंद्वातीत हम जानते ही नहीं। या तो हम आकार में उलझ जाते हैं या निराकार में उलझ जाते हैं। लेकिन हम इन दोनों के पार, जहां से यह आकार आता है। और जो इसको अनुभव करता है इन दोनों के पार जाना संभव है। और वहां जाकर अनुभव होता है कि परमात्मा आकार में है या निराकार में है। परमात्मा आकार भी है, निराकार में भी है, वह अपरम्पार है। हमारे मन, हमारी बुद्धि सब से परे है, सब के पार है, हमारी सीमा से पार है।

भगवान के नाम में, परमात्मा के नाम में, अनेक विवाद हैं। कौन सा शब्द सर्वाधिक उपयुक्त है? कहना मुश्किल है।

संत लालन कहते हैं– वो कृष्ण है, करीम है, वो काला है, कोई अल्लाह कहता है, कोई खुदा कहता है। आएं परमगुरु ओशो क्या कहते हैं, सुनें–

'इस अज्ञेय को हमने नाम देकर बड़ी भूलें कीं। किसी ने ईश्वर कहा, किसी ने खुदा और किसी ने परमात्मा और किसी ने यहोवा। और हजार–हजार नाम हमने दिए, जो सब झूठे नाम हैं। हम उसे जानते ही नहीं, जान सकते भी नहीं; लेकिन जी सकते हैं, जी रहे हैं। वह हमारी सांस–सांस में है, हमारी आंखों की झलक–झलक में है।

तो जानने की यात्रा के लिए मेरा आमंत्रण नहीं है। मेरा आमंत्रण है होने की यात्रा के लिए। वही तुम्हें खींच लाता है। वही तुम्हारे लिए आकर्षण है। मैं तुम्हें ज्ञानी नहीं बनाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम उतने ही निर्दोष हो जाओ, जितने निर्दोष जन्म के पहले क्षण में थे। आंखें खुली थीं, सब दिखाई पड़ता था; लेकिन कोई नाम न था, कोई शब्द न था।

ईसाइयों की बाइबिल में एक अनूठी बात है, जिसका मैं विरोध करता रहा हूं। बाइबिल कहती है, सबसे पहले शब्द था, शब्द के साथ ईश्वर था और शब्द ही ईश्वर था। मैंने बड़े से बड़े ईसाई पंडितों से पूछा है कि शब्द में और ध्वनि में क्या अंतर है? पहाड़ से जलप्रपात गिरता है उसे तुम शब्द नहीं कहते, उसे तुम ध्वनि कहते हो। घने जंगलों में से हवाएं सरसराती हुई

गुजरती हैं, उसे तुम शब्द नहीं कहते, उसे तुम ध्वनि कहते हो। क्योंकि शब्द का अर्थ होता है ऐसी ध्वनि, जिसको अर्थ दे दिया गया। तो प्रथमतः शब्द तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पहले किसी की जरूरत पड़ेगी जो उसे अर्थ दे। शब्द से बेहतर होगा कि कहें पहले ध्वनि थी।'

ध्वनि को सुनने के लिए भी कान चाहिए। जब कोई भी सुनने वाला नहीं है तो ध्वनि का भी कोई अस्तित्व नहीं होता। शायद तुम सोचते होओगे जंगलों में गिरते हुए जलप्रपातों का वह स्वर संगीत तुम्हारे चले जाने पर भी वैसा ही बना रहता है तो तुम गलती में हो। तुम गए कि वह भी गया। वह दो के बीच था, तुम्हारे कान जरूरी थे। कौन था जो सबसे पहले था?

उपनिषद् बहुत ईमानदार है...उपनिषदों से ज्यादा ईमानदार किताबें इस जमीन पर दूसरी नहीं। उपनिषद् कहते हैं– वह कौन था जो पहले था? किसी को भी कोई पता नहीं। कैसे हो सकता है पता? वह कौन था जो था, उसका कोई भी तो साक्षी नहीं। और कौन है जो अंत में रह जाएगा? उसका भी कोई साक्षी नहीं। और अगर प्रारंभ में अज्ञेय है और अंत में अज्ञेय है तो बीच में भी अज्ञेय ही है। तुम्हारे सब नाम–धाम झूठे हैं। तुम्हारी जाति, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी दीवारें झूठी हैं। तुम्हारे रास्, तुम्हारे सारे भेद झूठे हैं।

ध्यान एकमात्र प्रक्रिया है उस अज्ञेय में उतर जाने की, जहां तुम अचानक मौन हो जाते हो। क्योंकि जो तुम देखते हो उसको कोई भी शब्द नहीं दिया जा सकता। और उस अज्ञेय से ही आकर्षण पैदा होता है।

हजारों लोग बुद्ध के पास मधुमक्खियों की तरह चले आए। न कोई विज्ञापन था, न कोई खबर थी लेकिन जब फूल खिलते हैं तो मधुमक्खियों को पता चल ही जाता है। इतना मैं तुमसे कह सकता हूं कि मैंने अपने भीतर झांका है, और उस शून्य को अनुभव किया है जिसका कोई नाम नहीं।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'औबोतार औबोतारी
शे तो शौभाबे तारी
दैखो जौगोत भोरी
ऐक चाँदे हौय उजौला।।'

अवतार या अवतारी ये तो उसका स्वभाव ही है, इस संसार में वही एक तो समाया हुआ है। उसी एक चांद से उजियारा होता है। ये अस्तित्व का सूर्य एक है, अस्तित्व रूपी सूर्य से जैसे अनेकों किरणें निकल रही हैं, ऐसे ही हमारा जीवन है। उस एक सूर्य से, उस परमात्मा रूपी सूर्य से हमारा आना हुआ है। देखने में हम अलग–अलग हैं लेकिन हम उसी एक सूर्य से जुड़े हुए हैं।

हरि ओम् तत्सत्!

उसका प्रेम कैसे पाऊँ?

'शुद्धो प्रेमरौशेर रोशिक मोर साँई
आमी भाबी शौदाय कोथा शे प्रेमपाई।।
जौतो शौब ध्यानी ज्ञानी मूनीजौना प्रेमेरे
खाताय शोइपौड़ेना।
प्रेम–पिरितीर उपाशौना
कोन बेदेनाइ।।
रोजा–पूजा कोरले पौरे
आप्तो शुखेर कार्जो हौय रे।
साँई एर कौरोन कि शोईपोड़िबे आमी
भाबी बोशे ताई।।
प्रेमे पाप हौय कि पून्यो हौय रे
चित्रोगुप्तो ताहा लिखत नारे,
दौरोबेश–शिराजसाँई कौय
लालोन तोरे ताइ जानाई।।'

मेरा साँई तो शुद्ध प्रेम का रसिक है। मैं तो सदा यही सोचूँ कि उसका प्रेम कैसे पाऊँ?

जितने सब ध्यानी, ज्ञानी, मुनिजन हैं; उनके लिए भी प्रेम की किताब में हस्ताक्षर करना आसान नहीं है। प्रेम–प्रीत की उपासना क्या इतनी आसान है, प्रेम–भक्ति की उपासना की बात किस वेद में नहीं है भाई। रोजा, पूजा तो केवल आत्मसुख के लिए है। साँई का करम उससे कुछ नहीं होता। प्रेम पाप है या पुण्य इसकी गणना तो चित्रगुप्त भी नहीं करते। संत लालन कहते हैं–मेरे गुरु दरवेश सिराज साँई सदा मुझे प्रेम–भक्ति की बात समझाते हैं।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

‘शुद्धो प्रेमरौशेर रोशिक मोर साँई
आमी भाबी शौदाय कोथा शे प्रेमपाई।।’

मेरा साँई तो शुद्ध प्रेम का रसिक है। और मैं तो सदा यही सोचता हूं कि वो प्रेम मैं कैसे पाऊँ।

किसी ने लिखा हैः

‘मधुरिमा कंठ में न होतीं तो शब्द विषपान हो गया होता,
वासना प्रेम में न होतीं तो प्रेम वरदान हो गया होता,
याचना भक्ति में ना होतीं तो भक्त भगवान हो गया होता।’

वासना है लेने का भाव। जब भी हम किसी से लेना चाहते हैं और कुछ लेने के लिए किसी के प्रेम में हैं तो यह वासना है। और शुद्ध प्रेम क्या है? – देने का भाव।

वासना और करुणा में क्या अंतर है? करुणा– देने का भाव। वासना– सिर्फ लेने का भाव। कैसे किसी से लेते जाएं...लेते जाएं? चाहे वह संग साथ का सुख हो, चाहे मन का सुख हो, चाहे विचारों का सुख हो; किसी भी तल पर अगर हम किसी से कुछ लेना चाहते हैं, वही वासना है।

एक बार एक फकीर के पास एक युवक आया। बोला कि मैं प्रेम की अनुभूति करना चाहता हूं। परमात्मा के प्रेम की अनुभूति।

तो फकीर ने कहा– क्या तुमने संसार में किसी को प्रेम किया है? युवक ने कहा कि मैंने किसी को प्रेम नहीं किया। मैं तो सदा परमात्मा के प्रेम का भूखा रहा हूं और उसी प्यास से मैं सदा उसे तलाशता रहा हूं। तो मेरे पास समय ही नहीं था, कभी किसी को प्रेम करने का।

फकीर ने कहा, ‘जरा गौर से सोचो कि तुमने कभी किसी को प्रेम नहीं किया?’

युवक बोला, ‘निश्चित रूप से, मैंने किसी को प्रेम नहीं किया।’ यह बोलने में उसके भीतर एक अकड़ थी, एक दंभ था कि मैं तो सदा साधना में रहा, परमात्मा को खोजने में लगा रहा। इन सब क्षुद्र बातों के लिए मेरे पास कहां समय है?

फकीर की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहा कि मैं तुम्हें परमात्मा के प्रेम का अनुभव नहीं करा सकता। परमात्मा का प्रेम तो तभी अनुभव हो सकता है, जब तुमने संसार में कभी किसी को प्रेम किया हो। प्रेम सदा शुभ है, भले वह संसार का प्रेम है। अशुद्ध है, तो उसे शुद्ध किया जा सकता है, उसे निखारा जा सकता है।

जैसे अगर हमारे पास अशुद्ध सोना है, तब तो हम उसे शुद्ध कर सकते हैं। मगर अगर सोना ही नहीं है तो उसकी शुद्धि कैसे? फिर कहां से सोना आएगा? अगर हमारे पास सोना है, और अशुद्ध है तो हम उसे शुद्ध कर सकते हैं। अशुद्ध प्रेम अशुद्ध सोने की तरह ले लो। इस सोने को हम गलाकर शुद्ध सोना प्राप्त कर सकते हैं। अगर हमने संसार में कभी किसी से प्रेम किया है, उस प्रेम को हम ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं। उस प्रेम को हम दिशा दे सकते हैं। कैसे यह प्रेम अंतरगामी हो? कैसे यह प्रेम ऊर्ध्वगामी हो?

प्रेम है देने का भाव। एक बहुत प्यारी कथा कहे बिना नहीं रहा जा सकता है। 'देने का भाव' – एक पेड़ की कहानी से याद आता है।

परमगुरु ओशो ने एक बहुत सुन्दर कहानी बताई है कि एक वृक्ष है। बड़ा वृक्ष है, बड़ी–बड़ी उसकी शाखाएं हैं और उस वृक्ष के नीचे एक बच्चा खेलता है और मजे लेता है वृक्ष की छाया में। वृक्ष को इस बच्चे से प्यार हो जाता है। बच्चा बड़ा हो जाता है, अब पढ़ने–लिखने जाने लगा। बच्चे का आना कम हो गया, बच्चा और बड़ा हो गया; नौकरी के लिए चला गया। अब वह कभी–कभी इस वृक्ष के पास आता। एक दिन बहुत दिनों बाद की बात है; बच्चा गुजर रहा था। पेड़ ने उस बच्चे को पुकारा। कहा कि मुझे तुमसे बहुत प्रेम है और तुम तो आते ही नहीं, मैं तो सदा तुम्हारी राह देखता रहा हूं। काश! तुम मेरे पास कुछ पलों के लिए आते?

तो उस बच्चे ने कहा, अब मेरे पास समय ही नहीं है। समय इसलिए नहीं है क्योंकि मैं इतना गरीब हूं कि मेरे पास पैसे नहीं हैं। पैसे और रोजी–रोटी के लिए नौकरी के लिए जाता हूं, इस छाया में बैठने की कहां फुर्सत है?

तो पेड़ ने बच्चे से कहा कि तुम मेरे पास आओ, मेरी शाखाओं को काटकर ले जाओ और इन शाखाओं से फर्नीचर बनेगा; उसे बेचोगे तो तुम्हारे पास पैसे ही पैसे आ जाएंगे। बच्चा जो कि अब बड़ा हो चुका था, उसने सारी शाखाओं को एक–एक कर के काट डाला, फर्नीचर बना कर बेच डाला, बहुत अमीर भी हो गया। उसके बाद भी उसे तृप्ति नहीं मिली। कभी उसने उस पेड़ को धन्यवाद तो दिया ही नहीं, पेड़ के पास आया भी नहीं।

एक बार फिर वह वहां से गुजर रहा था। पेड़ ने फिर पुकारा कि तुम मेरे पास आओ, अभी भी मेरे पास कुछ देने को है। ये जो केवल तना बचा है, इस तने को उखाड़कर ले जाओ और इसकी नाव बना लेना। उस नाव में बैठकर समुद्र के उस पार जाना और बड़ा व्यापार करना, तुम मालामाल हो जाओगे, अरबपति हो जाओगे।

ये है देने का भाव। अंतिम श्वास तक केवल किसी और के लिए हो कि कैसे हम किसी को कुछ दे सकें? ये है शुद्ध प्रेम। और जब भी जरा सा भी लेने का भाव आया, वहां प्रेम में अशुद्धि आ गई।

ऐसे प्रेम का रसिक है परमात्मा, जब भी हम ऐसे प्रेम में डूबते हैं; परमात्मा हम पर बरस जाता है। लेकिन प्रेम से भय पैदा होता है, मिटने का भय। प्रेम में तो अहंकार मिटता है ना! अगर व्यक्तियों से प्रेम करने में भय है तो प्रकृति से प्रेम करो। प्रकृति से प्रेम करो, अपने प्रेम को सृजनात्मक आयाम दो। संगीत से प्रेम करो, उस प्रेम में भी विरह का अनुभव होगा और यह विरह का अनुभव, यह प्रेम हमेशा अद्वैत चाहता है, मिटना चाहता है, एक होना चाहता है; उससे दूरी बर्दाश्त नहीं होती। लेकिन आप जिसको भी प्रेम करेंगे वह तुरंत तो नहीं मिल जाने वाला है।

वह जो विरह का अनुभव है, उस विरह के अनुभव में हमारा हृदय उत्तप्त होता है। और उस उत्तप्तता में परमात्मा का प्रेम बरस जाता है। प्रेम का एक गुण है, प्रेम अद्वैत में जाना चाहता है। लेकिन, लौकिक प्रेम में अद्वैत संभव नहीं है। लौकिक प्रेम में अद्वैत होता ही नहीं है।

मान लो दो शरीर प्रेम में हैं, इन दो शरीरों की सीमाएं हैं। दो मन प्रेम में हैं, इन मन की भी

सीमाएं हैं। शरीर तो बिल्कुल ठोस है, उसकी सीमा कभी नहीं मिट सकती।

हां, मन थोड़ा तरल है। इसमें भी एक मन, दूसरे मन से कैसे मिले? अगर एक मन तेल की तरह है, दूसरा मन पानी की तरह है; तो दो मन कैसे मिल सकते हैं? यहां भी मिलना दिखता है, क्षण भर के लिए कुछ अद्वैत घटित हुआ, लेकिन संभव नहीं है। मिलन आत्मा के तल पर होता है। आत्मा है आकाश की तरह। जैसे घड़े के अंदर का आकाश और घड़े के बाहर का आकाश। मिलन आत्मा के तल पर, जैसे घड़ा फूट जाए और आकाश और आकाश का मिलन हो जाए।

प्रेम में, शुद्ध प्रेम में अहंकार रूपी घड़ा फूट जाता है। और इस आत्मा का उस परम आत्मा से मिलन हो जाता है। तो लौकिक प्रेम में तो अद्वैत संभव नहीं है। लौकिक प्रेम अद्वैत की प्यास पैदा करता है, और पारलौकिक प्रेम में अद्वैत घटित होता है। तो लौकिक प्रेम द्वार है। इस द्वार को नकारा नहीं जा सकता।

बाउल प्रेम का गुणगान करते हैं, प्रेम अनेक रूपों में प्रकट होता है। एक बार ओशो से किसी ने पूछा कि प्रेम क्या है? और क्या प्रेम कभी नष्ट होता है?

तो ओशो ने भौतिक, हार्दिक और आत्मिक प्रेम की तलों की बात समझाते हुए ऊर्ध्वगमन की ओर संकेत दिया। आएं सुनते हैं ओशो को–

'प्रेम एक इंद्रधनुष है। उसमें सभी रंग हैं– –निम्नतम से लेकर श्रेष्ठतम तक, काम से लेकर राम तक। प्रेम कोई एक–आयामी घटना नहीं है, बहु–आयामी है। मूलत: तीन आयाम समझ लेने जरूरी हैं।

तुम पूछते हो कि प्रेम क्या है?

तो एक तो प्रेम है शरीर के तल का, जो कि पाशविक है, पशुओं जैसा है। और विवाह के नाम पर जो चल रहा है वह वही प्रेम है। और दूसरा प्रेम है मन का, जो ज्यादा काव्यात्मक है, ज्यादा मानवीय है।

लेकिन फिर तुम दूसरी बात भी पूछते हो कि क्या कभी प्रेम नष्ट भी होता है या नहीं?

शरीर के तल पर जो प्रेम है, उसमें तो नष्ट होने का कोई सवाल उठता नहीं। वहां प्रेम ही नहीं है तो नष्ट क्या खाक होगा। पहले फूल तो खिलने चाहिए, तब तो मुरझाएंगे। कागज के फूल होंगे तो मुरझाएंगे क्यों? और प्लास्टिक के फूल हुए तब तो मुरझाने का कोई सवाल ही नहीं उठता। विवाह प्लास्टिक का फूल है। रोज धो लो, नया ताजा। धूल झाड़ दो, फिर नया, फिर ताजा। वही रंग, वही ढंग, हालांकि गंध नहीं होती, खिलता नहीं। और सिर्फ आदमियों को धोखा दे सकता है, किसी मधुमक्खी को धोखा न दे सकेगा। कोई तितली धोखा न खाएगी। आदमी भर मूढ़ है कि धोखा खा सकता है।

दूसरा प्रेम तो क्षणभंगुर होगा। मगर उसकी क्षणभंगुरता भी पहले प्रेम के स्थायित्व से ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि उस क्षणभंगुरता से तुम्हें

स्वाद मिलेगा तीसरे प्रेम का, जो कि वस्तुतः समग्र प्रेम है। उसको मैं कहता हूं– आत्मा का प्रेम। जो दूसरे तक नहीं पहुंचा है, तीसरे पर नहीं पहुंचेगा। दूसरा सोपान पार करना जरूरी है। जो पहले पर ही अटका रह गया उसका धर्म भगोड़ापन होगा, पलायनवाद होगा। और जो दूसरे से गुजर गया, उसके जीवन में प्रेम की क्षणभंगुरता को देख कर, प्रेम के विषाद को देख कर– –और प्रेम का आनंद भी जानकर...। पहले ने तो आनंद को जाना ही नहीं सिर्फ विषाद जाना, सपाट थोथापन जाना, तो भाग खड़ा हुआ। दूसरे ने दोनों जाने हैं, क्योंकि दूसरा मध्य में है, शरीर और आत्मा के ठीक मध्य में है, दूसरे ने दोनों जाने हैं– –विषाद भी जाना और आनंद भी जाना। विषाद के कारण वह दूसरे से मुक्त होना चाहेगा और आनंद के कारण दूसरे में जो छिपा हुआ राज है, उसको और ऊंचाई तक ले जाना चाहेगा। इसलिए उसके जीवन में खोज शुरू होगी कि क्या कोई आत्मिक प्रेम भी हो सकता है?

और वही खोज धार्मिक खोज है। वही प्रेम प्रार्थना बन जाता है। वही प्रेम परमात्मा की तलाश है। क्योंकि वह प्रेम फिर व्यक्ति–व्यक्ति के बीच नहीं होता, वह प्रेम तो फिर व्यक्ति और अव्यक्ति के बीच होता है। वह प्रेम तो फिर अंश के और समग्र के बीच होता है, बूंद के और सागर के बीच होता है। दो बूंदों का प्रेम तो देख लिया, वह टूट–टूट जाता है, बिखर–बिखर जाता है, उसकी सीमाएं हैं। इसलिए अब ऐसा प्रेम देखने की आकांक्षा, अभीप्सा पैदा होती है, जिसकी कोई सीमा नहीं। असीम के साथ प्रेम का भाव उठता है। वही भाव मेरी दृष्टि में असली संन्यास है।'

'जौतो शौब ध्यानी ज्ञानी मूनीजौना
प्रेमेरे खाताय शोइ पौड़ेना।
प्रेम–पिरितीर उपाशौना
कोन बेदेनाइ।।'

जितने सब ध्यानी, ज्ञानी, मुनिजन हैं, उनके लिए प्रेम की किताब में हस्ताक्षर करना आसान नहीं है। प्रेम–प्रीत की उपासना क्या इतनी आसान है? प्रेम भक्ति की उपासना किस वेद में नहीं कही गई है। ज्ञानी, ध्यानी, मुनि, योगी, तांत्रिक– ये मुक्त नहीं हो सकते। इनके भीतर सूक्ष्म कर्ताभाव हमेशा मौजूद रहेगा। एक ज्ञाता भाव सदा रहेगा और इस सूक्ष्म तल पर जो 'मैं' का होना है, यहीं तो बाधा है।

कैसे हम निरअहंकार की दशा में प्रवेश कर जाएं? कैसे हम शून्य हो जाएं? जब तक हम कुछ करते रहेंगे तो करने का भाव तो मौजूद रहेगा। चाहे वह सूक्ष्म तलों पर करना क्यों न हो। लेकिन तब भी करने का भाव मौजूद होगा। मिटना तो प्रेम में हीं होता है। परमात्मा से मिलन तो भक्ति में ही संभव है, और भक्ति कैसी हो?

याचना भक्ति में ना होतीं तो भक्त भगवान हो गया होता।

भक्ति में भी हमारे भीतर मांग मौजूद है, याचना मौजूद है। हमारी प्रार्थना, हमारी मांग की पर्यायवाची, मौजूद हो गई। जबकि प्रार्थना है– धन्यवाद भाव। अहोभाव की दशा।

'रोजा–पूज़ा कोरले पौरे
आप्तो शुखेर कार्जो हौय रे।
साँई एर कौरोन कि शोईपोड़िबे
आमी भाबी बोशे ताई।।'

रोजा, पूजा तो केवल आत्मसुख के लिए है, साईं का करम उससे कुछ नहीं होता। लोग रोजा रखते हैं, पूज़ा करते हैं, उपवास रखते हैं, तरह–तरह की क्रियाएं करते हैं, धार्मिक क्रियाएं करते हैं लेकिन वे सब तो आत्मसुख के लिए हैं।

अगर कोई उपवास रख रहा है, कोई तप कर रहा है; सोचता है हमें कुछ मिलेगा, हमारे जीवन में कुछ आएगा। कुछ मांग है भीतर, इसलिए उपवास कर रहा है, पूज़ा कर रहा है, प्रार्थना कर रहा, रोजा रख रहा है, तरह–तरह के व्रत कर रहा है। आत्मसुख के लिए, अपने लिए कर रहा है, परमात्मा के लिए थोड़े ही कोई उपवास रख रहा है? परमात्मा के लिए थोड़े ही कोई रोजा रख रहा है। हमारे जीवन में कैसे सुख बरस जाए? कहीं न कहीं भीतर ये कामनाएं मौजूद हैं; इसलिए व्यक्ति रोजा, पूज़ा, व्रत, उपवास कर रहा है। हमारी पूजा, हमारी प्रार्थना में भी एक आक्रमण का भाव है कि कैसे पूजा करें और कैसे परमात्मा से कुछ झपट लें? पूजा में भी आक्रमण का भाव है, प्रार्थना में भी आक्रमण का भाव है।

यह आक्रमण का भाव ही तो पूजा में कमी है, यही तो अहंकार है कि हमें कुछ मिल जाए। और जब तक हमें कुछ मिल जाए, जब तक यह मेरापन बना हुआ है, तब तक पूज़ा संभव ही नहीं है। मंदिर के भीतर हम प्रवेश कर ही नहीं सकते, भीतर सूक्ष्म अहंकार मौजूद है।

यह आक्रमण का भाव जिस दिन विदा हो जाता है, लेने का भाव जिस दिन विदा हो जाता है। कब विदा होता है? पूज़ा करते–करते, व्रत करते–करते एक दिन पता चलता है कि अरे इसमें तो आनंद आने लगा। और फिर हम व्रत आनंद के लिए रखते हैं। और फिर हम पूज़ा और रोजा सिर्फ आनंद के लिए करते हैं। रोजा में आनंद आ रहा है इसलिए रखते हैं, व्रत में आनंद आ रहा है इसलिए रखते हैं।

अब बात शुरू हुई, अब भक्ति शुरू हुई है; और तब फिर हम मंदिर इसलिए जाते हैं कि प्रभु तुमने कितना दिया है? जरूरत से ज्यादा दिया है। तुमने तो छप्पर फाड़कर दिया है, जितनी मेरी जरूरत थी उससे कई गुना ज्यादा। और मुझे कोई जरूरत हो उसके पहले तुम्हें मालूम है मुझे क्या चाहिए? तुम तो अमृत ही गिराए जाते हो और यह भी फिकर नहीं करते कि हमारा पात्र सीधा है या उल्टा है? आप तो अमृत ही बरसाए जाते हो प्रभु!

ऐसी अहोभाव की दशा प्रार्थना है। जिस दिन यह प्रार्थना हमारे जीवन में आ गई, उस दिन इस प्रार्थना के रसिक, परमात्मा से मिलना हो जाता है।

हरि ओम् तत्सत्!

मूल को भूलने की भूल

'ओरे शामान्ये कि शे धौन मिले
मिटे शौकोल आशा शौब पिपाशा
शे औमूल्यो रौतोन पेले।।
जुग–जुग धोरे जोगी ऋषि
होयेछे शौब बोनोबाशी
पाबो बोले ओइ चौरोन–शोशी
तारा बोशेछे तोरू तौले।।
ओरे गुरूबौल जे पेयेछे
ज्ञान–नौयोन तार खूले गैछे
औमूल्यो धौन तार मिलेछे
भेशे आनोन्दो–शोलिले।।
तार ओन्यो धौनेर नाइ लालोशा
पूरेछे तार शौकोल आशा लालोन
भेड़ो बुद्धिनाशा
नाश होलो शे मूलेर भूले।।'

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं– 'अरे! सहज ही क्या वह धन मिल जाता है!

अरे! आसानी से क्या वह धन प्राप्त कर सकते हैं, वह अनमोल रतन पा जाने से सकल आशा पिपासा मिट जाती है।

युग–युग से जोगी ऋषि उसे जानने के लिए वनवासी हो गए, वह चरण–शशि पाने की आस में कितनी तपस्या करते हैं। अरे! जिसका गुरु सहाय है, जिसके पास गुरु–बल है, उसके ज्ञान–नयन खुल जाते हैं। अमूल्य धन पाकर आनन्द–सलिल में गोते लगाते हैं। उसे और दूसरे धन की लालसा नहीं रहती, सकल आशा उसकी पूरी हो जाती है। लालन कहते हैं मेरी तो बुद्धि का ही नाश हो गया है। मूल को छोड़कर मैंने भूल ही की है।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

जैसे कोई वृक्ष अपनी जड़ों को भूल जाए, और उसके फल–फूल–पत्ते सब कुम्हला जाएं; वैसी ही हालत सारे मनुष्यों की हो गई है। जिंदगी में कहां भूलचूक हो रही है, शीघ्र ही यह समझ भी नहीं आता। फूल–पत्तों की सफाई से वे जीवन न पाएंगे, फलों पर जल–सिंचन करोगे तो वे सड़ जाएंगे। किंतु हम बहिर्मुखी हैं, और हमें केवल ऊपरी बातें नजर आती हैं। भीतर, भूमिगत क्या छिपा है; वह तो दिखाई भी नहीं पड़ता। और मजे की बात है कि वही असली जीवन का स्रोत है। वहां पानी सींचना होगा, खाद डालना होगा। आज लालन शाह उसकी ओर इशारा करते हैं–

'ओरे शामान्ये कि शे धौन मिले
मिटे शौकोल आशा शौब पिपाशा
शे औमूल्यो रौतोन पेले।।'

अरे! आसानी से क्या वह धन प्राप्त कर सकते हैं, वह अनमोल रतन पा जाने से सकल आशा पिपासा मिट जाती है।

वह अमूल्य धन क्या है? वह अमूल्य धन है– हमारी आत्मा और उसका संगीत। जिसे पाकर हम सब कुछ पा जाते हैं और जिसे खोकर हम सब कुछ खो देते हैं। जिसे पाने के लिए मीराबाई राजमहल छोड़कर, राज–पाठ छोड़कर, सब छोड़कर सड़क पर आ गई। और जिसे पाकर कबीर झोंपड़े में रहते हुए शहंशाह हो गए। वो कौन सा धन है? जिसके लिए मीरा गा उठती है– 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।'

और कबीर जिसके लिए कहते हैं–

हमरा धन माधव गोबिंद धरणीधर इहै सार धन कहीए।

हमारा धन क्या है?

हमारा धन माधव है, हमारा धन गोविन्द है, परमात्मा है। और जीवन की यही सार कमाई है हमारी।

'अगन न दहै पवन नहीं मगनै तसकर नेर न आवै।'

जिसको अग्नि नहीं जला सकती, चोर नहीं ले जा सकते।

'राम नाम धन कर संचउनी सो धन कतहीं न जावै।।'

अरे! तुम ये राम नाम का धन का संचन करो, इसे प्राप्त करो, इसे बचाओ जो कि कहीं नहीं जाता।

'इस धन कारण सिव सनकादिक खोजत भए उदासी।
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देख बिचारी।
तुम घर लाख कोटि अस्व हसती हम घर एक मुरारी।।'

कबीर साहिब कहते हैं कि देखो तो जरा सोचकर तुम्हारे पास क्या–क्या है? सब कुछ है, लाखों हाथी, घोड़े, राजमहल, सारा कारोबार। फिर भी ऐसा क्या है कि तुम इतना सब पाकर भी गरीब हो, अतृप्त हो। और हमारा धन जो कि तुम्हें दिखाई नहीं देता, जिसे पाकर हम तृप्त हैं,

उसका नाम है गोविन्द, उसका नाम है माधव।

यह धन है, प्राप्त करने जैसा। और यह धन है बचाने जैसा––और यह धन है––हमारे भीतर। अगर भीतर हमारे यह धन है तो फिर मिलता क्यों नहीं हमें?

कारण है––हम खोज कहां रहे हैं?...खोज रहे हैं––राबिया की कहानी की तरह।

राबिया के जीवन की एक घटना है। राबिया बाहर कुछ ढूंढ़ रही है, शाम हो गई है। लोग पूछते हैं राबिया क्या ढूंढ़ रही हो? राबिया कहती है मेरी सूई खो गई है। लोग भी खोजने लगे। फिर किसी ने पूछा– कहां खोई थी, तुम्हें कुछ पता है, याद है?

उसने बोला ये तो याद नहीं है, पर घर के भीतर खोई थी, मैं तो बस खोजने निकल गई। शायद यहीं होगी? खोजते–खोजते मिल ही जाए।

तो गलत दिशा में खोज रहे हो। सूई गिरी है भीतर। परमात्मा भीतर है, धन भीतर है और हम बाहर खोजते हैं और इसलिए असफलता हाथ लगती है। वह धन नहीं पा पाते और अतृप्त ही मर जाते हैं।

परमगुरु ओशो से किसी ने पूछा– जब वह अमूल्य धन हमारे भीतर ही है तो हम आसानी से क्यों नहीं पाते?

कठिनाई कुछ ऐसी है कि हम एक पतवार से नाव चला रहे हैं। एक पतवार से अगर नाव चलाएंगे तो नाव गोल–गोल घूमेगी। कारण कुछ ऐसा है कि हम एक पंख से उड़ने की कोशिश कर रहे हैं। कोई पक्षी एक पंख से उड़े तो कैसे उड़ेगा? कारण कुछ ऐसा है कि हम एक पैर से चलने की कोशिश कर रहे हैं। एक पैर से चलेंगे तो मंजिल पर पहुंचना दूभर तो होने वाला है। पैर दो हैं, वे दो पैर क्या हैं? पंख दो हैं, वे दो पंख क्या हैं? पतवार दो हैं, वे दो पतवार क्या हैं? वे हैं– ध्यान और प्रेम, दोनों का साथ। कोई केवल योग साधने में लगा है, कोई केवल भक्ति साधने में लगा है और इसलिए असफलता हाथ लगती है।

ओशो से किसी ने पूछा कि हमें ध्यान में बार–बार शांति की झलक मिलती है, आनंद की झलकें मिलती हैं लेकिन फिर वे खो जाती हैं। ऐसा क्यों होता है?

तो उन्होंने जवाब दिया है, आएं सुनते हैं–

'तुमने पूछा है कि मैं बैठती हूं, साक्षी बनकर विचारों को देखती हूं। कभी–कभी विचार थम जाते हैं। क्षणभर को बड़ा आनंद आता है। और फिर विचार चल पड़ते हैं। और ऐसा ही हो रहा है। और ऐसा ही कब तक होता रहेगा।

यह तब तक होता रहेगा, जब तक कि तुम पहली भूल न सुधार लोगी। वह जो आनंद का थोड़ा सा अनुभव तुम्हें होता है– क्षणभर वह बहुत बड़ा नहीं हो पाता, क्योंकि तुमने प्रेम को अवरुद्ध किया हुआ है। अगर प्रेम का बांध भी टूट जाए और आनंद का यह छोटा सा क्षण मिल जाए तो तुम्हारे भीतर भी गंगा बहने लगेगी। फिर बड़े–बड़े अंतराल आने शुरू हो जाएंगे। देर–देर तक विचारों का कोई पता न रहेगा। और एक नई अनुभूति होगी कि जहां ध्यान बढ़ रहा है, वहां पीछे–पीछे प्रेम की सुगंध फैलती जा रही है।

जिस दिन ध्यान और प्रेम तुम्हें दो मालूम हों, उस दिन तक समझना

कि मंजिल नहीं आई है।

जिस दिन ध्यान प्रेम हो और प्रेम ध्यान, उस दिन समझना कि मंदिर जा आ गया। अब कहीं और जाना नहीं है, यहीं आना था।

तो शुरुआत में चुनाव करना पड़े, लेकिन अंत में कोई चुनाव नहीं है। अंत में प्रेम और ध्यान दोनों एक हो जाते हैं। ध्यान तुम्हें अपने से मिला देता है, और प्रेम तुम्हें सब से मिला देता है।

अगर अपने से ही मिलकर रह गए तो यह सारा अस्तित्व तुमसे भिन्न रह जाएगा। यह उपलब्धि अधूरी होगी।

और अगर सबसे मिल गए और अपने से ही ना मिले तो ये भी कोई मिलना हुआ? जिस दिन अपने से मिले उसी दिन सब से भी मिल गए तो उपलब्धि पूरी हो गई।

दोहरा दूं ताकि तुम भूल ना जाओ। प्रेम के संबंध में तुम्हारी धारणा गलत है उसे छोड़ दो। प्रेम का अर्थ वासना नहीं है। प्रेम का अर्थ सब के लिए सद्भावना है।

गौतम बुद्ध के जीवन में यह उल्लेख है कि वो अपने हर भिक्षु को यह कहते थे कि जब तुम ध्यान करो और जब आनंद से भर जाओ तो एक काम करना मत भूलना। जब तुम आनंद से भर जाओ तो अपने आनंद को सारे जगत में बांट देना, तभी उठना ध्यान से। ऐसा ना हो कि ध्यान भी कंजूसी बन जाए, ऐसा ना हो कि ध्यान को भी तुम तिजोरी में बंद करने लगो। जो पाओ उसे लुटा देना। फिर कल और आएगा, उसे भी लुटा देना और जितना तुम लुटाओगे उतना ज्यादा आएगा।'

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'जुग–जुग धोरे जोगी ऋषि
होयेछे शौब बोनोबाशी
पाबो बोले ओइ चौरोन–शोशी
तारा बोशेछे तोरू तौले।।'

युग–युग से योगी ऋषि उसे जानने के लिए वनवासी हो जाते हैं। उस चरण–शशि को पाने के लिए, उस आस में कितनी तपस्या करते हैं?

लोग उस धन को पाने के लिए काबा जा रहे हैं, काशी जा रहे हैं, गिरनार जा रहे हैं, तपस्या कर रहे हैं; तरह–तरह की तपस्याएं कर रहे हैं। तपस्या करने वालों को देखो। तपस्या ही उनका उद्देश्य हो गया है, जैसे भूल ही गए हैं कि साध्य क्या है?

असली तपस्या क्या है? असली तपस्या तो जीवन में हो ही रही है। जीवन में दुख आ रहे हैं। लोग कांटो पर खड़े हैं, धूप में जला रहे हैं अपने आप को। कांटे तो ऐसे ही चुभ रहे हैं जीवन में। लोग कैसी–कैसी बोली बोलते हैं? कांटे चुभाते हैं तो उन कांटो के प्रति समता भाव रखना।

जीवन में ऐसे ही दुख की धूप कितनी सारी है? अपना प्यारा बीमार पड़ गया, प्यारे का बिछोह हो गया। बेटा बुरा निकल गया, पता नहीं तरह–तरह की चीजें हैं। हमारे मन मुताबिक कुछ नहीं होता। लेकिन इन सब कठिनाइयों के प्रति अगर हमारा समता भाव है। समता भाव ही

असली तपस्या है। और जो उस भाव में डूब गया, वह असली धन को पा लेता है।

संतों ने कहा है कि जीवन में तीन तरह के अनुभव हैं –

पहला अनुभव सुख का ले लो। संत इसे दुख कहते हैं क्योंकि जो भी चीज सुख दे रही है, वो आगे जाकर दुख में परिणत हो जाती है।

दूसरा सुख लग रहा है शुरू में, बाद में दुख मिल गया। संत इसे शुरू से दुख बोलते हैं। दूसरा अनुभव है दुख का। पहले जीवन में दुख आया, बाद में सुख में वो परिणत हो गया, जिसे वो कहते हैं– तपस्या...तपश्चर्या। लोगों ने सोचा कि जब सुख आता है तो बाद में दुख में बदल जाता है। तो क्यों ना हम उल्टा करें? दुख से शुरुआत करें तो यह सुख में बदल जाएगा।

कोई अगर कांटों पर खड़ा है, कोई अगर अपने आप को धूप में खड़ा कर के कष्ट दे रहा है, अब उसे और क्या कष्ट दोगे? उसके जीवन में और कैसा दुख आ सकता है? दुख नहीं आएगा। ऐसी तपश्चर्या लोग कर रहे हैं। लेकिन इस तपश्चर्या को करने के लिये हम कहां जाएंगे। जीवन में ही साधें इस तपश्चर्या को– समता भाव से।

आते–जाते सुख–दुख, मान–अपमान, हर एक चीज के प्रति अगर हमने एक भाव साध लिया तो फिर जीवन में तीसरी घटना घटती है, जिसको संत कहते हैं– आनंद। वह आनंद परमात्मा के स्मरण से मिलता है। वो आनंद है समाधि रस। शुरुआत से ही सुख है उसमें। शुरुआत सुख से होती है, मध्य भी सुख है। और यह जो सुख है, वह महासुख में बदल जाता है। जीवन एक महासुख की घटना बन जाता है। इसका नाम है आनंद। निरंतर... आदि, अंत, मध्य तीनों में एक रस। ये आनंद जीवन में घटित हो सकता है, जब हम उस परमधन को पा लेते हैं अपने भीतर।

'ओरे गुरुबौल जे पेयेछे
ज्ञान–नौयोन तार खूले गैछे
औमूल्यो धौन तार मिलेछे
भेशे आनोन्दो–शोलिले।।'

अरे! जिसका गुरु सहाय है, जिसके पास गुरु बल है, उसके ज्ञान नयन खुल जाते हैं। अमूल्य धन पाकर, आनंद सलिल में गोते लगाते हैं।

याद रखना गुरु सहाय। गुरु की सहायता से इस धन की ओर जाया जा सकता है। यह खजाना हमारे भीतर है लेकिन हम अपने आप इसकी चाबी प्राप्त नहीं कर सकते। इसकी चाबी गुरु देता है, गुरु बताता है इस धन को कैसे खोजें? कैसे हम अपने भीतर खोदते–खोदते पहुंच जाएं उस जगह पर, जहां पर यह धन मौजूद है। वह कला गुरु देता है।

लोग सोचते हैं कि किताब में पढ़ लिया। बाहरी ज्ञान इकट्ठा कर लिया तो परमात्मा मिल जाएगा। बिलकुल नहीं।

अगर हम बाहर की चीजें सीखने के लिए गुरु की सहायता लेते हैं। किसी को संगीत सीखना है तो गुरु के पास जाता है, किसी को हिसाब सीखना है तो गुरु पकड़ता है, किसी को नृत्य सीखना है तो गुरु चाहिए, पढ़ने के लिए गुरु चाहिए। और यह जो भीतर का धन है इसको पाने के लिए, इसकी दिशा बताने के लिए, तुम सोचते हो गुरु की सहायता नहीं चाहिए?

गुरु की सहायता से ही इस धन तक पहुंच पाएंगे। और जब इस धन तक पहुंच पाते हैं तो लालन शाह कहते हैं 'आनंद सलिल में वह गोते लगाता।' आनंद सलिल...जीवन एक आनंद की धारा है। जैसे हम अपने भीतर इस खजाने तक जाते हैं, भीतर एक ऐसा नाद गूँजने लगता है, रोम–रोम गूँजने लगता है उसमें, और हम उस आनंद की धारा में बहने लगते हैं। और जीवन हमेशा, सदैव बिना किसी कारण के, बिना किसी आलंबन के, आनंद ही आनंद में सराबोर रहता है।

'तार ओन्यो धौनेर नाइ लालोशा
पूरेछे तार शौकोल आशा
लालोन भेड़ो बुद्धिनाशा
नाश होलो शे मूलेर भूले।।'

उसे और दूसरे धन की लालसा नहीं रहती, सकल आशा उसकी पूरी हो जाती है। लालन शाह कहते हैं– मेरी तो बुद्धि का ही नाश हो गया है, मूल को छोड़कर जैसे भूल ही की है मैंने।

एक महर्षि हुए हैं। वे हमेशा कण जो निकलते खेतों के, जो दाने निकलते उसे बीन–बीन कर अपना जीवन चलाते थे।

एक बार राजा ने सुना कि उनके राज्य में इतना गरीब एक ऋषि रहता है। राजा ने मंत्री को भेजा कि यह धन जाकर उस महर्षि को देकर आओ।

महर्षि ने कहा कि मेरे पास तो बहुत कुछ है, उन्हें दे दो यह धन, जिनके पास नहीं है, जिनको जरूरत है। वे लोग लौट गए।

ऐसे तीन बार उन्होंने अलग–अलग लोगों को भेजा लेकिन महर्षि बोले यह धन उसे दे दो जिसे इसकी जरूरत है। मेरे पास तो बहुत है।

राजा सोच में पड़ गया। राजा ने कहा रानी से कि यह किस तरह के ऋषि हैं? रानी ने बोला ऋषि के पास अगर जाना है तो देने नहीं जाना, लेने जाना। कुछ लेने जाओ ऋषि के पास। राजा फिर खुद गया धन लेकर, और उनके चरणों में रख दिया। महर्षि बोले यह धन उन्हें दे दो जिन्हें इसकी जरूरत है।

राजा ने बोला कि तुम किस तरह के व्यक्ति हो? तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है, मात्र एक लंगोटी है, फिर तुम कहते हो कि तुम्हें इस धन की जरूरत नहीं है, दूसरे को दे दो।

महर्षि बोले कि वासनाएं, मांग.... व्यक्ति को भिखमंगा बनाती है। मेरी सारी मांगें समाप्त हो गई हैं, मेरी सारी वासनाएं विदा हो गई हैं, इसलिए मैं अचानक सम्राट हो गया हूं। मेरे पास सब कुछ है, मैं परम तृप्त हूं।

कैसे हो गए महर्षि सम्राट? उन्हें मिल गया–राम रतन धन, वह भीतर का खजाना, जिसको पाकर ऐसी तृप्ति आती है कि फिर बाहर की सारी मांगें मिट जाती हैं। भीतर ऐसी तृप्ति के एहसास का नाम ही प्रभु स्मरण है। अपनी जड़ों का स्मरण करना। ऊपरी बातों में, आकर्षक लगने वाले फूल–पत्तों में जीवन न गंवा देना। मूल को भूलना जिंदगी की सबसे बड़ी भूल है।

हरि ओम् तत्सत्!

प्रीति : रसवंती दासी सी

‘होते चाओ हुजुरेर दाशी
मोने गोल तो पोरा राशी–राशी।।
ना जानो शेबा–शाधोना
ना जानो प्रेम–उपाशौना
शौदाइ देखी इतौर पाना,
प्रोभू राजी हौबे किशी।।
केशो–बेशो बेष कोरले कि हौय,
रौशबोध ना जोदी रौय,
रौशोबोती के तारे कौय
केबोल मुखे काष्ठो हाँशी।।
कृष्णो पौदे गोपी शूज़ौन
कोरे छिलो दाश्यो शेबौन,
लालोन बौले ताइ कि रे, मोन,
पारबी ओरे शुखबिलाशी।।’

‘तुम हुजूर की दासी होना चाहते हो, पर मन में तो पेंच भरा पड़ा है तो कैसे हुजूर की सेवा कर सकोगे।

ना ही सेवा–साधना जानते हो, ना ही प्रेम की उपासना करना आता है। सदा ओछापन दिखाते हो। प्रभु राजी कैसे होगा। केश और वेशभूषा से बनावटी रस का बोध उपजता है, मुख पर बनावटी हंसी लाने से कोई रसवंती नहीं कहलाता। कृष्ण पद के लिए गोपी–सुजन सदा दास्य भाव रखते थे। लालन कहते हैं– रे मन! तू तो सुख–विलास का आदी है। तू क्या दास भाव रखेगा। आत्म सुख–विलास त्यागना होगा।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर लालन शाह कहते हैं–

'दास्य भक्ति' की महिमा से शास्त्र भरे पड़े हैं। भक्ति के अनेक रूपों में यह रूप सर्वाधिक प्यारा है। इसी विषय में बाउल फकीर संत लालन शाह गाते हैं–

'होते चाओ हुजुरेर दाशी
मोने गोल तो पोरा राशी–राशी।।'

हुजूर की दासी होना चाहते हो, पर मन में तो पेंच भरा पड़ा हुआ है तो कैसे हुजूर की सेवा कर सकोगे।

एक बहुत प्यारी कथा है। बल्कि घटना है कि इब्राहिम एक राजा हुए हैं और वे एक गुलाम को खरीदकर अपने घर ले जा रहे थे। तो रास्ते में इब्राहिम गुलाम से पूछते हैं कि तुम क्या खाओगे?

गुलाम जवाब देता है– मेरी अपनी क्या मर्जी, मालिक अब तो आप जो मुझे खिलाएंगे, मुझे वही खाना है। मेरी अपनी कोई ख्वाहिश नहीं है।

फिर और देर हुई, घर पहुंच गया गुलाम, तो इब्राहिम ने पूछा तुम्हें कैसे कपड़े पसंद हैं? तुम्हें क्या पहनाया जाए?

तो गुलाम कहता है मेरी क्या पसंद हुजूर, आप जो पहनाएंगे वही मुझे पहनना है। आप जो खिलाएंगे वही मुझे खाना है।

फिर पूछा कि तुम कैसे सोना पसंद करोगे?

तब फिर गुलाम कहता है कि आप जहां मुझे सुलाएंगे वहीं मुझे सोना है, जहां मुझे रखेंगे वहीं मुझे रहना है, जैसा आप खिलाएंगे वैसा मुझे खाना है, जो पहनाएंगे वही मुझे पहनना है; मेरी अपनी कोई पसंद नहीं है हुजूर। आपकी सब पसंद, मेरी पसंद है अब।

इब्राहिम तो चौंक गए और गुलाम से बोले– अरे! तूने तो मुझे सूत्र दे दिया, मैं जो जिंदगी भर से खोज रहा था। शांति का सूत्र दे दिया तूने तो, कि उसकी पसंद से, उसकी मर्जी से राजी हो जाओ तो जीवन में शांति उतर आएगी। जीवन धन्य हो जाएगा।

नानक कहते हैं–

'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।'

उसकी मर्जी में राजी हो जाओ, अपनी मर्जी मत चलाओ। जैसे ही हम उसकी मर्जी में राजी हो गए हम आध्यात्मिक हो गए। धर्म के जीवन में प्रवेश कर लिया। उसकी मर्जी के साथ राजी हो जाओ।

नदी के साथ तैरो मत, बहो। हम तो तैर ही नहीं रहे, बल्कि हम नदी की उल्टी धारा में तैरने की कोशिश कर रहे हैं। नदी हमारी दुश्मन नहीं है, नदी हमें सागर तक ले जाएगी अगर हम अपने आप को छोड़ दें। नदी हमारी दुश्मन नहीं बल्कि मित्र है।

तो हमें जीवन रूपी नदी में बहना है। तैरना नहीं है, लड़ना नहीं है; संघर्ष नहीं करना है और फिर जीवन में शांति उतर आती है। तैरना नहीं, बहना। और यह जो स्वीकार भाव है, यह आता है दास्य भाव जब जीवन में उतर आए। हम तो उसके दास हैं।

तुम हमारे मालिक, हम तुम्हारे गुलाम। जिस दिन यह गुलाम का भाव भीतर पैदा हो गया, शांति ही शांति है जीवन में। और इस शांति में कोई परमात्मा से दूर नहीं रह सकता। इसी शांति की झील में परमात्मा की सुगंध, परमात्मा के फूल खिलते हैं। जिसे भी झुकने का भाव पैदा होता है, उसका जीवन बच जाता है।

अपने जीवन को किसने बचाया? जिसके जीवन में शांति उतर आई, जिसके जीवन में आनंद उतर आया, जिसके जीवन में प्रेम उतर आया, उसने ही तो जीवन को बचाया है। बेचैन रहकर जीवन जीना, जीवन बचाना नहीं होता। तो कैसे जीवन में बेचैनी विदा हो जाए? झुकने का भाव जब पैदा हो जाए।

देखा है ना, जब आंधियां आती हैं तो बड़े-बड़े पेड़ जो अकड़े खड़े रहते हैं, टूट जाते हैं और छोटे-छोटे पौधे जो हवाओं के साथ डोल लेते हैं, वे बच जाते हैं, उनका जीवन बच जाता है।

तो यह जो झुकने का भाव है, यह जो मिटने का भाव है, यह दास्य भाव जीवन में पैदा हो जाए, इसे ही कहते हैं दास्य भक्ति। तेरी मर्जी के साथ हमारी मर्जी, तू जैसा करे, जो भी जीवन में हो तेरी मर्जी से हो। मेरी अपनी कोई इच्छा न बचे।

'जब तक बिके ना थे, कोई पूछता ना था।
तनें मुझे खरीद कर अनमोल कर दिया।।'

जिस दिन हम किसी के चरणों में मिट जाएं, अपने आप को किसी के हवाले कर दें। उस दिन हमारा जीवन अमूल्य हो जाता है।

'ना जानो शेबा-शाधोना
ना जानो प्रेम-उपाशौना
शौदाइ देखीं इतौर पाना,
प्रोभू राजी होबे किशी।।'

ना ही सेवा साधना जानते हो, ना ही प्रेम की उपासना करना आता है, सदा ओछापन दिखाते हो, प्रभु राजी कैसे होगा?

मीरा कहती है–

‘श्याम मने चाकर राखो जी,

चाकर रहसूं बांग लगासूं नित उठ दर्सन पासूं।।’

कुछ सेवा करने को मिल जाए, कैसे हम दास्य भाव में चले जाएं? हम कैसे जाएंगे? हम जो भी कर रहे हैं जीवन में, उसी का काम कर रहे हैं। किस भाव से करें?

अगर हम बुहारी भी लगा रहे हैं, झाडू भी लगा रहे हैं और हम उसे कुछ इस तरह से लगाते हैं कि यह घर उसी का तो है। उसी का तो निवास है इसमें, उसी के तो आने के लिए हम झाडू लगा रहे हैं। अगर यह भाव हो गया तो झाडू लगाना ही पूजा बन जाती है। वही तो असली सेवा है। हम जो भी कर रहे हैं जीवन में, खाना पका रहे हैं, झाडू लगा रहे हैं और जो भी काम कर रहे हैं, नौकरी कर रहे हैं। अगर यह भाव आ जाए कि हम उसके लिए कर रहे हैं, अकर्ता भाव आ जाए, वही करा रहा है, हम उसके लिए कर रहे हैं तो बात ही बदल जाएगी। जीवन एक अर्चना बन जाएगा। एक पूजा बन जाएगा।

‘न जानू सेवा साधना’ और न तो जानते हो प्रेम की उपासना। सेवा साधना है–कैसे हम मिट कर, कैसे हम अकर्ता भाव से कार्य को करें? यह हो गई उसकी सेवा, यह हो गया हमारा मिटना; प्रेम की उपासना। प्रेम की उपासना कैसे हो जीवन में? धरमदास कहते हैं–

‘साईं, मैं असल गुलाम तिहारा।

काया–नगर बन्यो अति सुन्दर,

मोह को लग्यो बजारा।’

मैं तो तुम्हारा असली गुलाम हूं और तुम मुझे खरीद लो प्रभु, मेरे भीतर यह भाव पैदा कर दो कि मैं तुम्हारे ही लिए हूं। वास्तविक स्थिति तो यह है कि मैं तुम्हारा हूं, तुम्हारा गुलाम हूं। लेकिन यह याद मेरे भीतर निरंतर बन जाए।

‘साईं, मैं असल गुलाम तिहारा।।’

काया–नगर–––तूने यह काया रूपी नगर दिया है, अति सुन्दर है यह। और इसमें मेरी चेतना, मेरी आत्मा विराजमान है।

‘मोह को लग्यो बजारा।’

लेकिन वह आत्मा मोह के बाजार में फंस गई है। और भूल ही गई है अपने आप को। भूल ही गई है कि वह तो परमात्मा का स्वरूप है। वह तो भूल ही गई है इस मोह के बाजार में।

'धरमदास की यही बीनती,
उरझे कों निर्वारो।
साहेब कबीर मिले गुरु समरथ,
हम से अधम उबारो।।'

धरमदास कहते हैं कि मेरी विनती है कि यह जो उलझ गया है जीवन, मेरी चेतना जो उलझ गई है, मोह के बाजार में खो गई है; इस उलझन से मुझे पार निकालो और इस उलझन से पार निकालना तुम्हारे द्वारा ही संभव है।

'धरमदास की यही बीनती,
उरझे कों निर्वारो।
साहेब कबीर मिले गुरु समरथ।'

गुरु जब तक मिलता नहीं तब तक उबरना होता नहीं। जिस दिन गुरु मिल गया जीवन में; जीवन में उबरना हो जाता है।

'केशे–बेशे बेष कोरले कि हौय,
रौशबोध ना जोदी रौय,
रौशोबोती के तारे कौय
केबोल मुखे काष्ठो हाँशी।।'

केश और वेश–भूषा से बनावटी रस का बोध उपजता है। मुख पर बनावटी हंसी लाने से कोई रसवंती नहीं कहलाता।

कबीर कहते हैं–

'मन न रंगाए, रंगाए जोगी कपड़ा।'

नकली चीजों से, नकली हंसी से क्या कोई आनंद मिलता है? हंसी असली कब होगी? जब भीतर आनंद की लहरें उठ रहीं होतीं तो अचानक ये होंठ मुस्कुराने लगते। निरंतर इन होठों पर मुस्कान बनी रहती है। नकली हंसी से आनंद नहीं मिल सकता। आनंद से हंसी आ सकती है, मुस्कुराहट फैल सकती है। आंतरिक रूपांतरण से ही जीवन धन्य होता है, जीवन में परमात्मा का आगमन होता है। बाहर से हम कुछ भी रूपांतरण करें, चाहे कोई वेश धारण कर लें, चाहे हंसते रहें, चाहे रोते रहें, चाहे पूजा करते रहें। मगर ये सब बाहर के साधन हैं, इनसे कुछ होने वाला नहीं। सब आंतरिक स्फूर्णा से होना चाहिए। आंतरिक रूपांतरण जब तक नहीं है, सब कुछ बनावटी है। और बनावटी जीवन में परमात्मा नहीं उतरता।

कथा है कि सोलोमन राजा जो थे वो बहुत विवेकशील माने जाते थे, बहुत इंटेलिजेन्ट माने जाते थे। एक बार उनके दरबार में एक कलाकार आया। उसकी कलाकृति थी कि वह नकली फूल बनाता था और नकली फूल इतने सुन्दर बनाता था, इतने वास्तविक प्रतीत होते थे कि मुश्किल था भेद करना कि कौन है असली, और कौन नकली? वह अपने दोनों हाथों में दो फूल लेकर आया और सोलो से कहा कि अगर आप इसे दूर से ही बिना छूए बता दें कि कौन सा फूल असली है, कौन सा नकली है? यह आप के लिए भेंट लाया हूं। तो आपके विवेक की दाद देनी होगी मुझे। आपके विवेक की, सुना है, दूर–दूर तक उसकी ख्याति है।

तो सोलोमन एक क्षण को मुस्कुराया और उन्होंने कहा निश्चित रूप से। एक काम करो खिड़की खुलवा दो, उन्होंने एक खिड़की खुलवा दी और जैसे ही खिड़की खुली सोलोमन मुस्कुराए और बता दिया कि तुम्हारे दाएं हाथ में असली फूल है।

कलाकार तो चौंका। आपने कैसे बता दिया इतनी दूर से कि यह असली फूल है? जब कि भेद करना तो बहुत मुश्किल था। तो सोलोमन ने कहा कि नकली फूल पर मधुमक्खी नहीं बैठती। जैसे ही मैंने खिड़की खोली, मधुमक्खी आई और जिस फूल पर मधुमक्खी बैठी, मुझे पता चल गया यही असली फूल है। मक्खी धोखा नहीं खाती नकली फूलों से।

ऐसे ही जीवन में परमात्मा का आगमन होता है, जब हमारा जीवन असली होता है, असली रूपांतरण हमारे भीतर घटित होता है, तब हमारे जीवन में परमात्मा अवतरित होता है।

आएं परमगुरु ओशो क्या कहते हैं, सुनते हैं–

नारद कहते हैं: कांताभक्ति या दासभक्ति...!

दास शब्द निंदित हो गया बहुत। लेकिन उसमें भी कुछ राज है। अब तो दुनिया में कोई दास होते नहीं। और अगर किसी कम्यूनिस्ट को ये नारद के सूत्र मिल जाएं तो वह कहेगा, यह आदमी तो बुर्जुआ, पूंजीवादी मालूम पड़ता है, कैपिटलिस्ट है, दासों की बातें कर रहा है, कह रहा है कि दास्यभक्ति होनी चाहिए, दासों जैसा होना चाहिए। दासता को मिटा दिया।

जिस दासता को तू मिटा दिया है, उसकी बात नहीं हो रही है। यह एक ऐसी बात है कि कभी–कभी घटती है। यह भी प्रेम है एक, कि कोई किसी को अपनी सारी मालकियत दे देता है। छीन नहीं लेता––कोई–कोई दे देता है। कोई किसी के चरणों का दास हो

जाता है। इतना हो जाता है कि अगर दोनों के जीवन बचाने का मौका आए और एक ही बचता हो, तो दास अपने मालिक को बचाएगा, अपने को नहीं। अगर घर में आग लगी हो तो दास जल जाएगा, मालिक को बचा लेगा।

दास्यभक्ति का इतना ही अर्थ है कि तू जिसे मालिक जाना, उसको ही तुम अपनी आत्मा भी जानना। परमात्मा मालिक है, स्वामी है। या तो कांताभक्ति करना या दास की भक्ति करना। क्योंकि दास भी अपना तादात्म्य छोड़ देता है अपने से, और मालिक के साथ जुड़ जाता है; और कांता भी अपने को बिल्कुल भूल जाती है, अपने पति के साथ एक हो जाती है।

तो देखा! विवाह कर लाते हो स्त्री को, तुम्हारा नाम स्त्री के साथ जुड़ जाता है, तुम्हारा कुल, तुम्हारा गोत्र तुम्हारी जाति स्त्री के साथ जुड़ जाती है। इससे उलटा नहीं होता। तुम्हारी स्त्री की जाति तुम्हारे नाम से नहीं जुड़ती। स्त्री अपने को तुम में खो देती है, तुम उसमें अपने को नहीं खोते। तुम विवाह कर लाते हो, स्त्री का नाम भी बदल देते हो। वह प्रसन्न होती है उसके नाम के बदल जाने से क्योंकि अतीत का मूल्य ही क्या अब। जो प्रेम के पहले था, वह था ही नहीं। असली जीवन तो अब शुरू हुआ। नया जन्म, नया जीवन। वह नया नाम चाहती है। वह नया भाव चाहती है अपने जीवन का। वह नाम भी बदल लेती है।

विवाह तुम करते हो स्त्री से, तो स्त्री के घर रहने पुरुष नहीं जाता, स्त्री पुरुष के घर रहने आती है। कभी मजबूरी में किसी कारण से पुरुष को जाना पड़ता है तो बड़ा लज्जित भाव से जाता है। घरजमाई की जैसी फजीहत होती है, वह सभी जानते हैं। कभी एकाध पर यह मुसीबत आ जाती है कि घरजमाई बनना पड़ता है, तो दीन-हीन हो जाता है।

तुम जरा गौर करो। आखिर पुरुष अगर विवाह करके अपनी पत्नी के घर रहने जाता है तो दीन-हीन की क्या जरूरत है? मगर वह समझता है, कुछ मजबूरी हो गई, अवश हो गया, असहाय हो गया, दूसरों पर निर्भर हो गया। लेकिन तुमने कभी इससे उलटा होते देखा? ख्याल करो तुम, स्त्री तुम्हारे घर में आती है, दूसरे के घर में आती है, अपने को सब भांति लुटा देती है, और कभी दीन-हीन

अनुभव नहीं करती, सौभाग्यशालिनी अनुभव करती है। यही नहीं, मजे की बात यह है कि अपने को पूरी तरह सर्वस्व दान करके अचानक तुम्हारे घर की मालकिन हो जाती है, 'घरवाली' हो जाती है। घर तुम्हारा था, स्त्री 'घरवाली' हो जाती है। तुमको कोई घरवाला नहीं कहता। और ऐसा अनुभव नहीं करती कि दूसरे के घर में आ गई है। अपने को इतना खो देती है कि पराया नहीं बचता।

इसलिए नारद कहते हैं: कांताभक्ति या दासभक्ति...! इतने एक हो जाना परमात्मा से कि फासला न रह जाए।

शिवदयाल सिंह जी कहते हैं–

'मोटे बंधन जगत के गुरुभक्ति से काट।

झींने बंधन चित्त के कटे नाम प्रताप।।'

गुरु की सेवा से, गुरु भक्ति से इस जगत के बंधन कट जाते हैं। और जो बारीक सूक्ष्म बंधन होते हैं, नाम में, ओंकार में डूबने से उनका नाश हो जाता है। और हम मुक्त हो जाते हैं।

प्रीति का प्रारंभ करना– रसवंती दासी होकर। यह प्रीति ही अंततः मुक्ति बन जाती है। जो दास बनता है, वह अस्तित्व के द्वारा मालिक बना दिया जाता है। और जो स्वामी बनने का प्रयत्न करता है वह अहंकार का गुलाम बनकर रह जाता है।

हरि ओम् तत्सत्!

ब्राह्मण : जो ब्रह्म को जाने

'शौब लोके कौय लालोन कि जात शौंशारे लालोन
कौय जेतेर कि रूप, देखलाय ना ए नौजोरे।। छून्नत
दिले हौय मुसलमान
नारी लोकेर कि कौय बिधान?
बामोन चिनि पोइतार प्रोमान
बाम्नी चिनि कि धोरे।।
केउ माला केउ तोस्बी गौलाय,
ताइते कि जात भिन्नो बौलाय,
जाओवा किम्बा आशार बैलाय,
जेतेर चिन्हो रौय कार रे।।
गौर्ते गैले कूपजौल कौय,
गौंगाय गैले गौंगाजौल हौय,
मूले ऐकजौल, शेजे भिन्नो नौय,
भिन्नो जानाय पात्रो ओनुशारे।।
जौगोत बेड़े जेतेर कौथा,
लोके गोउरौब कौरे जौथा–तौथा,
लालोन शे जेतेर फाता
बिकियेछे शात बाजारे।।'

संसार के लोग पूछते हैं कि लालन तुम्हारी जात क्या है? लालन कहते हैं– जात का रूप क्या है मैंने तो कभी नहीं देखा। संत लालन कहते हैं– सुन्नत से मुसलमान पहचाना जाता है, फिर नारी के लिए कौन सा विधान है। ब्राह्मण को जनेऊ से पहचान लोगे लेकिन ब्राह्मणी को कैसे पहचानोगे? किसी के गले में माला है, तो किसी के गले में तस्बी है, उससे क्या जाति भिन्न हो जाती है। जाने या आने की बेला में जाति का चिन्ह कहाँ रह जाता है। गर्त में जल, कूप जल कहलाता है। गंगा में जाकर मिलते ही गंगाजल कहलाता है। मूल में तो वही एक जल है, भिन्न कहाँ रह जाता है। पात्र के अनुसार ही भिन्नता दिखाई पड़ती है।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'शौब लोके कौय लालोन कि जात शौंशारे

लालोन कौय जेतेर कि रूप, देखलाय ना ए नौजोरे।।'

संसार के लोग पूछते हैं कि लालन तुम्हारी जात क्या है? लालन कहते हैं जात का रूप क्या है मैंने तो कभी देखा ही नहीं।

एक बार की घटना है, स्वीडन में एक बच्चा पैदा हुआ और उस बच्चे को फ्रेंच दम्पति ने गोद ले लिया। फ्रेंच दम्पति माता–पिता बन गए उस बच्चे के। अब जब उसकी उम्र हुई कुछ दस महीने की तो वह कुछ आवाजें निकालने लगा। तो उन्हें चिंता होने लगी। उन्होनें एक स्वीडिश टीचर बुलाया और कहा कि मैं तुम्हें इस बच्चे के लिए नियुक्त करता हूं। क्योंकि जब ये बोलना सीखेगा तो ये स्वीडिश में बोलेगा और हम तो फ्रेंच जानते हैं। तो हमें तुम स्वीडिश सीखा दो ताकि हम इसकी बात को समझ सकें। टीचर तो हंसा कि स्वीडन में पैदा हुआ तो स्वीडिश बोलेगा बच्चा? बच्चा जिस माहौल में रहा, जो भाषा उसके आस–पास बोली जाती है, वही भाषा तो वो सीखेगा और उसी में बोलेगा।

बच्चे की न कोई भाषा होती है, ना उसकी कोई बोली होती है, ना उसकी कोई जात होती है, ना उसके कोई संस्कार होते हैं। हम ही उसे संस्कार देते हैं, हम ही उसे भाषा देते हैं, हम ही उसे सिखाते हैं कि उसकी जात क्या है? बच्चा कोरा पैदा होता है। उसकी कोई जात नहीं होती।

आएं परम गुरु ओशो को सुनते हैं–

'ब्राह्मण तो वह जो ब्रह्म को जाने।

पलटू कहते हैं–

'बाम्हन तो भए जनेऊ को पहिरि कै।'

'ब्राह्मनी के गले कछु नाहिं देखा।'

पलटू जरा मजाक उड़ाते हैं उन सब की जो द्वंद्व में पड़े हैं, द्वैत में पड़े हैं।

वे कहते हैं कि ब्राह्मण हो गए जनेऊ पहनने से, चलो ठीक। हालांकि कोई जनेऊ पहनने से ब्राह्मण हो नहीं सकता। ब्राह्मण तो वह जो ब्रह्म को जाने। जनेऊ पहनने से क्या होगा? प्रतीकों में पड़ जाते हैं लोग। तुमने देखा, जनेऊ में तीन धागे होते हैं, वे त्रिवेणी के प्रतीक हैं। सिर्फ प्रतीक हैं। वे जो तीन धागे हैं जनेऊ के, वे प्रतीक हैं कि दो मिल जाएं तो तीसरा भी आ मिलेगा। ऐसी त्रिवेणी बन जाएगी तो तुम

ब्राह्मण हो जाओगे। मगर प्रतीक को ही रखे बैठे हैं।

यह तो ऐसे ही हुआ कि जैसे किसी ने कहा कि पानी का प्रतीक 'एच–टू–ओ,' कि दो परमाणु हाइड्रोजन के और एक परमाणु ऑक्सीजन का, इनके मिलने से पानी बन जाता है; इन तीन के मिलने से पानी बन जाता है। अब तुम्हें लगी है प्यास, अब तुम कागज पर लिखे हुए बैठे हो एच टू ओ, या बैठे–बैठे भजन कर रहे हो–– एच टू ओ, एच टू ओ। इससे प्यास नहीं बुझेगी। और यह सूत्र गलत नहीं है। सूत्र की तरह ठीक है और बड़ा अर्थपूर्ण है। मगर इसको जपने से प्यास नहीं बुझेगी। प्यास तो पानी से बुझेगी। ब्रह्म को पाने से बुझेगी।

'बाम्हन तो भए जनेऊ को पहिरि कै।'

पलटू कहते हैं कि चलो ठीक, तुम तो जनेऊ को पहनकर ब्राह्मण हो गए, मगर ब्राह्मणी के बाबत क्या ख्याल है? वे मजाक उड़ाते हैं।

'ब्राह्मणी के गले कछु नाहिं देखा।'

मनुष्य–जाति के गर्त में गिरने के बड़े से बड़े कारणों में से एक कारण यह है कि आधी मनुष्य जाति को तो धर्म का कोई अधिकार ही नहीं रहा। यहूदियों में स्त्रियां सिनागॉग में नहीं जा सकतीं; या जाएं भी तो उनके लिए दूर ऊपर अलग छज्जा होता है, जिस पर पर्दा पड़ा होता है, वहां बैठना पड़ता है।

जैन कहते हैं – स्त्रियों का कोई मोक्ष नहीं स्त्री–पर्याय से। मरकर स्त्रियों को पहले पुरुष होना पड़ेगा, फिर मोक्ष हो सकता है। मोक्ष सिर्फ पुरुष का हो सकता है।

यह बात बड़ी अपराधपूर्ण है। इसलिए पलटू मजाक उड़ाते हैं।

'बाम्हन तो भए जनेऊ पहिरि कै,
बाम्हनी के गले कछु नाहिं देखा।
आधि सुद्रिनि रहै घरै के बीच में।'

तब तो इसका मतलब हुआ कि स्त्री तो क्षुद्र हो गई, क्योंकि क्षुद्र ही नहीं पहन सकते हैं जनेऊ और स्त्री भी नहीं पहन सकती।

'आधी सुद्रिनि रहै घरै के बीच में,
करै तुम खाहु यह कौन लेखा।'

और वह भोजन बनाती है और तुम भोजन करते हो, कौन–सा हिसाब चल रहा है? क्षुद्र का बना हुआ भोजन कर रहे हो और ब्राह्मण बने बैठे हो, कुछ तो शर्म करो।

'सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई।'

खतना होता है मुसलमानों में, तो शेख की तो सुन्नति हो जाती है; खतना हो गया, इसलिए मुसलमान हो गए।

'सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई,
सेखानी को नाहिं तुम कहो सेखा।'

वे पूछते हैं – लेकिन शेखानी के बाबत क्या ख्याल है? इसका खतना तो हुआ नहीं, यह तो मुसलमान है नहीं। खतने के बिना तो कोई मुसलमान हो नहीं सकता। खतना तो बिल्कुल जरूरी है।

'आधी हिंदुइन रहै घरै के बीच में।'

और यह जो शेखानी है, वह तो हिंदू हो गई, क्योंकि इसका खतना कभी हुआ नहीं।

'आधी हिंदुइन रहै घरै बीच में
पलटू अब दुहुन के मारू मेखा।'

पलटू कहते कि पलटू समझदारी की बात तो यह है कि दोनों को समाप्त करके ऊपर उठो। स्त्री–पुरुष के भेद–भाव को मिटाकर ऊपर उठो। तुम्हारे भीतर दोनों को समाप्त कर दो।

'पलटू अब दुहुन के मारू मेखा।'

दोनों को खत्म कर दो अपने भीतर। न स्त्री रह जाओ, न पुरुष रह जाओ। जब तुम्हारे भीतर न स्त्री बचे न पुरुष बचे, जब दोनों मिल जाएं, तब तीसरे का जन्म होता है।'

एक बार अकबर दादू के चरणों में गए और दादू से पूछते हैं कि अल्लाह की जात क्या है, अल्लाह का रंग–ढंग क्या है?

'दादू ने कहा– 'इश्क अल्लाह की जात है।' ईश्वर की जात इश्क है, प्रेम है। जब ईश्वर की कोई जात नहीं है तो हम तो ईश्वर से पैदा हुए हैं। हमारी कैसे कोई जात हो सकती है? हम नाहक जात–पात में अटके हुए हैं।

लालन कहते हैं– मैं तो देख ही नहीं पाता क्योंकि उसका कोई चिन्ह ही नहीं है, कैसे पहचानूं कि मेरी क्या जात है? जाति प्रथा अहंकार द्वारा निर्मित है, एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए। यथार्थ में हम सब उस परमात्मा के बंदे हैं और उस परमात्मा के रंग में जो रंग गया वह ऊंची जाति का है। जिसने अपने भीतर के ब्रह्म को जान लिया वह ब्राह्मण है। और जिसने अपने को शरीर जाना वो क्षुद्र है। बस यही जाति है। हम क्षुद्र की तरह पैदा होते हैं और एक दिन ब्राह्मण की तरह विदा हो सकते हैं, अगर हम अपने भीतर के ब्रह्म को जान

लें, अपने ब्रह्म स्वभाव को जान लें।

रविदास कहते हैं–

'जात भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।

नीचे से प्रभु उँचा कियो है, कहा रैदास चमारा।।'

रविदास कहते हैं– हमारी तो जाति भी ओछी थी, और काम भी ओछा था, लेकिन परमात्मा ने हमें इतना ऊंचा बना दिया। परमात्मा के रंग में वे रंग गए। जिसके प्रेम में हम पड़ जाते हैं, हम वैसे हो जाते हैं।

कबीर कहते हैं–

'जात जुलाहा, मति का धीर।

सहज–सहज गुण रमै कबीर।।'

हम तो जाति के जुलाहा थे और हमारी मति भी बहुत तेज नहीं थी। लेकिन जैसे–जैसे हम परमात्मा के रंग में रंगते गए, उसके स्मरण में जीते गए, हम उसी जैसे हो गए।

पलटू कहते हैं–

'पारस के परसंग, लोह से कनक कहौ।

आगि मंहै जो परै, जरै आगइ होइ जावै।।'

पारस के साथ जो रहता है, वह लोहा भी सोना ही कहलाने लगता है। और अग्नि में जो भी जाता है, वह आग ही हो जाता है।

'भजन के रे परताप ते, तन–मन निर्मल होय।'

जो भजन करता है, परमात्मा का गुणगान करता है उसका मन और तन निर्मल हो जाता है।

'पलटू नीच से ऊंच भा, नीच कहै ना कोय।'

पलटू कहते हैं– इस नीच से ऊंचे हो गए, हमें सब ऊंचा कहने लगे, संत कहने लगे। क्योंकि हम तुम्हारे प्रेम में जिए, तुम्हारे रंग में हम रंग गए प्रभु। इसलिए नीचे से हम ऊंचे हो गए।

'छून्नत दिले हौय मुसलमान

नारी लोकेर कि कौय बिधान?

बामोन चिनि पोइतार प्रोमान

बाम्नी चिनि कि धोरे।।'

संत लालन कहते हैं– सुन्नत से मुसलमान पहचाना जाता है, फिर नारी के लिए कौन सा विधान है? ब्राह्मण को जनेऊ से पहचान लोगे, लेकिन ब्राह्मणी को कैसे पहचानोगे? ये सारे चिह्न तो हमने ही दिए हैं। कैसे ये सारे चिह्न हमने बनाए और हमने जात–पात के घेरे बना लिए?

अगर हम ब्लड टेस्ट करवाएं और नहीं बताएं ये किसका है, तो क्या पता चलेगा कि ये ब्लड गोरे का है, या काले का है, या मुसलमान का है, या हिंदू का है?

अगर हम एक्स–रे करवाएं तो क्या हड्डी बता सकती है किस जाति की हड्डी है? क्या अगर हम एम.आर.आई. कराएं तो हमारी ब्रेन में कैसी बुद्धि है? क्या है? ये ब्रेन किसका है? क्या बताया जा सकता है कि ब्राह्मण की ब्रेन है? या क्षुद्र का ब्रेन है? बिल्कुल नहीं बताया जा सकता। ये सारी जात–पात की ईजाद, मनुष्य की ईजाद है और यही सारे फसाद का कारण है। सारी अशांति की जड़ है।

'केउ माला केउ तोस्बी गौलाय,
ताइते कि जात भिन्नो बौलाय,
जाओवा किम्बा आशार बैलाय,
जेतेर चिन्हो रौय कार रे।।'

किसी के गले में माला है, तो किसी के गले में ताबीज है। उससे क्या जात भिन्न हो जाती है। जाने या आने की बेला में जात का चिन्ह कहां रह जाता है? जात का चिन्ह लेकर कोई नहीं जाता। जैसे हम आते हैं कोरे वैसे ही जाते हैं। एक ही चिन्ह लेकर जा सकते हैं– गुरु दीक्षा का; अगर किसी ने गुरु धारण किया, नाम की दीक्षा ले ली, वह चिन्ह लेकर, शिष्य की तरह अपने आप को जानकर, अपने निराकार को जानकर, उस चिन्ह को लेकर हम जान सकते हैं। भक्त होने के चिन्ह को लेकर जान सकते हैं हम।

एक बार की बात है, दो वृक्ष साथ–साथ रहा करते थे, बहुत प्रेम था उनमें, बड़ा घना प्रेम था। एक बार किसी बात पर उनमें झगड़ा हो गया। बहुत क्रोध आ गया एक वृक्ष को दूसरे वृक्ष पर। सोचा कि इस वृक्ष को मार ही डाला जाए। उसने दूसरे वृक्ष की जड़ों को कुतरना शुरू कर दिया। अब दूसरे वृक्ष की जड़ों को उसने पूरा उखाड़ डाला और जो दूसरा वृक्ष था, वो गिर गया सूख गया। और यह देख कर दूसरा वृक्ष खुश होने लगा कि यह तो धीरे–धीरे सूखने लगा है, अब तो इसकी मृत्यु एक दिन आने ही वाली है। लेकिन देखता है कि कैसे ये वृक्ष सूखता जा रहा है और सूख कर गिर गया।

तो दूसरा वृक्ष जो था, उसकी भी जड़ें उसी मिट्टी से जुड़ी हुई थीं, उस एक ही मिट्टी से तो दोनों जड़ें जुड़ी हुई थीं। एक ही भूमि में दोनों जड़ें अपने जीवन को जमाए हुए थीं। एक का जीवन गया, एक की जड़ें कटीं तो दूसरे की जड़ें भी तो उखड़ गईं, काटने में।

ऐसे ही जात–पात। एक दूसरे को हम काट रहे हैं लेकिन हम ये नहीं जानते कि हम आए तो उसी एक जड़ रूपी परमात्मा से हैं। हम किसी का बुरा करते हैं, किसी के साथ अन्याय करते हैं तो हमारे साथ भी तो वही होता है।

'कुदरत के सब बंदे, एक नूर से सब जग उपजा कौन भले को मंदे?
अव्वल अल्ला नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।।'

'गौर्ते गैले कूपजौल कौय,
गौंगाय गैले गौंगाजौल हौय,
मूले ऐकजौल, शेजे भिन्नो नौय,
भिन्नो जानाय पात्रो ओनुशारे।।'

गर्त में जल कूप–जल कहलाता है, गंगा में जाकर मिलते ही गंगा–जल कहलाता है। मूल में तो वही एक जल है, भिन्न कहां रह जाता है। पात्र के अनुसार ही भिन्नता दिखाई पड़ती है। जल तो एक ही है। अलग–अलग रूप के पात्र हैं, अलग–अलग आकृति के पात्र हैं तो अलग–अलग जल दिखाई देता है। कुंए में कुंए की तरह दिखाई देता है, नदी में नदी की तरह दिखाई देता है। टब में टब की तरह दिखाई देता है। लेकिन जल तो एक ही है, उसी सागर का जल, लेकिन हमें भिन्न–भिन्न दिखाई दे रहा है।

जिसने उस निराकार के जल को जान लिया, सब के भीतर वही निराकार के जल रूपी परमात्मा विद्यमान है। वह निराकार का जल जिसने एक बार अपने भीतर जान लिया, उसने जान लिया कि सब के भीतर वही परमात्मा का जल निराकार रूप में है। फिर भिन्नता कहां है? भीतर से तो हम सब एक ही हैं। हम सब के भीतर का आकाश तो वही है।

एक बार की बात है कि एक बगीचे में बहुत सारे कद्दू पैदा हो गए। माली बहुत खुश हुआ उन कद्दुओं को देखकर कि एक बड़ी सी बेल है; उसमें ढेर सारे कद्दू फैले हुए हैं। कुछ छोटे कद्दू हैं, कुछ बड़े कद्दू हैं; कुछ और बड़े कद्दू हैं लेकिन उनमें आपस में विवाद छिड़ गया। बोले कौन ऊंचा कद्दू है, कौन नीचा कद्दू है, कौन ज्ञानी कद्दू है, कौन अज्ञानी कद्दू है, किसकी जाति ऊंची है, किसकी जाति नीची है? आपस में विवाद छिड़ गया।

बड़े कद्दू बोले हम ऊंची जात के, छोटे कद्दू बोले तुम कैसे ऊंची जात के हो सकते हो? आपस में बहुत विवाद छिड़ गया। विवाद और बढ़ गया, लड़ाई होने लगी। छोटे कद्दू बड़े कद्दुओं का झगड़ा, बड़े कद्दू छोटे कद्दुओं को मारने लगे; छोटे कद्दू बड़े कद्दुओं को मारने लगे। हल्ला मच गया, कोहराम मच गया।

दूर से माली ने आवाज सुनी। माली दौड़ता हुआ आया। अरे! कद्दुओं में लड़ाई हो गई, कैसे लड़ रहे हो कद्दू? डांटा, चुप रहो तुम लोग। सारे कद्दू चुप हो गए। उन्होंने बोला– कद्दू अब आंखें बंद करो तुम, कद्दुओं ने आंखें बंद कर लीं। अपने सिर पर हाथ ले जाओ। सब कद्दू अपने सिर पर हाथ ले गए। ऊपर एक चोटी पाई सब ने, एक बेल। अब माली ने कहा इसको फ़ॉलो करो। इसको सब फ़ॉलो करते हुए गए, सब एक ही जगह जाकर पहुंचे।

एक ही जड़ से वह बेल निकल रही थी जिसपे की इतने सारे कद्दू थे; देखने में लगते थे कि मेरी बेल अलग है, मैं अलग पेड़ का हूं, मेरी जाति ऊंची। लेकिन सब का उद्गम एक ही था। एक ही जड़ से सब पैदा हुए थे। सारा विवाद समाप्त हो गया, सारे कद्दुओं में सुलह हो गई। जिस दिन हम जानते हैं कि हम उस एक परमात्मा के पुत्र हैं, उस दिन सारा विवाद

समाप्त हो जाता है।

'जौगोत बेड़े जेतेर कौथा,
लोके गोउरौब कौरे जौथा–तौथा,
लालोन शे जेतेर फाता
बिकियेछे शात बाजारे।।'

जगत में जहां देखो जात–पात की बात है। उसी में लोग गौरव समझते हैं। लालन कहते हैं– मैंने जात झंडा सात बाजार बीच बेच दिया।

संत दरिया कहते हैं–

'जात हमारी ब्रह्म है, माता–पिता हैं राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम।।'

जहां से हम जन्मे हैं, वहीं हमें जाना है। वही हमारे वास्तविक जीवन का स्रोत है– ब्रह्म। हमारे माता और पिता वहीं है और इस बीच में, जन्म और मृत्यु के बीच में, हमने ये झगड़े खड़े कर लिए हैं। ये जाति का संस्कार जो है, मन के संस्कार हैं; शारीरिक परिवेश के संस्कार हैं। शरीर के पार हमें जाना है, मन से पार हमें जाना है; इसलिए संत जात–पात का विरोध करते हैं। ये सारे संस्कार मन के संस्कार हैं। ये शारीरिक मानसिक संस्कार हैं, हृदय के संस्कार हैं; हमें इन सब के पार जाना है। शरीर के पार, मन के पार, हृदय के पार, जहां परमात्मा विराजमान है। सभी संस्कारों के पार उस एक में लीन हो जाना है। उस निराकार ब्रह्म में, एक ओंकार सतनाम् में।

ब्रह्म को जाने बगैर कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिन हुए बिना कोई जैन नहीं होता। बौद्ध होने से संतुष्ट न हो जाना, बुद्ध होना है। ईसाई बनने से क्या होगा? ईसा मसीह बनो।

हरि ओम् तत्सत्! तत्वमसि श्वेतकेतु।

साधना या नियति को मानना?

'कौपालेर दोष कैनो दाओ भाई
आप्नीं कौरो शौकोल दिये कौपालेर दोहाई
कौपाल औदृष्टो जारनाम
मानुशो सृजौन कौरे तामाम
भाबिले शेई आलोक मोकाम
होईरे शौकोल साफाई।।
ज्ञानबुद्धि कौर्मेरी जोरे
केउ राजा केउ प्रोजानाम धौरे,
मिछे शौंश्कारे पोड़े
बौले कौपालेते नाइ।।
कौपाल–कौपाल कोरो ना कौखोनो,
एइ शौकोल मानुषेर सृजौन
बिनौय कोरे बोलछे लालोन
दृद्दू र बुद्धि नाई।।'

किस्मत को दोष क्यों देते हो भाई? तुम्हीं तो सकल करम किए फिरते हो और भाग्य को दोष देते हो! भाग्य, अदृष्ट जिसका नाम है; मानुष ने ही तो उसका सृजन किया है। उसी अलख मुकाम को अगर सदा याद करो, तभी अंतर की सफाई हो सकती है।

कर्म के जोर से ही कोई राजा और कोई प्रजा बनता है। मिथ्या संस्कार में पड़े रहते हैं और भाग्य को दोष देते हैं। दद्दू शाह इसलिए कहते हैं कि भाग्य–भाग्य मत कर भाई। ये सब मानुष ही सृजन करता है। अपनी साधना से तू हर मुकाम को पा सकता है।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर संत दद्दू शाह कहते हैं–

धर्म–जगत का प्राचीन प्रश्न है– साधना या नियति को मानना? आज इसी सवाल का जवाब, बाउल फकीर संत दद्दू शाह के इस प्यारे गीत में मिलेगा–

'कौपालेर दोष कैनो दाओ भाई।
आप्नी कौरो शौकोल दिये कौपालेर दोहाई।।'

अर्थात् किस्मत को दोष क्यों देते हो भाई? तुम्हीं तो सकल करम किए फिरते हो और भाग्य को दोष देते हो।

भगवान बुद्ध का वचन है कि यदि कोई दोष युक्त मन से बोलता है या कर्म करता है तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी का चक्का, खींचने वाले बैलों के पैर का। अगर हमने दोषयुक्त मन से किसी की बात की, भीतर अगर हम दुखी हैं, भीतर किसी वृत्ति की लहर है, उत्तेजना है, क्रोध है तो हम उस भावदशा में जो भी बोलेंगे, वो शब्द हमें दुख ही पैदा करवाने वाले हैं।

अगर हम किसी के ऊपर व्यंग्य करते हैं, अगर शिकायत भाव से कुछ कहते हैं तो वो हमें धन्यवाद भाव नहीं देगा; वो हम पे फूल नहीं बरसाएगा। वह भी प्रतिक्रिया करेगा, और दुख हम पैदा कर लेंगे अपने लिए।

हमने ही दुख के बीज बोए हैं। दोषयुक्त जब भीतर लहर हो और उस उठती हुई लहर के समय हम शांत बैठ जाएं, किसी प्रकार का बीज ना बोएं तो जीवन में दुख आ ही नहीं सकता।

ऐसे ही भगवान बुद्ध कहते हैं मन सभी प्रवृत्तियों का पूर्वगामी है। मन उसका प्रधान है। यदि कोई प्रसन्न मन से बोलता या कर्म करता है तो सुख उसका अनुसरण करता है। और याद रखना भीतर जब प्रसन्नता है, भीतर जब मस्ती और आनंद है, उस समय हमें क्रिया करनी है। उस समय हमें लोगों से संपर्क करना चाहिए और जो भी कर्म करना है या जो भी वाणी बोलनी है, उस समय बोलना है।

अगर हम सुखी मन से, प्रसन्न मन से कुछ भी बोलेंगे; एक सुखी व्यक्ति किसी को दुख नहीं दे सकता। एक आनंदित व्यक्ति किसी के जीवन में कांटे नहीं बो सकता और एक दुखी व्यक्ति किसी की राह में फूल नहीं बिछा सकता, ये याद रखना।

तो जिस समय हम प्रसन्न हैं, उस समय बीज बोने जैसे हैं, उस समय हम जो भी करेंगे, जो भी कर्म करेंगे उसका फल निश्चित रूप से आनंददायी होने वाला है। प्रसन्न मन से जो बोला जाता है, या कर्म किया जाता है, सुख उसका अनुसरण करता है।

वैसे ही जैसे कभी साथ ना छोड़ने वाली छाया। जैसे हम चलते हैं और छाया हमारे साथ चलती है, ठीक ऐसे ही प्रसन्न व्यक्ति जब चलता है, प्रसन्न व्यक्ति जब कर्म करता है तो जीवन में आनंद ही आनंद उसे फॉलो करता है।

हम सुखी हैं या दुखी हैं, अपने ही कारण हैं। लोग दूसरे पर दोष देते हैं, दूसरों पर दोष मढ़ते हैं, भाग्य को दोष देते हैं। अल्टिमेटली परमात्मा को ही कोस रहे हैं। लेकिन जब हमें पता चल जाए कि हम अपने दुख के निर्माता हैं, और हम अपने सुख के बीज बोने वाले हैं, सुख के निर्माता भी हम स्वयं हैं। तीर जब दूसरे पर है हम आध्यात्मिक नहीं हैं, धार्मिक नहीं हैं। तीर जिस दिन स्वयं पर आ

गया, हम अपने भाग्य विधाता हैं, हम अपने सुख के निर्माता हैं, उस दिन एक धार्मिक क्रांति हो जाती है। यही है असली वास्तविक धार्मिक क्रांति।

'हम अपना लिखते भाग्य स्वयं, पर समय बीत जब जाता है।
खुद का ही लिखा ना पढ़ पाते, अक्षर धुंधला हो जाता है।।
इसलिए नियति को मत मानो, अपना हस्ताक्षर पहचानो।
दायित्वम् शरणं गच्छामि, भज ओशो शरणं गच्छामि।।'

क्या दायित्व है हमारा? दायित्व है, जब भी हमारे भीतर शांति हो उस समय कर्म करो। और जब भीतर अशांति है उस समय शांत बैठ जाओ। उस समय कोई कर्म नहीं करो। और हम अपने भाग्य को सुनहरा बना लेंगे।

'हम जो भी करते कर्म यहां, फल पीछे-पीछे आता है।
पुरुषार्थ कालक्रम में पक कर, प्रारब्ध अटल बन जाता है।।
है रची तुम्हीं ने आत्मकथा, मत कहो विधाता ने लिखा।
पुरूषार्थम् शरणं गच्छामि, भज ओशो शरणं गच्छामि।।'

'कौपाल औदृष्टो जारनाम
मानुशे सृजौन कौरे तामाम
भाबिले शेई आलोक मोकाम
होईरे शौकोल साफाई।।'

भाग्य, अदृष्ट जिसका नाम है, मानुष ने ही तो उसका सृजन किया है। उसी अलख मुकाम को अगर सदा याद करो तभी अंतर की सफाई हो सकती है।

बस एक बात याद रखना कि 'हम अपना लिखते भाग्य स्वयं'--हमने ही अपना भाग्य लिखा है। तो भीतर निरंतर जो बीज हम बोते हैं, उसके प्रति अगर हम सजग हो जाएंगे तो भीतर की सफाई सदा-सदा होती रहेगी।

एक रशियन कहानी है, दोस्तोवस्की की लिखी हुई है--'क्राइम-एंड-पनिशमेंट'। एक वृद्ध महिला है जो कि सदा-सदा ब्याज लेती है, ब्याज पर लोगों को पैसा देती है, गिरवी रखती है उनकी चीजों को। बहुत गरीब-गरीब लोग आते हैं और उससे पैसा ले जाते हैं और जब नहीं चुका पाते तो सब चीजें भी उनकी रख लेती है और इस तरीके से वो गरीबों का खून चूसती रहती।

सामने उसके घर के, एक हॉस्टल था जिसमें एक लड़का रहता था, वो लड़का निरंतर देखता था, उसके घर से दिखाई देता था। उसकी खिड़की से वह देखता था कि लोग कैसे आते हैं? और आंखों में जार-जार आंसू हैं, रोते हैं, गिड़गिड़ाते हैं लेकिन बुढ़िया इतनी निर्दयी और कठोर है कि उनके पैसों को लूटती जाती है। नाहक उनसे पैसे खींचती जाती है। उसे हमेशा दया आती। और वो सोचता है कि इतने गरीब और दुखी लोग हैं, अगर इस बुढ़िया की मृत्यु हो जाए तो इन सब का भला हो जाएगा। इनके जीवन में जो गरीबी है ये खतम हो जाएगी।

ये विचार मात्र था, इसने तो सोचा भी नहीं था। बार-बार लड़का देखता है इन घटनाओं को, बार-बार फिर ये विचार जन्मने लगता। बार-बार जब भी देखता किसी दुखी महिला को या किसी दुखी पुरुष को वृद्ध महिला के पास, तो उसके मन में फिर से ख्याल आ जाता था।

एक बार हुआ क्या कि लड़के के पास पैसों की कमी पड़ गई, उसका मनी–ऑर्डर नहीं आता और उसको फीस देनी थी कॉलेज की, उसके पास पैसे नहीं थे। उसे मजबूरन जाना पड़ा उस वृद्ध महिला के पास। शाम का समय हो गया है, बिल्कुल अंधेरा होने को है।

लड़का वृद्ध महिला के पास जाता है, कहता है कि मुझे पैसे दे दो। वृद्ध महिला गौर से देखती है और कहती है कि तुम्हें कैसे पैसे दे दूं? तुम्हारे पास कुछ है देने को?

उसके पास एक घड़ी होती है, वो बुढ़ी को देता है, कहता है कि आप इसे रख लो और मुझे कुछ समय के लिए पैसे दे दो उधार।

बुढ़ी बहुत ही कंजूस है, वह सोचती है क्या पता ये लड़का जो घड़ी दे रहा है, ये ठीक है, चलती है या नहीं; उसे देखने के लिए वो खिड़की के पास जाती है। अंधेरा हो चुका है, वो बत्ती भी नहीं जलाती थी, इतनी कंजूस कि घर में बल्ब जलाना भी उसे पसंद नहीं था। तो बाहर के प्रकाश में खिड़की से झांक कर देखती है घड़ी चल रही या नहीं।

इस युवक ने अचानक उस वृद्धा को धक्का दे दिया। वह खिड़की से नीचे गिर गई। यद्यपि सांझ है, किसी ने कुछ नहीं देखा। वो तो घबड़ा गया कि ये क्या हो गया? भागता हुआ आता है और अब अपनी रक्षा में लग जाता है कि मैंने कुछ नहीं किया है। मैंने कुछ नहीं किया है, ये कैसे हो गया मुझसे? उसे बहुत डर लगने लगा, अब वह निरंतर इस ख्याल से ग्रसित रहने लगा।

उसे तो पता भी नहीं था कि एक ख्याल कैसे कर्म बन जाता है? ऐसी ही हमारी जीवन की कहानी है। जब हमारे जीवन में कोई पहला विचार उठता है, अगर हमने उसी समय उस बीज को दग्ध नहीं किया तो निश्चित रूप से एक दिन कर्म बन जाएगा और हमें पता भी नहीं चलेगा। अगर पकड़ना है तो बीज रूप में पकड़ना, तभी पकड़ना होगा। हमने जिस तरह के बीज बोए हैं, वैसा ही हमारा भाग्य हो जाता है।

अगर हमने अपराध के बीज बोए हैं तो जीवन में एक दिन हमसे अपराध हो जाता है; हमें पता ही नहीं चलता हम तो विचार ही कर रहे हैं, या कि सुन ही रहे हैं अपराध के बारे में, या हम पढ़ ही रहे हैं या सीरियल ही देख रहे हैं। लेकिन किस दिन परिणाम आ जाएगा, हमें पता भी नहीं चलेगा।

'ज्ञानबुद्धि कौर्मेरी जोरे
केउ राजा केउ प्रोजानाम धौरे,
मिछे शौंश्कारे पोड़े
बौले कौपालेते नाइ।।'

संत दद्दू शाह कहते हैं– कर्म के जोर से ही कोई राजा और प्रजा बनता है। मिथ्या संस्कार में पड़े रहते हैं और भाग्य को दोष देते हैं।

'जग ने है कितना दिया तुझे।
कुछ तुम भी जग को दान करो।।
जो भी हो, उससे राजी हो।
साक्षी रहकर नित ध्यान करो।।
जो साक्षी और तथाता है, वह अपना भाग्य विधाता है।
सौभाग्यम् शरणं गच्छामि। भज ओशो शरणं गच्छामि।'

साक्षी और तथाता जिसके जीवन में आ गया, उसने अपने भाग्य का निर्माण कर लिया। वह सदा भाग्यवान हो गया। निष्काम कर्मयोग की व्याख्या भारत में भाग्यवाद के रूप में हो गई। निष्काम कर्मयोग का अर्थ था कि अकर्ता भाव से कर्म करो। लोगों ने कर्म करना ही छोड़ दिया। कर्म तो करना था, कर्म का उद्देश्य भी होना था लेकिन जब फल आ जाए तो फल की चिंता नहीं करना, फल की चिंता परमात्मा के हाथ में छोड़ दो। कर्म हमें करना है, उद्देश्य सहित कर्म करना है। अगर उद्देश्य नहीं होगा तो कर्म करने की प्रेरणा भी नहीं होगी।

तो उद्देश्य सहित कर्म करना है, उद्देश्य पैदा करो, कर्म करो लेकिन फल की चिंता परमात्मा पर छोड़ दो। परमात्मा ही फल देता है।

लोगों ने कर्म करना ही छोड़ दिया। जब परमात्मा ही फल देता है तो फिर हम कर्म ही क्यों करें? फल ऐसे ही आ जाएंगे और इस तरह भारत में आलस्य छा गया और भाग्यवाद ने भारत की गरीबी का भाग्य लिख दिया। कर्म के जोर से ही कोई राजा और प्रजा होता है। अगर हम कर्म करेंगे तो निश्चित रूप जीवन में परिणाम आएंगे, और अगर हम आलसी और काहिल हो जाएंगे तो जीवन में शोला नहीं बरस सकता। उसके लिए मेहनत करनी होगी।

'कौपाल–कौपाल कोरो ना कौखोनो,
एइ शौकोल मानुषेर सृजौन
बिंनौय कोरे बोलछे लालोन
दद्दू र बुद्धि नाई।।'

दद्दू शाह कहते हैं भाग्य–भाग्य मत कर भाई। ये सब मानुष ही सृजन करता है। अपनी साधना से तू हर मुकाम को पास करता है। साधना हमें अपनी मंज़िल तक पहुंचा देती है।

एक बड़ी प्यारी कहानी है, सुनो– एक ईश्वर प्रेमी है और बहुत गहरी साधना करता है। निरंतर ध्यान करता है, पूज़न करता है, आराधना करता है। एक दिन उसे सपना आता है, जैसे कोई उसे कह रहा है, कोई महात्मा आते हैं उसके सपने में और कहते हैं– ईश्वर तेरे भाग्य में नहीं है। ईश्वर का दरवाजा तेरे जीवन में कभी नहीं खुलने वाला, तू व्यर्थ ही मेहनत कर रहा है, तू व्यर्थ ही साधना कर रहा है। यह बात उसने अपने दोस्तों से बताई। लेकिन लोगों ने देखा कि उसने साधना फिर भी नहीं छोड़ी, भक्ति फिर भी नहीं छोड़ी, पूजा फिर भी नहीं छोड़ी, ध्यान फिर भी नहीं छोड़ा। तो लोगों ने ये पूछा कि तुमने ये सपना बताया कि परमात्मा तुम्हारे जीवन के लिए है ही नहीं। परमात्मा तुम्हें मिलने वाला नहीं फिर क्यों साधना करते हो? तो ये साधक कहता है कि ये मेरा आनंद है, साधना मात्र मेरा आनंद है और परमात्मा के दरवाजे के सिवाय मेरे जीवन में और है ही क्या? परमात्मा के सिवाय जाऊं कहां? तो मुझे तो मात्र साधना करने में ही आनंद आता है। और एक दिन परमात्मा आता है और उस रात में परमात्मा ने उसे गले लगा लिया, उसके जीवन में परमात्मा बरस गया।

जब हमारे भीतर एक ही इच्छा रह जाती है, वह एक इच्छा अभिप्सा बन जाती है और अभिप्सा की शक्ति भागवत् चैतन्य में प्रवेश करवा देती है।

आएं, अब हम परम गुरु ओशो को सुनते हैं भाग्यवाद पर–

'दुनिया में बड़े–बड़े अपूर्व सिद्धांत आदमियों के हाथ में पड़कर खराब हो

गए। आदमी के हाथ में ठीक सिद्धांत भी खराब हो जाता है। और ठीक आदमी के हाथ में सिद्धांत भी ठीक हो जाता है। इसे स्मरण रखना। सब कुछ आदमी पर निर्भर है।

अब यह कितना अपूर्व सिद्धांत था भाग्य का कि जो कर रहा है परमात्मा कर रहा है। लेकिन आदमियों के हाथ में पड़ गया। यह अपूर्व सिद्धांत आदमियों के हाथ में पड़कर, पूर्व की पूरी की पूरी परेशानी का कारण बन गया। अब हमें कुछ करना नहीं है। अब तो जो कुछ हो रहा है ठीक है। दुःख है, दारिद्र्य है, बीमारी है, रोग है—सब ठीक है। एक तरह की जड़ता पैदा हो गई।

भाग्यवाद ने पूर्व को मार डाला— बुरी तरह मार डाला। कारणों से ऐसा हुआ। असली भाग्यवाद का अर्थ यह नहीं होता कि हमें कुछ नहीं करना है। असली भाग्यवाद का अर्थ यह होता है कि हमसे परमात्मा जो करवाए वह करना। करवाने वाला वह है, करने वाले हम हैं। करने वाले अब भी हम हैं। याद रखना, पुरुषार्थी भी करता है; लेकिन पुरुषार्थी कहता है, मैं कर रहा हूं। और भाग्यवादी भी करता है; लेकिन भाग्यवादी कहता है, परमात्मा करवा रहा है। इतना ही फर्क है। करने में जरा फर्क नहीं पड़ता। सच तो यह है कि पुरुषार्थी जल्दी थक जाएगा। उसकी ऊर्जा कितनी, अहंकार की क्षमता कितनी। भाग्यवादी कभी नहीं थकेगा। परमात्मा की ऊर्जा से जो जी रहा है, वही करवा रहा है; उसके थकने के कारण कहां हैं।

अगर पूर्व के देशों ने भाग्यवाद को ठीक कारणों से पकड़ा होता तो पश्चिम बहुत पीछे होता। पश्चिम तो अहंकार से जी रहा है। पश्चिम अहंकार से इतना संपन्न हो गया और हम परमात्मा के साथ जुड़कर न हो पाए। जरूर कहीं कुछ भूल हो गई है, गहरी भूल हो गई है। हम जुड़े ही नहीं। हमने भाग्य को आलस्य बना लिया। समर्पण को हम समझे कि बस आलम हो गया; मंदिर में सिर रख आए, बात खत्म हो गई।

समर्पण है पूरे जीवन की शैली का रूपांतरण। समर्पण का अर्थ होता है— अब तू है, मैं नहीं हूं। अब तू जो करवाए वही मैं करूंगा। यही तो गीता की पूरी की पूरी भित्ति है। अर्जुन बड़ा पाश्चात्य बुद्धि का आदमी रहा होगा। वह यही कह रहा है कि मैं काटूं, मैं मारूं, इस युद्ध में मैं हत्या करूं, हिंसा करूं, मैं ऐसे बुरे काम करूं—किसलिए? मैं जंगल चला जाऊंगा, मैं सब छोड़ दूंगा। मैं संन्यस्त हुआ जाता हूं।

और कृष्ण उसे खींच—खींचकर, समझा—समझा कर वापस ला रहे हैं। और कृष्ण कह रहे हैं कि तू एक भ्रांति छोड़ दे कि तू करने वाला है। करने वाला परमात्मा है।'

फिर से दोहरा दूं, धर्म–जगत का प्राचीन, दुरूह प्रश्न है– साधना या नियति को मानना? इस विषय में जरा सा भी भ्रांति शेष रह गई तो जिंदगी व्यर्थ चली जाती है। सावधान! पहला कदम गलत दिशा में उठ गया तो फिर मंजिल कभी नहीं आती है।

हरि ओम् तत्सत्!

अनाक्षर में एकाक्षर को जानो

‘हौओ ना ज्ञात बीजेर तौत्तो, औब्यौक्तो रूप निराकारे रूप निराकार, शौरूप शाकार कौहे शाधु ग्रोन्थाकारे।। शौरूप शाकार बौर्तोमाने, रूप निराकार आत्तोज्ञाने। बूझबी नित्तो तौत्तो जेने बौशोत कौरे रूप नौगोरे।।
रूप–नौगोरेर रूप शायोरे आत्मोबीज भाषछे नींरे।
नित्तोतौत्तो आत्मो जोरे बूझ शाधु शौंगो कोरे।।
शेइ बीज हदौय–खेत्रे बौपोन होले दीक्खाशूत्रे।
निराकार हौय औज्ञाते, ज्ञात होलेरौय शाकारे।।
गोसाईं नौरोहोरी रौटे, नामे देहोजन्मो बौटे। ओनुरागी बूझ ना घौटे ऐकाक्खोर औनाक्खोरे।।’

उस परम बीज तत्व को अव्यक्त निराकार में जानो। रूप जिसका निराकार है, स्वरूप उसका साकार है। साधु–संतों ने, और सभी ग्रंथों में भी यही बात कही गई है। स्वरूप साकार जिसका वर्तमान में और आत्मज्ञान में वो निराकार है। उस नित्य परम तत्व को रूप के भाव नगर में ही जान पाओगे।

रूप के नगर में, रूप के सागर में वो आत्मबीज भाष्यमान है, तैरता रहता है और साधु संग में ही उस परमतत्व को आत्मबीज को जानना होता है। हृदय क्षेत्र में वहीं बीज दीक्षा सूत्र से बोया जाता है। अज्ञात में वहीं बीज निराकार स्वरूप है और ज्ञात में साकार स्वरूप है।

गोसाईं नरहरि कहते हैं– नाम ज्ञान के लिए ही इस देह का जन्म है। अनुरागी जन इसी घट में, अनाक्षर में, उस परम एकाक्षर को जान लेते हैं।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर गोसाईं नरहरि कहते हैं–

समस्त साधनाओं का सारसूत्र है– अनेक में छिपे एक तत्व को खोजो। क्षणभंगुर में शाश्वत को पहचानो। अनाक्षर में एकाक्षर को जानो। बाउल फकीर गोसाईं नरहरि इसी रहस्यमय सूत्र को गाकर कहते हैं–

'हौओ ना ज्ञात बीजेर तौत्तो, औब्यौक्तो रूप निराकारे

रूप निराकार, शौरूप शाकार कौहे शाधु ग्रोन्थाकारे।।'

उस परम बीज तत्व को अव्यक्त निराकार में जानो। रूप जिसका निराकार है, स्वरूप साकार। सकल साधु–संतों ने और सभी ग्रंथों में भी यही बात कही गई है।

परम बीज परमात्मा को कह रहे हैं। निराकार में उसे जानो। यह जो सारा अस्तित्व है, यह सारा जगत, निराकार से उत्पत्ति हुई है इसकी। शून्य से पैदा हुआ है यह जगत। सारे आकार निराकार से निकलते हैं।

जैसे एक पेड़ है; बीज से पेड़ पैदा होता है लेकिन अगर हम बीज में खोजें, काटें–छाटें, उसे देखें की पेड़ कहां छिपा है? तो पेड़ दिखाई नहीं देगा बीज के भीतर। लेकिन फिर भी बीज से ही आता है पेड़। बीज में पेड़ का ब्लू–प्रिंट छिपा हुआ है कि कैसा पेड़ होगा? मीठा पेड़ होगा या नीम का पेड़ होगा, यह ब्लू–प्रिंट छिपा है इसमें। लेकिन जब तक हम उस बीज को भूमि में नहीं दबाएंगे, उसका अंकुरण नहीं होगा तो उसमें से वृक्ष नहीं निकलेगा। और वृक्ष दिखाई नहीं देगा बीज में, मगर वृक्ष तो आता है बीज से। वृक्ष का जो जीवन है, वह तो निराकार से ही आता है लेकिन उसकी जो संरचना है; वह जो आयोजन है, उसका ब्लू–प्रिंट, उसका नक्शा उस बीज में मौजूद है, उसके माध्यम से आता हुआ दिखाई देता है।

जैसे कोई बच्चा है अपने माता–पिता से पैदा होता है। माता–पिता ने ब्लू–प्रिंट दिया है कि बच्चे का रंग कैसा होगा; उसके बाल कैसे होंगे; उसकी बुद्धि कैसी होगी? यह ब्लू–प्रिंट दिया है माता–पिता ने। लेकिन उस बच्चे का जो जीवन है वह तो निराकार से आता है; वह तो शून्य से आता है।

ऐसे ही यह सारा जगत उस शून्य से पैदा हो रहा है। अगर परमात्मा को जानना है तो हमें उस शून्य में उतरना होगा, उस निराकार में पैठ रखनी होगी, वहां जाकर उस परम बीज तत्व को, उस परमात्मा की अनुभूति को महसूस किया जा सकता है। उस परमात्मा के अनुभव को जाना जाता है।

इस जीवन में भी अगर हम देखें तो चेतना हमें दिखाई नहीं देती, हमारी आत्मा हमें दिखाई नहीं देती। चेतना निराकार है। चेतना में संकल्पना उठी, एक इच्छा जागृत होती है; उसके बाद भावना पैदा होती है। भावना जब पैदा हुई तो फिर उससे विचार बनें, विचार से फिर कर्म बनते हैं, कर्मणा। और फिर जब हम कर्म करते हैं तो फिर प्रतिकर्म भी आते हैं।

अगर हमें जागना है, अगर हमें पकड़ना है, तो पहले कदम पर, जब पहली बार एक इच्छा जागृत हुई, वहीं पर हमें पकड़ना होगा; उस तत्व को तुरंत ही पकड़ना होगा। अगर वहां हमने नहीं पकड़ा तो फिर पकड़ना मुश्किल। बीज को ही अगर हमने नहीं पकड़ा तो फिर बीज का अंकुर आ गया और पेड़ बन गया। फिर तो मुश्किल है। बात जटिल हो जाएगी।

जैसे सब ने हीं सुना होगा कि नील नदी का जो उद्गम है, उस उद्गम पर एक मिनट में केवल तीन बूंद पानी गिरता है। बीस सेकेंड में एक बूंद पानी गिर रहा है। इतनी धीमी गति है और आगे चलकर वहीं इतनी विराट नदी बन जाती है। इन तीन बूंदों को कोई बच्चा भी एक अंगूठा लगाकर रोक सकता है। लेकिन अगर वहां नहीं रोका है, तो आगे जाकर विराट नदी का रूप ले लिया है।

ऐसे ही जब हमारे भीतर कोई विचार पैदा होता है, तुरंत उसे रोका जा सकता है। अगर हमने वहां थोड़ी ढील दे दी, अगर हमने नजरअंदाज कर दिया तो अब ये विचार कर्म बनेगा और फिर प्रतिकर्म भी होगा। अब चीजें फैलने लगेंगी। अब पकड़ना मुश्किल है। क्योंकि ऐसे विचार शुभ भी हो सकते हैं, अशुभ भी हो सकते हैं।

उपनिषद् में कहा गया है– संभूति ब्रह्म और असंभूति ब्रह्म। प्रगट ब्रह्म और अप्रगट ब्रह्म। जिसको हम कह लें लौकिक और अलौकिक।

लौकिक ब्रह्म– यह जो जगत है। यह जो दिखाई दे रहा है, यह जो सारे आकार...ये पेड़, ये पौधे, चांद, तारे, ये पक्षी, ये फूल। यह है लौकिक ब्रह्म।

अलौकिक ब्रह्म– जब हम अपने भीतर जाते हैं तो भीतर प्रकाश के रूप में हम पाते हैं उसे। नाद के रूप में हम उसे पाते हैं, गंध के रूप में उसकी मौजूदगी को पाते हैं, आनंद के रूप में उसकी मौजूदगी को पाते हैं, प्रेम के रूप में उसकी मौजूदगी को पाते हैं। ये सारे अलौकिक आयामों का प्रयोग **ओशो फ्रेगरेंस** में किया जाता है और एक–एक समाधि कार्यक्रमों में इन आयामों को अनुभव में उतारा जाता है।

'शौरूप शाकार बौर्तोमाने, रूप निराकार आत्तोझाने।

बूझबी नित्तो तौत्तो जेने बौशोत कौरे रूप नौगोरे।।'

स्वरूप साकार जिसका वर्तमान में और आत्मज्ञान में वह निराकार है। उस नित्य परम तत्व को रूप के भाव नगर में ही जान पाओगे। परमात्मा हर जगह मौजूद है। जर्रे–जर्रे में प्रतिपल मौजूद है। अनेक–अनेक रंगों में मौजूद है, देखने वाली आंख चाहिए...निर्मल आंख। और यह देखने वाली आंख कब पैदा होती है? ––श्रद्धा से, जब हम श्रद्धा भरी आंख से इस जगत को देखते हैं, थोड़ा अहंकार गलाकर हम देखते हैं, तब हमें परमात्मा के दर्शन, उस निराकार स्वरूप के दर्शन, इसी आकार में हो जाते हैं। सद्गुरु में हमें उसके दर्शन होते हैं।

सद्गुरु और साधारण मनुष्य में क्या अंतर है? सद्गुरु का आकार भी हमारे जैसा है। एक सामान्य मनुष्य भी उसी आकार में है, सद्गुरु भी उसी आकार में है। लेकिन एक

सामान्य मनुष्य जब अंदर जाता है, अपने भीतर जाता है, तो वह अहंकार को पाता है। अपने भीतर निराकार में वह अपने आप को अहंकार के रूप में पकड़ता है। और जो सद्गुरु है, आकार में होते हुए भी वो जान रहा है कि उसके भीतर वह निराकार तत्व है; उसके भीतर वह निराकार तत्व प्रगाढ़ हो गया है। और अपने भीतर जब वह जाता है और बाहर भी जब रहता है, उसे निरंतर इस बात का अहसास है कि वह निराकार स्वरूप है। बाहर से आकार है, भीतर से उसका निराकार स्वरूप है। उसके निराकार ने ये आकार लिया है। और ऐसा व्यक्ति जो अपने भीतर उस ओंकार को जानता है, उस निरंकार में रमता है, निराकार से जिसका तादात्म्य है। ऐसा व्यक्ति सद्गुरु है, ऐसा व्यक्ति अवतार है।

आएं, परमगुरु ओशो क्या कहते हैं हम सुनें–

'वेद कहते हैं, परमात्मा अकेला था। एकाकीपन उसे खला, अकेलेपन से ऊबा। सोचा उसने, बहुत हो जाऊं। फिर उसने बहुत रूप धरे। ऐसे संसार निर्मित हुआ। सृष्टि की यह कथा है।

स एकाकी न रेमे, एकोऽहं बहुस्याम्!

अकेला वह ऊबने लगा। सोचा बहुत रूपों को सृजूं, बहुत रूपों में रमूं।

ब्राह्मण संस्कृति इसी सूत्र का विस्तार है––परमात्मा का अवतरण, परमात्मा का फैलाव। ब्रह्म शब्द का यही अर्थ है– जो फैलता चला जाए, जो बहुत रूप धरे, जो बहुत लीला करे, जो अनेक–अनेक ढंगों से अभिव्यक्त हो, सागर जैसे अनंत–अनंत लहरों में विभाजित हो जाए।

एक से अनेक बनता है, एक अनेक में उत्सव मनाता है। एक अनेक में डूबता है, स्वप्न देखता है। माया सर्जित होती है।

संसार परमात्मा का स्वप्न है। संसार परमात्मा के गहन में उठी विचार की तरंगें हैं।

ब्राह्मण–संस्कृति ने परमात्मा के इस फैलाव के अनूठे गीत गाए। उससे भक्ति–शास्त्र का जन्म हुआ। भक्ति–शास्त्र का अर्थ है– परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप, अहोभाग्य है। परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप परम आनंद है। इसलिए भक्ति में रस है, फैलाव है। एक शब्द में कहें तो महावीर के बचपन का जो नाम है, वह ब्राह्मण–संस्कृति का सूचक है। महावीर के बचपन का नाम था, वर्धमान––जो फैले, जो विकासमान हो। फिर महावीर को दूसरी ऊर्जा का, दूसरे अनुभव का, दूसरे साक्षात का सूत्रपात हुआ। वह ठीक वेद से उलटा है।

वेद कहते हैं— वह अकेला था, ऊबा, उसने बहुत को रचा। महावीर बहुत से ऊब गए, भीड़ से थक गए और उन्होंने चाहा, अकेला हो जाऊं। परमात्मा का उतरना है संसार में, फैलना। और महावीर का लौटना वापस परमात्मा में। इसलिए श्रमण—संस्कृति के पास अवतार जैसा कोई शब्द नहीं है। तीर्थंकर! अवतार का अर्थ है— परमात्मा उतरे, अवतरित हो। तीर्थंकर का अर्थ है— उस पार जाए, इस पार को छोड़े। अवतार का अर्थ है— उस पार से इस पार आए। तीर्थंकर का अर्थ है— घाट बनाए इस पार से उस पार जाने का। संसार कैसे तिरोहित हो जाए, स्वप्न कैसे बंद हो, भीड़ कैसे विदा हो; फिर हम अकेले कैसे हो जाएं——वही श्रमण—संस्कृति का आधार है। वर्धमान कैसे महावीर बने, फैलाव कैसे रुके, क्योंकि जो फैलता चला जा रहा है उसका कोई अंत नहीं है। वह पसारा बड़ा है। वह कहीं समाप्त न होगा। स्वप्न फैलते ही चले जाएंगे, फैलते ही चले जाएंगे——और हम उनमें खोते ही चले जाएंगे। जागना होगा।

भक्ति—शास्त्र ने परमात्मा के इस संसार के अनेक—अनेक रूपों के गीत गाए, महावीर ने इस फैलती हुई ऊर्जा से संघर्ष किया—इसलिए 'महावीर' नाम—लड़े, धारा के उलटे बहे। गंगा बहती है गंगोत्री से गंगासागर तक—ऐसी ब्राह्मण—संस्कृति है। ब्राह्मण—संस्कृति का सूत्र है— समर्पण, छोड़ दो उसके हाथ में, जहां वह जा रहा है, चले चलो; भरोसा करो; शरणागति।'

बाउल फकीर गोसाई नरहरि कहते हैं–

'रूप–नौगोरेर रूप शायोरे आत्मोबीज भाषछे नींरे।

नित्तोतौत्तो आत्मो जोरे बूझ शाधु शौंगो कोरे।।'

रूप के नगर में, रूप के सागर में वो आत्मबीज भाष्यमान है, तैरता रहता है और साधु संध में हीं उस परमतत्व को आत्मबीज को जानना होता है।

बाउल रूप किसे कहते हैं? बाउल की भाषा में रूप यानी शरीर और मन। यह जो शरीर है और मन है। इसे हीं वे रूप कहते हैं। और अरूप हमारे भीतर जो निराकार है, वे उसे अरूप कहते हैं। तीन चीजें हैं बाउल में। रूप, अरूप और स्वरूप। रूप हो गया हमारा शरीर। और मन अरूप हो गया, हमारे भीतर का निराकार। और स्वरूप हमारा चैतन्य, आत्मा। रूप, अरूप, स्वरूप इन तीनों को जानना। कैसे जाने हम? साधु संग में, इन्हें जाना जाता है। संतो के पास बैठकर इसकी प्रतीति होती है।

जिन चरणों में जाकर, जिस माहौल में जाकर हमारे भीतर शांति उतरने लगे, हमारे भीतर शून्य उतरने लगे। वहां बार–बार जाना, वहां बार–बार बैठना और फिर एक दिन ऐसे बैठते–बैठते हमें सद्गुरु मिल जाएगा और सद्गुरु के सान्निाध्य में हम अपने स्वरूप को

जान पाएंगे।

'शेइ बीज हदौय–खेत्रे बौपोन होले दीक्खाशूत्रे।

निराकार हौय औज्ञाते, ज्ञात होलेरौय शाकारे।।'

हृदय में वहीं बीज दीक्षा सूत्र से बोया जाता है। अज्ञात में वहीं बीज निराकार स्वरूप है और ज्ञात में साकार स्वरूप है।

दीक्षासूत्र– जब कोई शिष्य गुरु से दीक्षा लेता है तो शिष्य उसके हृदय में आत्मज्ञान के बीज बो रहा है। सूफी जिसे सीना–ब–सीना कहते हैं। गुरु 'नाम' का ज्ञान देता है। नाम दान लेने के बाद एक दिन शिष्य को अनुभूति होतीं है कि उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? यह बीज दिखाई नहीं देता, अव्यक्त है यह बीज। लेकिन एक दिन वहीं बीज जो कि दिखाई नहीं दे रहा, प्रेम के रूप में फैल जाता है, होश के रूप में फैल जाता है, बोध के रूप में फैल जाता है। और एक दिन आत्मज्ञान हो जाता है।

एक मैडम ब्लाट्स्की हुई हैं जो कि जब भी यात्रा करतीं, सारी यात्राओं में, रेल–यात्राओं में अपने साथ एक थैली रखा करती थीं। और जब भी रेल रूका करती तो वे थैली से कुछ मुट्ठी भर बीज निकालतीं और हर स्टेशन पर डालतीं जातीं।

किसी ने उनसे पूछा कि आप इतने सारे बीज हर बार फेंकतीं हैं, इतनी मेहनत करतीं हैं; आप को इससे क्या लाभ होगा? आप तो जान भी नहीं पाएंगी कौन से बीज उगे? क्या हुआ? आप क्यों इतना श्रम करतीं हैं?

तो उन्होंने जवाब दिया कि आज जितने सारे हम पेड़ देख रहे हैं, उन पेड़ों के बीज किसी न किसी ने फेंके होंगे। आज उन पेड़ों का आनंद हम ले रहे हैं। यद्यपि हम न देख पाएं उन पेड़ों को लेकिन इन बीजों को मैं निरंतर फेंकती जाती हूं, ताकि आने वाले लोग इन पेडों का आनंद ले सके।

ऐसे ही सद्गुरु भी, इतने सारे लोगों के हृदयों में बीज फेंकता है; इस आशा में कि एक न एक दिन आत्मज्ञान रूपी पेड़ उनके जीवन में उगेगा; जिसमें ज्ञान के, बोध के, प्रेम के फल लगेंगे।

बस, एक बात स्मरण रखना– समस्त साधनाओं का सारसूत्र है कि अनेक में छिपे एक तत्व की खोज की जाए। क्षणभंगुर में शाश्वत की पहचान हो। अनाक्षर में एकाक्षर को जानो। वह बीजाक्षर है ओम्। आज का प्रवचन यहीं पूरा हुआ।

हरि ओम् तत्सत्!

प्रीतम की पदचाप सुनो

'मेले ताय खूँजले आपोनार देहो–मोन्दीरे,
ओ शेई जौगोतपिता कोच्छे कौथा
ओति मिष्टो मोधुर शौरे।।
लूकोचुरी जाने बिलौक्खोन, केउ पाय ना दौरोशौन।
आकारशून्यो जौगोतमान्यो जौगोतेर जींबोन।
शौहोस्त्रो दौले स्थिति, नाभी पौद्दे गौतायाति।
ताके शौहोजे जाय ना धौरा, ओशे पौलोके प्रोलौय कौरे।।
आपोन तौत्तो कौरो आप्नीं, होये चेतौन दिबा–रौजोनीं।
तौबे जोदीं कृपा कौरे शेई गुनोमोनीं।
तारे धोरबार आशा कोरो ना रे मोन
शे जे औधोर–निधि नाम धौरे।।
मोने प्राने होय जोदी बिश्शाश, तौबे कौरो ताहार आश।
कौर्मो छाड़ा तौर्को होले शौकोल कार्जोनाश
जादूबिन्दू ढेंटा बुद्धि मोटा, शे कि कूबीर के चिन्ते पारे।।'

तुम्हारे देह मंदिर में ही वह जगत पिता समाए हैं, जो अत्यंत मधुर स्वर में तुम्हें सदा पुकार रहे हैं। वो छुपा–छुपी का खेल अच्छी तरह जानते हैं, तभी तो कोई सहज ही उनके दर्शन नहीं पाता, आकार जिनका शून्य है और वही इस जगत के मान्य हैं, जीवन हैं।

सहस्रार दल में वो स्थित है और नाभि पदम् में उनकी गति है; उसे अति सहज जाना जा सकता है, लेकिन वो पलक झपकते ही प्रलय ला देता है।

आत्मतत्व को स्वयं में जानो। जहाँ सदा चैतन्यावस्था है, दिवा–निशी का, दिन–रात का कोई भेद नहीं है। अगर वो गुणमणी गुरु कृपा करें तो उस अधर–निधि का ज्ञान सहज ही मिल जाता है। उसे बाँधने का प्रयास नहीं करना। गुणमणी गुरु ही, उस अधर निधि नाम से परिचय करवाते हैं।

मन प्राण में अगर विश्वास है तभी उसकी आशा करना, नहीं तो व्यर्थ तर्क जाल में सकल नाश हो जाएगा। संत जादू बिन्दु कहते हैं बुद्धि मोटा मत करो, तभी नाम धन कुबेर को

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर जादू बिन्दु कहते हैं–

ज्ञानी प्रभु को खोजने में संलग्न होता है। गंतव्य की ओर यात्रा करता है। बहुत भटकता है। शास्त्रों–सिद्धांतों में तलाशता है कि प्रभु कहां है? मंदिर–मस्जिदों में, चर्चों–गुरुद्वारों में, दर–दर पुकारता है– प्रभु कहां हो?

भक्त उसका इंतजार करता है। प्रीतम की पदचाप सुनता है। मंजिल स्वयं चलकर भक्त तक आती है। प्रेम और प्रतीक्षाभाव से उसकी ध्वनि सुनना है, बस! भक्त अपने भीतर ही उसे पा लेता है, किसी जंगल में, पर्वत में, तीर्थस्थान में भटकने की जरूरत नहीं रहती। भक्ति का सूत्र है– श्रवण! पुकारो मत, शोरगुल न करो, गौर से सुनो। बाउल फकीर जादूबिन्दु कहते हैं–

'मेले ताय खूँजले आपोनार देहो–मोन्दीरे
ओ शेई जौगोतपिता कोच्छे कौथा
ओति मिष्टो मोधुर शौरे।।'

'मिल जाता खोजने से अपने ही देह मंदिर में'

तुम्हारे देह मंदिर में ही वह जगत पिता समाए हुए हैं, जो अत्यंत मधुर स्वर में तुम्हें सदा पुकार रहे हैं।

'हरि गीत गा रहा है, क्या याद है।
बंसी बजा रहा है, क्या याद है।'

एक कथा है– परमात्मा ने जब सृष्टि बनाई, तब वह यहीं निवास करता था। फिर धीरे–धीरे विकास हुआ, मनुष्य आया पृथ्वी पर। मनुष्य जब पृथ्वी पर रहने लगा तो परमात्मा मनुष्य से बहुत परेशान हो गया। रात–दिन उसकी शिकायतों से वह घिरा रहता। बहुत परेशान होकर उसने एक दिन देवताओं की मीटिंग बुलाई और पूछा कि यहां मैं मनुष्य से बहुत परेशान हो गया हूं, रात–दिन शिकायत लगाए रखते हैं। कहां जाया जाए; कहां इस मनुष्य से बचा जाए?

तो अलग–अलग देवताओं ने अलग–अलग जगह बताई। कोई बोला हिमालय पर रहो, कोई कहीं और ऊंची जगह रहो। लेकिन एक बूढ़े देवता ने कहा कि तुम प्रभु ऐसा करो कि मनुष्य के अंदर ही विराजमान हो जाओ, उसके हृदय में। वहीं वह नहीं जाएगा, बाकी तो सब जगह वह एक दिन पहुंच जाएगा। और तब से परमात्मा उसके भीतर विराजमान है। और वहां बिरला ही कोई पहुंचता है।

देह के भीतर परमात्मा विराजमान है। लेकिन हम उसे खोजते हैं...काशी, काबा, गिरनार...कहां–कहां खोजते हैं? बस एक जगह छोड़कर, स्वयं के भीतर छोड़कर, बाकी सब जगह हम खोजते हैं।

जैसे हमारे देह में अस्सी प्रतिशत जल है, अगर जल नष्ट हो जाए तो हमारा जीवन हो ही नहीं सकता; बिना जल के हम जी ही नहीं सकते। ये पानी का तत्व हमारे भीतर, इसका अनुपात हमारे भीतर अस्सी प्रतिशत होना जरूरी है।

ऐसे ही परमात्मा हमारे भीतर मौजूद है। अस्सी प्रतिशत हमारी आत्मा है। जिस दिन हम उसे जान लेते तो वही परमात्मा हो जाती है। अस्सी प्रतिशत परमात्मा हमारे भीतर विराजमान है। बीस प्रतिशत ही संसार है। लेकिन हम इस क्षुद्रता में इतना भटक गए हैं, इस क्षुद्रता ने हमें इतना हावी कर लिया है कि हम भूल ही गए हैं उस अस्सी प्रतिशत को।

ये देह है, देह कुछ ऐसी है, दीवाल की तरह; ये दीवाल के भीतर चैतन्य मौजूद है। लेकिन हमारी नजर वहां नहीं जाती। देह तो मंदिर है, परमात्मा उसके भीतर विराजमान है लेकिन हम मंदिर की दीवालों की पूजा कर के चले आते हैं और भीतर तो प्रवेश होता ही नहीं। हम देह पर ही अटके हैं, हमारी आंख विराट की ओर जाती ही नहीं। जब हमें अपने भीतर जाने की कला आ जाएगी, तभी हमारी आंख विराट की ओर जा सकती है।

'लूकोचुरी जाने बिलौक्खोन
केउ पाय ना दौरोशौन
आकारशून्यो जौगोतमान्यो जौगोतेर जीबोन।'

वो लुका–छिपी का खेल अच्छी तरह जानते हैं, तभी तो कोई सहज ही उनके दर्शन नहीं पाता। आकार जिनका शून्य है और इस जगत के मान्य हैं, जीवन हैं।

परमात्मा का आकार शून्य है, वह निराकार है। हम उसे आकार में खोजते हैं और आकार में खोज–खोज कर हम नहीं पा सकते। अगर हमें परमात्मा के दर्शन करने हैं तो हमें शून्य होना होगा। अपने भीतर निराकार में जाना होगा। तब हमें परमात्मा की अनुभूति हो सकती है। हमें भीतर देखने की कला आनी चाहिए। हमें आंख बंद करने की कला आनी चाहिए। हमारी आंखें सदा खुली हैं बाहर की ओर; खुली आंखों से संसार देखा जाता है, खुली आंखों से आकार दिखाई देता है। अगर उस निराकार स्वरूप को देखना है तो आंखें बंद करनी होगी और अपने निराकार में जाना होगा; शून्य होना होगा। और हम पाएंगे हमारा रोम–रोम उसकी अनुभूति में डूब गया।

'शौहोस्त्रो दौले स्थिति

नाभी पौद्दे गौतायाति

ताके शौहोजे जाए ना धौरा

ओशे पौलोके प्रोलौय कौरे।।'

सहस्त्रार दल में वो स्थित है और नाभि कमल में उनकी गति है, उसे अति सहज जाना जा सकता है, लेकिन वो पलक झपकते ही प्रलय ला देता है।

सहस्त्रार दल में वो स्थित है; हमें जब भी परमात्मा की अनुभूति होगी तो सहस्त्रार पर जाकर उसकी प्रतीति होगी।

ऐसा समझें कि अगर हम सामान्य जगह पर खड़े हैं, एक प्लेन रास्ते पर खड़े हुए हैं, वहां हमें सब कुछ दिखाई देगा। वहां से संसार का कूड़ा–करकट दिखाई देगा। आती–जाती कारें, लड़ते–झगड़ते लोग, तरह–तरह की चीजें दिखाई देगी।

लेकिन अगर हम वृक्ष पर चढ़ जाते हैं तो नीचे का कूड़ा–करकट दिखाई कम देगा? और ऊपर चले जाएं, हवाई जहाज से देखें तो बिल्कुल ही नहीं दिखाई देगा। सब सौन्दर्य ही सौन्दर्य दिखाई देगा। आकाश ही आकाश। पृथ्वी इतनी सुन्दर दिखाई देगी।

ऐसे ही जब हम अपने नीचे के चक्रों में होते हैं...चक्र सीढ़ी की तरह हैं...जब हम मूलाधार से जगत को देखते हैं तो संसार दिखाई देता है। जब हम और ऊपर चढ़ते हैं आगे के चक्रों में, तब हमें कुछ ऊपर की चीजें दिखाई देने लगती हैं।

जब हम स्वाधिष्ठान से देखते हैं, स्वाधिष्ठान पर हमारी ऊर्जा आई, तब हम देखते हैं लोगों की देह और साथ–साथ मन भी दिखाई देगा।

फिर मणिपुर चक्र में चढ़ेंगे और वहां से देखेंगे तो हमें लोगों की आत्मा की अनुभूति होगी। आत्मा दिखाई देगी।

फिर अनाहत चक्र से देखेंगे तो भीतर परमात्मा के प्रेम की प्रतीति होगी। उसकी बार–बार झलकें मिलेंगी।

और फिर और ऊंचा गए, विशुद्ध चक्र से देखेंगे तो ये झलकें अब ठहरने लगेंगी।

फिर आज्ञा चक्र पे आएंगे तो भीतर प्रकाश बरस जाएगा। प्रकाश थिर होने लगेगा। लेकिन कभी–कभी फिर अंधेरा आ जाएगा।

फिर सहस्त्रार पर जब जाएंगे तो सहस्त्रार से ऐसे प्रकाश की बरसात होती है, जहां परमात्मा की अनुभूति से भर जाते हैं।

ये झलक अब ठहर गई। जब भी हम सहस्त्रार पर होंगे, हमें संसार दिखाई दे ही नहीं सकता और जब भी हम मूलाधार पर होंगे, हमें परमात्मा दिखाई दे ही नहीं सकता।

तो इसी लिए जादूबिंदू कहते हैं– सहस्त्रार दल में वो स्थित है और नाभि–पद्म में उनकी गति है। और अति सहज उसे जाना जा सकता है। लेकिन वो पलक झपकते प्रलय ला देता है। जरा सी बेहोशी और हम वापस मूलाधार में, वापस संसार में आ जाते हैं। जैसे–जैसे यात्रा की ऊंचाईयां बढ़ेंगी, हमें और–और बोध से भरना होगा, प्रतिपल सजग रहना होगा; प्रतिपल साक्षित्व में जीना होगा।

'आपोन तौत्तो कौरो आप्नी
होये चेतौन दिबा–रौजोनी
तौबे जोदी कृपा कौरे शेई गुनोमोनी।'

आत्म तत्व को स्वयं में जानो, जहाँ सदा चैतन्यावस्था है, दिवा–निशी का कोई भेद नहीं है। अगर वो गुणमणी गुरु कृपा करें तो उस अधर–निधि का ज्ञान सहज ही मिल जाता है।

गुरु की कृपा से ही परमात्मा का ज्ञान होता है। हम सोचें की स्वयं ही सीधे जान लें परमात्मा को, तो करीब–करीब असंभव बात है। आत्मतत्व को स्वयं में जानो, जहाँ सदा चैतन्यावस्था है, दिन–रात का कोई भेद नहीं है, उस निराकार के देश में।

'चलहूं सखी वा देश, जहां दिवश नहीं रजनी।'

उस देश में, उस निराकार में, अंतरतम में हमारे, वहां समय नहीं है, समय की पार की अवस्था है। वहां समय ठहर गया है।

'नानक शून्य समाधि में, नहीं सांझ नहीं भोर।'

जहां समय नहीं है, वहां कहां दिवस? कहां रात्रि? वहां सांझ और भोर का पता नहीं चलता।

'एक रस अहर्निश'– एक रस में हम डूब जाते हैं।

'तारे धोरबार आशा कोरो ना रे मोन
शे जे औधोर–निधि नाम धौरे।।
मोने प्राने हौय जोदी बिश्शाश
तौबे कौरो ताहार आश
कौर्मो छाड़ा तौर्को होले शौकोल कार्जोनाश'

उसे बाँधने का प्रयास नहीं करना। गुणमणी गुरु ही, उस अधर निधि नाम से परिचय करवाते हैं। मन प्राण में अगर विश्वास है तभी उसकी आशा करना; नहीं तो तर्कजाल में सकल नाश हो जाएगा।

परमात्मा को अगर हम तर्क से पाने चले तो नहीं मिल सकता। दार्शनिक यही कर रहे हैं,

पहले प्रमाण चाहते हैं फिर अनुभूति। तर्क क्या कहता है? पहले प्रमाण तो दो। फिर अनुभव करेंगे।

लेकिन कुछ ऐसा ही है तर्क से परमात्मा खोजना, जैसे अंधेरा कमरा है और काली बिल्ली है और उसे हम खोजने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसे ही तर्क से हम परमात्मा को खोज रहे हैं। क्या विराट को प्रमाणों से बांधा जा सकता है? संगीत को प्रमाण से सिद्ध कर सकते हो? मिठास को प्रमाण से सिद्ध कर सकते हो? सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को क्या प्रमाण से सिद्ध करोगे? गणित को प्रमाण से सिद्ध कर सकते हो, रुपए–पैसे को प्रमाण से सिद्ध कर सकते हो। जितनी क्षुद्र चीजें हैं, प्रमाण से सिद्ध हो सकती है। जितनी भी विराट चीजें हैं उन्हें प्रमाण से कैसे सिद्ध करोगे, प्रेम को क्या प्रमाण दोगे? नहीं दे सकते। श्रद्धा भक्ति को क्या प्रमाण दोगे? नहीं दे सकते। परमात्मा के प्रमाण नहीं हो सकते। तर्क कहता है कि पहले प्रमाण दो फिर अनुभव दो।

जादूबिंदू कहते हैं– श्रद्धा करो, विश्वास करो। तर्क से सब कुछ नष्ट हो जाएगा, मन प्राण में विश्वास पैदा करो। विश्वास यानी श्रद्धा की बात कर रहे हैं। श्रद्धा कहती है, पहले अनुभव होगा तो प्रमाण पीछे आ ही जाएगा। अगर हमारे भीतर परमात्मा को पाने की प्यास पैदा हुई है तो निश्चित रूप से परमात्मा होगा। अगर हमें भूख लगी है तो भोजन होगा ही होगा, ये श्रद्धा कहती है। और इसी तरह से भक्त उसके प्रेम में, उसके विरह में रो–रोकर परमात्मा को पा लेता है। और तर्क शास्त्री जीवन भर खोजते रहते हैं, शब्दों के जाल में, शब्दों के ढेर में उलझकर भटक जाते हैं।

'जादूबिन्दू ढेंटा बुद्धि मोटा
शे कि कूबीर के चिन्ते पारे।।'

जादू बिन्दु कहते हैं– बुद्धि मोटा मत करो, तभी नाम धन कुबेर को पहचानोगे, जानोगे।

बुद्धि मोटा––मोटी चमड़ी कहते हैं न, मोटी चमड़ी मतलब, असंवेदनशील त्वचा और ऐसे ही मोटी बुद्धि मतलब, असंवेदनशील बुद्धि। संवेदना जगानी होगी, संवेदनशीलता पैदा करो, जागरूक बनो; तब सद्गुरु के पास होने पर प्रभु की पदचाप सुनाई देगी। प्रभु के दर्शन होंगे।

एक बार परमगुरु ओशो से किसी जिज्ञासु ने पूछा कि 'मैं ईश्वर में भरोसा नहीं करता हूं। क्या आप ईश्वर के होने का कोई प्रमाण दे सकते हैं?'

ओशो ने बड़ा अदभुत उत्तर दिया। आइए, हम वह लाजवाब जवाब सुनते हैं–

'मैं प्रमाण हूं। और क्या प्रमाण होता है? मेरे प्रेम को देखो, मेरी शांति को देखो, मेरे आनंद को देखो। चखो थोड़ा।

मैं जो कहूंगा, उससे प्रमाण होगा? कहे हुए शब्द तो शब्द ही होंगे। मेरे पास आओ। प्रमाण तो मिलेगा निकटता से। मेरे साथ बिगड़ो। मेरे साथ राजी होओ। कुछ चिंता न करो कि ईश्वर पर भरोसा नहीं है। हो भी कैसे भरोसा? कैसे भरोसा आए? जो तर्क दिए गए हैं, सब लचर और कमजोर हैं। क्योंकि ईश्वर के लिए कोई ठीक तर्क हो नहीं सकता। ईश्वर तर्कातीत है। जिन्होंने तर्क दिए, हानि की, लाभ नहीं किया। क्योंकि उनके तर्कों के कारण ईश्वर को असिद्ध करने का उपाय मिल गया। जिन्होंने तर्क दिए ईश्वर के लिए कि ये–ये कारण हैं ईश्वर के होने में, उन्होंने रास्ता खोल दिया नास्तिकों के लिए। क्योंकि नास्तिक उन तर्कों का खंडन कर सकते हैं। खंडन की वजह से फिर ऐसा लगता है कि नास्तिक जीत गए। और जो भी तर्क दिए गए हैं ईश्वर के लिए, सब खंडित किए जा सकते हैं। मैंने अब तक ऐसा एक तर्क नहीं पाया जो खंडित न किया जा सकता हो।

अगर नास्तिक और आस्तिक का तार्किक विवाद हो, तो नास्तिक ही जीतेगा, आस्तिक नहीं जीत सकता है। यह बात सच है। यह मैं आस्तिक होकर कह रहा हूं। आस्तिक कमजोर है। आस्तिक लचर है। उसकी दलीलें नपुंसक हैं। वह जो कहता है, ठीक नहीं है, मगर रास्ता बना देता है– नास्तिक का खंडन करने का रास्ता बना देता है।

आस्तिक को चुप हो जाना चाहिए– नास्तिक विदा हो जाएंगे। आस्तिक को तर्क देना ही नहीं चाहिए, क्योंकि ईश्वर के लिए तर्क हो नहीं सकता। आस्तिक को तर्क बनना चाहिए– तर्क देना नहीं चाहिए।

उसे यह नहीं कहना चाहिए कि हर चीज का बनाने वाला होता है, तो इतनी बड़ी पृथ्वी, इतने चांद–सूरज, इतना बड़ा विराट ब्रह्मांड– तो कोई बनाने वाला होना चाहिए। नास्तिक तत्क्षण पूछता है– फिर उस बनाने वाले का बनाने वाला कौन?

...चारों खाने चित! अगर तुम यह कहो कि उस बनाने वाले का कोई बनाने वाला नहीं, जैसा कि आस्तिक कहते रहे– तो यह बेईमानी की बात है। फिर अगर उस बनाने वाले को बनाने वाले की जरूरत

नहीं, तो इस ब्रह्माण्ड को ही बनाने वाले की क्या जरूरत है? फिर तो तुम्हारा तर्क बेमानी हो गया। तर्क की बुनियाद यही थी कि हर चीज के लिए कोई बनाने वाला होना चाहिए।

तुम अगर यह कहो कि यह ब्रह्मांड इतना जटिल है, इसके पीछे कोई न कोई कारीगर होना चाहिए– ठीक। लेकिन तुम्हारा कारीगर तो इससे भी ज्यादा जटिल होगा न। उसके पीछे भी कोई कारीगर होना चाहिए। यह बात कहां अंत होगी? यह दलील फिजूल है। यह बचकानी है।

मैं ईश्वर के लिए कोई प्रमाण तर्क की तरह नहीं देना चाहता। नहीं दे सकता हूं। और मैं चाहूंगा कि कोई न दे।'

प्रमाण न मांगो। प्रतीक्षापूर्ण हृदय से प्रीतम की पदचाप सुनो। बंद करो अपने तर्कों का शोरगुल, अपनी पुकार। सुनो उसकी शांत मद्धिम सी आवाज, उसकी पुकार।

हरि ओम् तत्सत्।

अर्धनारीश्वर है अस्तित्व

'आपोनदेहेर खौबोरजान
देहेरमोध्येपौरोमबोस्तु, बाइरे खूँजलेपाबेकैनो।।
रौक्तोधातु, शुक्रोधातु, मा–बापदूइजौन
ओ तार शुक्रोधातुपौरोमपिता
ताहारेभौजोनाकैनो।।
कूलोकुण्डोलिनी शौहाय रेखे ऊर्धबादामतोलो
दौशइन्द्रियो के शिष्यो कोरे
ज्ञान–बोंड़शितेटेनेआनो।।
शाड़ेचोब्बीशचौन्द्रो पौंचोतौत्तोगुरूरकाछेजानो
गोसांईचांदबौलेनिगौमधौरे
आछेगुरूरबोस्तुधौन।।'

अपने तन की सुध ले तू, क्यों बाहर–बाहर खोजता फिरता है। तेरे अंदर ही तो वह परम वस्तु विद्यमान है। बाहर खोजने से वह नहीं मिलेगा।

रजधातु–शुक्रधातु से तेरा निर्माण हुआ। शुक्रधातु सहस्रार में विराजमान परमपिता हैं, उसका भजन करो।

कुण्डलिनी की सहायता से ऊर्जा को सदा ऊपर उठाए रखो। दस इन्द्रियों को शिष्य बनाकर अपने ज्ञान की बड़शी से मीन को खींचो।

साढ़े चौबीस चंद्र और पंच तत्व का ज्ञान गुरु से जानो। गोसांई चांद कहते हैं निर्गुण के घर में ही गुरु स्वरूप वह परम वस्तु विराजमान है। गुरु का विदेही रूप ही तो ओंकार है। उसी में समाकर लीन हो जाओ।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर गोसांई चांद कहते हैं–

'आपोनदेहेर खौबोरजानो

देहेरमोध्येपौरोमबोस्तु, बाइरे खूँजलेपाबेकैनो।।'

अपने तन की सुध ले तू। क्यों बाहर–बाहर खोजता फिरता है। तेरे अंदर ही तो वह परम वस्तु विद्यमान है। बाहर खोजने से वह नहीं मिलेगा।

हम सदा दूसरों की सुध लेते रहते हैं, सदा दूसरों की याद में जीते हैं। हमारा पूरा जीवन दूसरों को जानने में, दूसरों से परिचय बनाने में, संबंध बनाने में बीत जाता है। सारी जीवन की ऊर्जा इसी में चूकती जा रही है, लेकिन परिचय बन–बन कर भी परिचय कहां बनता है? जब तक स्वयं से परिचय नहीं हुआ तो दूसरों से कैसे परिचय होगा?

ये कैसा अपरिचय है, अपनों से परायों से
हम कितने अजनबी हैं खुद अपने ही सायों से?
ये कैसा अपरिचय है?
लगते हैं निकट लेकिन दूरी नहीं है घटती।
यह नेह क्षितिज रेखा और–और परे हटती।।
मिटती नहीं मिटाए, हंसते ना आहों से
हम कितने अजनबी हैं खुद अपने ही सायों से?
ये कैसा अपरिचय है?
क्या जानें हम उसे जो, है पास नहीं अपने।
पहचान ना सके जब मन, भाव, हृदय सपने।।
हैं अपने मगर फिर भी घर लगते सरायों से।
ये कैसा अपरिचय है?
भला दूर सितारों की, बातें सभी सही हो।
पर सांस चल रही क्यों यह भी पता नहीं हो।।
ऐसे में कोई कैसे बच पाए व्यथाओं से?
हम कितने अजनबी है, अपने ही सायों से।।
ये कैसा अपरिचय है?
कदमों में मन, परंतु दिखती नहीं है मंजिल।
कहीं है भी या नहीं आशंका से भरा दिल।।
पग बढ़ते जा रहे, पर अंजान हैं राहों से।
ये कैसा अपरिचय है?
जीवित हैं किंतु जीवन से दोस्ती नहीं है।
क्या भूल हो रही है यह भी खबर नहीं है।।

क्यों न जिंदगी भरी हो आंसू से कराहों से?

हम कितने अजनबी है अपने ही सायों से।।

ये कैसा अपरिचय है?'

हम अपने से अजनबी हैं, इसलिए अपनों से अजनबी हैं और परायों से अजनबी हैं। जब तक हम स्वयं से परिचित न हो जाएं, सब हमारे लिए अजनबी ही रहेंगे।

गोसाांई चांद कहते हैं– अपने तन की सुध ले, क्यों बाहर–बाहर खोजता फिरता है?

अपने तन की सुध लेने के लिए क्या करना होगा? – हमें अपनी ओर लौटना होगा। तन के सुध लेने के लिए हमें शरीर, मन और हृदय की परतों को पार कर के अपने भीतर जाना होगा। इस अंतर यात्रा के सूत्र हैं– सम्यक आहार, सम्यक निद्रा, सम्यक व्यायाम।

हमें अगर तन से प्रेम है तो हमें अपने आहार का ध्यान रखना होगा। हम तो इतना खिलाते हैं उसको, ओवर इटिंग से परेशान किए दे रहे हैं। कुछ लोग भूखे मर रहे हैं गरीबी से और कुछ लोग ओवर इटिंग से मर रहे हैं। परेशानी ही परेशानी है। हमें अपनी शरीर की सुध ही नहीं है। उसे क्या चाहिए हम नहीं जानते? हमें सम्यक आहार लेना होगा।

फिर निद्रा, सम्यक निद्रा चाहिए। देखना होगा क्या हम ठीक से सो रहे हैं? मुश्किल से आदमी पूरी नींद ले पाता है। इतना व्यस्त हो गया है कि नींद के लिए भी उसे फुर्सत नहीं है। तो हम कैसे अपने शरीर के संग ट्यूनिंग में जाएंगे?

व्यायाम! ... व्यायाम नहीं करते। शरीर को सम्यक व्यायाम चाहिए। वह भी नहीं होता। सम्यकता चाहिए; सम्यक आहार, सम्यक निद्रा चाहिए, सम्यक व्यायाम चाहिए। जब ये तीनों का बैलेंस होता है, तब हमारी शरीर के साथ ट्यूनिंग होती है, तब उससे परिचय हो सकता है।

ये शरीर मंदिर है। और इस मंदिर में वो चैतन्य रूपी परमात्मा विराजमान है। इस मंदिर को हम नहीं संवारते, इस मंदिर के साथ हम बहुत दुर्व्यवहार करते हैं। अपने तन की सुध लें, इसके प्रति संवेदनशील बनें। महसूस करें ये क्या चाहता है?

एक झेन फकीर से एक बार एक शिष्य पूछता है कि आपकी जीवनचर्या क्या है? आपकी साधना क्या है?

ये शिष्य ने भी बहुत साधना की थी, जगह–जगह गया था, ज्ञान हासिल हो गया था। अब आया था झेन फकीर के पास। पूछता है– आप क्या साधना करते हैं? तो झेन फकीर हंसता है, मुस्कुराता है, बोलता है– कुछ भी नहीं करता हूं।

कुछ नहीं करते और आप का इतना नाम है; लोग आपके बारे में इतना जानते हैं। आपका होना किसको नहीं पता है? तो आप कुछ तो करते होंगे। आपका यश दूर–दूर तक फैला है। क्या करते हैं आप? कौन सी साधना करते हैं?

फकीर फिर मुस्कुराया, बोला– मैं कुछ भी नहीं करता; जब भूख लगती है तो भोजन करता हूं, जब नींद आती है तो सो जाता हूं; जब प्यास लगती है तो पानी पीता हूं; जब कर्म करने का समय आता है तो कर्म करता हूं।

तो शिष्य बोला– ये कोई साधना हुई? फकीर बोला– निश्चित रूप से। क्या तुम तब

खाते हो, जब तुम्हें भूख लगती है? जरा गौर से देखो क्या तुम तब सोते हो जब तुम्हें नींद आती है? कोई भी तब नहीं खाता जब भूख लगती है, तब कोई भी नहीं खा रहा है। अगर हम बस इतने जागरूक हो जाएं, जब हमें जरूरत हो जब भूख लगे तब खाएं। जब विश्राम की जरूरत है तब विश्राम करें, जब निद्रा की आवश्यकता है तब निद्रा में जाएं, तो अपने आप ही अंतर यात्रा शुरू हो जाती है।

और हम स्वयं से छंद–बद्ध होने लगते हैं, अपने आप से ट्यूनिंग होने लगती है, ऐसे होता है स्वयं से परिचय। बाहर खोजता फिरता है व्यक्ति आनंद के लिए, बाहर खोज रहा है लोगों को, परिचय बना रहा है, संबंध बना रहा है। लेकिन आनंद कहां मिलेगा? आनंद तो अपने अंदर ही मिलेगा, अंदर ही तो वह परम वस्तु विद्यमान है। हम बाहर खोज रहे हैं।

परम वस्तु बाउल कहते हैं 'ओंकार' को। वो परम वस्तु जिससे आनंद मिलता है। जिसकी तलाश में हम बाहर भटकते जा रहे हैं और जीवन भर भटकते ही रहते हैं और एक दिन मर जाते हैं। वो परम वस्तु जिसे तुम बाहर खोज रहे थे, वो आनंद देने वाली वस्तु भीतर मौजूद है। बाहर खोजने से वह नहीं मिलेगी। बाहर नहीं खोजना है, अपने ही इस देह के भीतर खोजना है। इस तन की सुध पहले लेना है, तन के प्रति सम्मान से भरना है।

तथा–कथित साधु ने इस तन की बहुत निंदा की है। हमें इसके प्रति सम्मान से भरना है। क्या हमने कभी अपने शरीर को धन्यवाद दिया है? जरा गौर से याद करना...कभी भी नहीं। हमेशा इस शरीर के प्रति शिकायत से भरे हुए हैं। मंदिर से हम शिकायत कर रहे हैं।

तन के प्रति सम्मान से भरना है। जब हम सम्मान से भरेंगे, तब प्रेम पैदा होगा। प्रेम पैदा होगा, तभी अहोभाव हो सकता है। स्वयं के प्रति जो अहोभाव से नहीं भरा है, वह दूसरे के प्रति धन्यवाद भाव से कैसे भर सकता है? स्वयं के प्रति जब शिकायत है तो दूसरों के प्रति शिकायत ही शिकायत है। और निरंतर अहोभाव में जीने का नाम ही भजन है। यही तो भज गोविंदम है। निरंतर अहर्निश––भीतर उठता हुआ धन्यवाद भाव। और ये तभी उठ सकता है, जब हम अपनी तन की सुध में रहें। कब इसे क्या चाहिए वैसा हम इसे दें। तन के प्रति होश।

फिर इसके भीतर मन है। मन के प्रति भी हम निंदा भाव से भरे हुए हैं; मन के प्रति भी हमें सम्मान से भरना होगा। यही मन जो बाहर भटकाता है, यही मन हमें भीतर ले जाता है। इसी द्वार से हम बाहर जाते हैं, इसी द्वार से हम भीतर आते हैं, यही मन जो बाहर के सुमिरन में, याद में जीता है और बेचैन करता है, यही मन परमात्मा के सुमिरन में एक दिन जाता है। हरि सुमिरन में जीता है और इस जीवन को आनंद ही आनंद से भर देता है।

'रौक्तोधातु, शुक्रोधातु, मा–बापदूइजौन
ओ तार शुक्रोधातुपौरोमपिता
ताहारेभौजोनाकैनो।।'

रज–धातु, शुक्र–धातु से तेरा निर्माण हुआ। उसमें भी शुक्र धातु सहस्रार में विराजमान परम पिता हैं, उसका भजन करो। इन उपमाओं को काव्यात्मक ढंग से समझना। अध्यात्म की भाषा वैज्ञानिक नहीं, गणितीय नहीं, तथ्यात्मक नहीं, बल्कि कविता जैसी है। दो विपरीत

ऊर्जाओं से मिलकर हमारा जीवन बना है। चीन में उसे वे यिन और यांग कहते हैं। दो मछलियों के प्रतीक को आपने देखा होगा, जिनके मिलन से हमारा होना हुआ है।

ऐसा समझना रज धातु यानी पृथ्वी। लाओत्सु कहता है– रजधातु... फीमेल एनर्जी। और शुक्र–धातु यानी जिसे लाओत्सु कहता है आकाश... मेल एनर्जी। इन दोनों के मिलने से जीवन अवतरित हुआ है।

कहते हैं– शुक्र धातु सहस्त्रार में विराजमान परम पिता है। आकाश परमात्मा का स्वरूप है। आकाश की याद में जियो, तो भीतर भजन शुरू हो जाएगा। विराटता के प्रति तुम ग्रहणशील हो जाओगे। ये अस्तित्व दो विपरीत ध्रुवों से मिलकर बना है। पॉज़िटिव पोल और नेगॅटिव़ पोल। जब दोनों आपस में मिलते हैं तो बीच में चुम्बक के मध्य में कोई आकर्षण नहीं। वहां दोनों के मिलने से शून्य उत्पन्न होता है।

जब भीतर भी ये दो एनर्जी मिलती हैं, तो भीतर भी एक शून्य निर्मित होता है। और उस शून्य में प्रभु का अवतरण होता है। इस सारे जगत की रचना शून्य से ही तो हुई है। जैसे अब नवीनतम सिद्धांत आया, कहा जाता है कि इस सारे जगत की रचना पॉर्टिकल्ज़ और एंटीपॉर्टिकल्ज़ दोनों के मिलने से हुई। पॉर्टिकल भी मौजूद हैं और एंटीपार्टिकल भी, और जब दोनों मिलते हैं तो फना हो जाते हैं। दोनों मिलते हैं तो एनीहिलेशन हो जाता है, फिर शून्य पैदा होता है। इस शून्य से जीवन निकला है और इसी शून्य में फिर विलीन हो जाते हैं।

अर्धनारीश्वर...भारत के कहने का ढंग है; इस जीवन की प्रतिमा बनाई गई है, अर्धनारीश्वर की। हर एक व्यक्ति अर्धनारीश्वर है। सब के भीतर वो पुरूष तत्व और स्त्री तत्व, दोनों एनर्जी मौजूद हैं। और जब दोनों एनर्जी का आपस में मिलन होता है तो भीतर आनंद ही आनंद बरस जाता है। वो दोनों हमारे भीतर मौजूद हैं। हम बार–बार खोजने जाते हैं, हम बार–बार मिलने जाते हैं, बाहर मिलन में कभी आनंद मिलने वाला नहीं है। सुख क्षण भर को मिल सकता है, जैसे क्षण भर को बिजली कौंधी। लेकिन फिर महादुख, महाअंधकार। मगर जब भीतर अपने ही पुरूष और अपनी ही स्त्री से मिलन होता है, तब जो आनंद की बरसात शुरू होती है, वह शाश्वत होती है। सदा–सदा के लिए होती है।

‘कूलोकुण्डोलिनी शौहाय रेखे
ऊर्धबादामतोलो
दौशइन्द्रियो के शिष्यो कोरे
ज्ञान–बोंड़शितेटेनेआनो।।’

कुल कुण्डलिनी की सहायता से ऊर्जा को सदा ऊपर उठाए रखो। दस इन्द्रियों को शिष्य बनाकर अपने ज्ञान की बड़शी से मीन को खींचो। ज्ञान अर्थात् जानने की क्षमता, चेतना, संवेदनशीलता, जागरूकता। बड़शी यानी बंसी, जिससे मछुआरे मछली पकड़ते हैं। याद रखना बाउल फकीरों की उपमाएं बंगाल की संस्कृति से जन्मी हैं। उस सभ्यता का प्रभाव उनके प्रतीकों में मिलता है।

कुण्डलिनी ऊर्जा, हमारी जीवन ऊर्जा का ही नाम है। जब हमारी जीवन ऊर्जा जो कि

हमारे खाने से बनती है, नींद में संरक्षित होती है, व्यायाम से जागती है। ये जीवन ऊर्जा जब जाकर मूलाधार से सहस्त्रार पर टिकती है, उस टिकी हुई जीवन ऊर्जा का नाम ही कुण्डलिनी है। और जब सहस्त्रार पर जीवन ऊर्जा टिक जाती है, तभी अलौकिक अनुभव होते हैं।

ये जो दस इंद्रियां, जिनके माध्यम से हमारी ऊर्जा बाहर–बाहर जा रही है; हमारा मन रस लेने के लिए बाहर–बाहर इन इंद्रियों का सहारा ले रहा। इन इंद्रियों को हम भीतर की ओर मोड़ लें, इंद्रियों को शिष्य बना लें। जब यह इंद्रियां भीतर मुड़ जाती हैं तो अंतर इंद्रियां खुलती हैं; जो इंद्रियां बाहर के जगत का रस ले रही थीं और दुख में, अंततः दुख आ रहा था अब ये सारी इंद्रियां, अंतर इंद्रियां भीतर का रस लेती हैं। आत्म रस में डूबती हैं, आनंद में डूबती हैं। भीतर एक निरंतर आनंद का झरना बह रहा है, उसका आनंद लेती हैं ये।

'शाड़ेचोब्बीशचौन्द्रो पौंचोतौत्तोगुरूरकाछेजानो
गोसांईचांदबौलेनिंगौमधौरे
आछेगुरूरबोस्तुधौन।।'

साढ़े चौबीस चंद्र और पंच तत्व का ज्ञान गुरु से जानो। गोसांई चांद कहते हैं– निर्गुण के घर में ही गुरु स्वरूप वह परम वस्तु विराजमान है। गुरु का विदेही रूप ही तो ओंकार है। उसी में समा कर लीन हो जाओ।

शरीर के जब हम भीतर जाते हैं तो विभिन्न तरह के विभाजन हो सकते हैं। विभिन्न लोगों ने अलग–अलग ढंग से विभाजन किए हुए हैं। जैसे अगर हम एक कमरे से गुजरते हैं और उस कमरे में भीड़ लगी हुई है तो कुछ लोग विभाजन करेंगे, वहां पर दो प्रकार के लोग थे, स्त्री और पुरूष थे। कुछ लोग विभाजन करेंगे, वहां स्त्री–पुरूष भी थे, बच्चे भी थे; कुछ लोग कहेंगे कि किशोर भी थे, युवा भी थे, बूढ़े भी थे। तरह–तरह के विभाजन कर सकते हैं।

ऐसे ही अपने–अपने ढंग से, अंतर जगत में जब हम गए हैं, तो लोगों ने अपने–अपने ढंग से विभाजन किया है भीतर चक्रों का। किसी ने सात चक्रों की बात की, किसी ने नौ चक्रों की बात की, किसी ने चौदह चक्रों की बात की। अलग–अलग ढंग से विभाजन किया है।

गुरु का विदेह रूप ही तो ओंकार है, उसी में समाकर लीन हो जाओ। मुख्य बात है गुरु का विदेह रूप पकड़ो और उसमें समाकर, उसमें लीन हो जाओ। उसके लिए पहले गुरु के प्रेम में पड़ो, परमात्मा गुरु का निराकार रूप है और गुरु परमात्मा का साकार रूप है। साकार रूप के प्रेम में पड़ो, फिर निराकार तक पहुंचो, परमात्मा तक पहुंचो। साकार गुरु के प्रेम में पड़ोगे, उसके भीतर के निराकार प्रेम में पड़ ही जाओगे।

जैसे देह है ...यह घड़े की तरह है, जैसे धड़े के भीतर आकाश है... ऐसे ही इस देह के भीतर परमात्मा, आकाश रूपी परमात्मा है। और जब ये देह गिरती है तो वो आकाश से मिल जाती है। इस तरह विदेही गुरु ही ओंकार हो जाता है।

जीते जी अगर हमने गुरु से प्रेम किया तो ओंकार से प्रेम हो ही जाएगा। और एक दिन उसी ओंकार में लीन हो जाना हमारा भविष्य हो जाता है।

हरि ओम तत्सत्।

जीवन का सम्मान

'काज नेइ पोडार दौर्गाय शिरनी दिये।
ऐतो शाधेर मानोब जौन्मो फेली के जाय रे।।
मानुष के त्याजे देखी
दौर्गाते गौतो आँखी
जाना जाबे एशौब फाँकी,
हिंशाब पेये।।
माटिर पुतूल शील नोड़ा
खौड़ेर बौन्देर माथा नाड़ा
ऐमोन शौयतान छौन्नों छाड़ा
बेद पोड़िये।।
मिछे फेले मानुष रौतोन
बेलतौलाते कौरे गौमोन
दीन दृद्दू ताई कौरे बौर्नोन
जौतो शौब बेशातीरे।।'

मुझे कोई दरकार नहीं कि मैं दरगाह में शिरनी चढ़ाने जाऊँ, इतना अनमोल मानुष जन्म छोड़कर क्यों भटकूँ।

मानुष को तजकर दरगाह में जाकर मरते हैं। मैंने तो यही जाना है कि ये सब व्यर्थ है, फाँकी देना है। हिसाब जान जाने के बाद सब बेकार जान पड़ता है। माटी का सिल–लौढ़ा पूजते देखा है। बन्दे अपना सिर भी मुंडा लेते हैं। ऐसे शैतान न घर के न घाट के रह जाते हैं और दिखावे के लिए वेद पढ़ते हैं।

मिथ्या ही मानुष रतन को तजकर बेल–पेड़ के नीचे पूजा करते हैं। दीन दद्दू कहते हैं– ये सब जितने भी लोगों को देखता हूँ, वे सब व्यापारी हैं, स्वार्थ का व्यापार करते हैं।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत दद्दू शाह कहते हैं–

‘काज नेइ पोडार दौर्गाय शिरनी दिये।

ऐतो शाधेर मानोब जौन्मो फेली के जाए रे।।’

मुझे दरकार नहीं कि मैं दरगाह में शिरनी चढ़ाने जाऊँ, इतना अनमोल मानुष जन्म छोड़कर क्यों भटकूँ।

तथाकथित धर्म मुर्दा परस्ती सिखाते हैं, जीवन को अस्वीकार करते और मृत को पूजते हैं। जो सशरीर हैं, जब बुद्ध जीवित हैं तो बुद्ध को गाली देते हैं। बुद्ध जब चले जाते हैं, विदा हो जाते हैं तो बुद्ध के मंदिर बनाते हैं।

जीसस जब जिंदा हैं, तब सूली पर लटकाते हैं और जब चले जाते हैं तो आधी दुनिया जीसस के गुणगान करती है, ईसाई बन जाती है। हमारे भीतर जीवन का सम्मान नहीं है, जीवित को हम नहीं पूछते।

और बाउल सिखाते हैं– जीवन का परम सम्मान। वर्तमान में होना ही बाउल सिखाता है। धर्म है वर्तमान में, अभी और यहीं। जिसको परम गुरु ओशो कहते हैं– ‘हियर एंड नाउ’। उनकी सबसे बड़ी देन है दुनिया को कि धर्म को उन्होंने जीवन से जोड़ा। धर्म जो है उत्सव पूर्ण है; और ‘हियर एंड नाउ’ अभी और यहीं मौजूद है। अभी और यहीं जिसने जीना सीख लिया, वो है सच्चा धार्मिक।

‘शाभर ऊपर मानुषे सात्तो, मानुषेर ताहर ऊपर नाहीं।’

सबसे ऊपर मनुष्य का सत्य है, मनुष्य में ही परमात्मा छिपा हुआ है, जीवन में ही परमात्मा छिपा हुआ है। हमें जीवन जीने की कला सीखनी होगी। हमें जीवन के प्रति सम्मान सीखना होगा। यही बाउल सिखाते हैं। ये मानुष जन्म इतना अनमोल है; इतना अनमोल मानुष जन्म छोड़कर क्यों भटकूं?

‘ऐतो शाधेर मानोब जौन्मो फेली के जाए रे।।’

ऐसा अमूल्य मानुष जन्म ऐसे ही चला जा रहा है। गुरु तेगबहादुर कहते हैं–

‘साधो गोबिंद के गुन गावउ।

मानस जनमु अमोलकु पाइओ।।

बिरथा काहि गवावउ।’

ये अमूल्य जीवन मिला है, और हम ऐसे ही व्यर्थ गवां रहे हैं।

‘रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।

हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी बदले जाए।।'

ऐसे ही कौड़ियों के भाव हम अपने जीवन को लुटाए दे रहे हैं।

'पतित पुनीत दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवउ।'

परमात्मा की शरण आओ।

'तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ।

साधो गोबिंद के गुन गावउ।।'

कैसे गाओगे गोबिंद के गुण? गोबिंद के गुण गाना है, उसे कैसे याद करोगे जिसे जानते ही नहीं हो? पहले तो जानना होगा ना? जानना होगा गोबिंद को, गोबिंद को जानकर ही उसके भजन को गा सकते हो।

उसके लिए 'तजि अभिमान'––अभिमान को तजना होगा। मोह, माया को तजना होगा। अभिमान तजना होगा, तभी तुम गुरु के पास आओगे। गुरु ही तो गोबिंद से परिचय कराता है। तो उसके लिए अभिमान को तजना होगा, मोह के बंधनों को तजना होगा।

'तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ।'

भजन तभी हो सकता है, जब हम परमात्मा को जाने, नाम को जाने।

'नाम ही नाम ले लिया, जानते उसे कतई नहीं।

कहते हो बस खुदा–खुदा, देखा उसे कभी नहीं।

ऐसे खुदा की बंदगी, कुफ्र है बंदगी नहीं।

खाली जो गुजरे एक नफस, मौत है जिंदगी नहीं।'

राम–राम, राम–राम करते रहते हैं लोग। लेकिन यह राम–राम करना किसी काम का नहीं है। ऐसे ही हम कौड़ियों के मूल्य गवां देंगे इस जीवन को। चाहे राम–राम करें, चाहे फिल्मी गाना गाएं, बात एक ही है। अगर हमने राम को नहीं जाना तो राम–राम कहने से बात नहीं बनती है।

दद्दू शाह कह रहे हैं– 'मानुष को तजकर दरगाह में जाकर मरते हैं।'

मैंने तो यही जाना है कि ये सब व्यर्थ है, फांकी देना है। वास्तविक हिसाब जान लेने के बाद सब बेकार जान पड़ता है। मनुष्यों के बीच में रहते हो और उसी बीच में गुरु मौजूद है, चैतन्य पुरुष मौजूद है, जागा हुआ व्यक्ति मौजूद है। और तुम जाओगे वहां दरगाह में खोजने। वहां जाने से बात नहीं बनेगी, वहां पूजा करने से बात नहीं बनेगी। जीवित व्यक्ति को खोजना होगा और शिष्य बनकर उसके चरणों में बैठना होगा। तब बात बनेगी।

एक बड़ी प्यारी घटना है– एक बार गांव में एक फकीर आए। बहुत सत्संग जमता था।

कुछ महीनों के लिए आए थे लेकिन एक साल के करीब रुके। उनकी सेवा करने के लिए एक युवक आया था। गरीब था युवक, रात–दिन उनकी सेवा में रहता था, गुरु की सेवा करता था। एक साल बाद गुरु को वापस जाना पड़ा। जहां से वो आए थे, वहीं वापस जाना था। वो युवक उनका शिष्य बन गया था, वो रोने लगा।

गुरु ने जाते समय उस शिष्य को एक भेंट दी। भेंट थी बकरी, प्यारी बकरी गुरु की। ये शिष्य ने इस बकरी को खूब संभाल कर रखा, बहुत प्रेम करता था। एक दिन इस बकरी की मृत्यु हो गई, शिष्य क्या करता? उस बकरी की वेदी बनाई और रो रहा था। गुजरते हुए लोगों ने देखा कि ये व्यक्ति रो रहा है वेदी के आगे; हो सकता है किसी महान व्यक्ति की वेदी है ये, और बड़े भाव में ये रहा है। लोगों ने पैसे चढ़ाने शुरू कर दिए। धीरे–धीरे अब तो कई लोग आने लगे, उस पर चढ़ावा देने लगे। और धीरे–धीरे वो बहुत अमीर हो गया और वहां पर मठ खड़ा हो गया। और ये जो शिष्य था ये भी सत्संग करने लगा। क्योंकि इसने गुरु से साल भर सत्संग सीखा था। यहां मठ बन गया, बहुत अमीर लोग आने–जाने लगे, काफी पैसा हो गया।

एक दिन गुरु फिर वापस शिष्य से मिलने के लिए इस जगह पर आया। देखा, अरे! इतना बड़ा मठ हो गया यहां पर और इतना बड़ा मंदिर। बहुत कुछ हो गया, दिन भर दोनों ने सत्संग किया। रात में गुरु और शिष्य जब सोए तो गुरु पूछता है कि बेटा ये बताओ कि ये हुआ कैसे? इतनी अमीरी यहां पर हो गई, इतना बड़ा मंदिर बन गया, कैसे हुआ?

तो शिष्य को हंसी आ गई, वो कहता है– आपको क्या बताएं? वो जो आपने बकरी दी थी, उसकी मृत्यु हो गई और मैंने उसकी जो वेदी बनाई, उस वेदी पर बैठकर मैं रो रहा था और लोगों ने यहां पर मनोकामना मांगनी शुरू कर दी और पूरी भी होने लगी। लोग आकर चढ़ावा भी चढ़ाने लगे। और ऐसे धीरे–धीरे यहां पर मठ बन गया।

गुरु को भी हंसी आ गई और बोले बड़ी कुलिन बकरी थी ये। मैं जहां पर रहता हूं, वहां पर इससे भी बड़ा मठ है, जो मेरा यश है, जो वहां का प्रताप है, इसकी मां की वेदी वहां पर है और उस वेदी से उस मठ की शुरूआत हुई।

ऐसे ही हम वेदियों को पूज रहे हैं, और हमारी मनोकामना पूरी हो रही है। बाउल कहते हैं– वेदियों को पूजने से कुछ नहीं होगा। दरगाह में जाने से जीवन रूपांतरित नहीं होगा। जीवन रूपांतरण होगा गुरु के पास बैठने से, जीवित गुरु के पास बैठने से हमारे जीवन का रूपांतरण होगा। और फिर जीवन में परमात्मा का अवतरण होगा। यही इस जीवन का उद्देश्य है।

सभी संत यही कहते हैं–

'गोबिंद के गुन गावउ, मानस जनमु अमोलकु पाइओ।'

इसे क्यों विरथा गवांते हो? लेकिन कैसे, गोविन्द के गुण गाएं कैसे? गुरु के पास जाने के लिए अहंकार को त्यागना होगा।

'माटी का सिल–लौढ़ा पूजते हुए देखा है।'

बंदे अपना सिर भी मुड़ा लेते हैं।

'माटिर पुतूल शील नोड़ा

खौड़ेर बौन्देर माथा नाड़ा

ऐमोन शौयतान छौन्नों छाड़ा

बेद पोड़िये।।'

माटी का सिल–लौढ़ा पूजते देखा है। बन्दे अपना सिर भी मुंडा लेते हैं। ऐसे शैतान न घर के न घाट के रह जाते हैं।

दद्दू कहते हैं– दिखावे के लिए वेद पढ़ते हैं, दिखावे के लिए लोग पूजा करते हैं, दिखावे के लिए लोग मंदिर जा रहे हैं। सब कुछ अहंकार को फुसलाने के लिए किया जा रहा है।

कबीर साहब कहते हैं–

'पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।

ताते तो चाकी भली, पींस खाए संसार।।'

अगर पत्थर को पूजने से, परमात्मा मिल जाता तो मैं तो पहाड़ की पूजा करूं। लेकिन उससे अच्छी चक्की है, जो कम से कम संसार के काम तो आती है। लोग पीसकर उससे खाना तो खाते हैं। लोग मनोकामना पूर्ति के लिए पत्थर की पूजा कर रहे हैं।

आदि शंकराचार्य कहते हैं– जिसके माथे पर जटा है, या जो सिर मुड़ाए हुए है, जिसने अपने बाल नोच डाले हैं, कुछ खास रंग के वस्त्र पहने हुए है, वह मूढ़ आंख रहते हुए भी अंधा है। केवल पेट भरने के लिए उसने बहुत नाना प्रकार के रूप बना के रखे हैं। हमने जो भी किया, हम जो भी कर रहे हैं, हमारा कृत्य ही हमारी नियति है। हम किस लिए कर रहे हैं? केवल एक्शॅन नहीं, बल्कि हमारा इंटेंशॅन क्या है, लक्ष्य क्या है? उससे हमारे जीवन का परिणाम आता है।

जैसे बीज हम बोते हैं। अगर हमने सन्यास में भी भोग का साधन खोज लिया है तो हमने अपने लिए नर्क का इंतजाम कर लिया है। हमने अपना जीवन ही खराब नहीं किया, महाजीवन भी खराब कर लिया। हम इस जीवन में तो शिष्यों के बंधन में पड़ ही गए। अगर

हम वस्त्र धारण नहीं करते, अगर हम उनके हिसाब से नहीं चलते, उनके अनुशासन में नहीं चलते तो हमारा भोजन, हमारी समाजिक प्रतिष्ठा दांव पर लग जाती है। यहां तो बेड़ियां पड़ हीं गई, और हमने महाजीवन भी खराब कर लिया क्योंकि हमने एक वेश बनाया। झूठा वेश बनाया अपने जीविकोपार्जन के लिए। उससे सुन्दर था सीधे तरीके से हम संसार में जीते, सीधे तरीके से हम नौकरी कर के, पेशा कर के, व्यवसाय कर के खाते-पीते।

आएं, अब परमगुरु ओशो के अमृत वचनों का रसपान करें–

'जिसके माथे पर जटा है, जो सिर मुड़ाए है, जिसने अपने बाल नोच डाले हैं, जो काषाय पहने है, अथवा तरह–तरह के वेश धारण किए हैं, वह मूढ़ आंख रहते भी अंधा है। केवल पेट भरने के लिए उसने बहुत रूप बना रखे हैं।

ध्यान रखना, आदमी का मन बड़ा खतरनाक है, वह संन्यास में भी संसार खोज लेता है। वह मंदिर में भी पाखंड खोज लेता है। वह साधना में भी भोग खोज लेता है। आवरण कुछ भी हो, भीतर मन अपनी पुरानी आदतों का जाल बुनता चला जाता है।

वह किसको धोखा दे रहा है? यह सवाल दूसरों को धोखा देने का नहीं है, दूसरों का कोई प्रयोजन ही नहीं है; वह अपने को ही धोखा दे रहा है। क्योंकि अंतिम निर्णय में, तुम जो भीतर थे, उसी से निश्चित होता है; तुम जो बाहर थे, उससे कुछ निश्चित नहीं होता। जीवन, तुम जो भीतर हो, उससे निर्धारित होता है; तुम जो बाहर हो, उससे निर्धारित नहीं होता। वह जो तुम्हारे भीतर चल रहा है सतत, वहां तुम रुपए गिन रहे हो; ऊपर तुम राम–राम जप रहे हो। वह राम–राम व्यर्थ है। वह जो तुमने रुपए गिने हैं, वही सार्थक है। उससे ही निर्णय होगा। क्योंकि निर्णय कोई और करने वाला नहीं है, कोई दूसरा निर्णय करने वाला नहीं है। तुम जो भीतर कर रहे हो, उसी से प्रतिपल निर्णय हुआ जा रहा है। कोई निर्णायक भी होता तो समझा–बुझा लेते, हाथ जोड़ लेते, पैर जोड़ लेते, क्षमा मांग लेते। कोई निर्णायक भी नहीं है। कहीं कोई परमात्मा बैठा नहीं है, जिसको तुम समझा–बुझा लोगे। तुमने जो किया, तुम्हारा कृत्य ही तुम्हारी नियति है। तुम्हारे कृत्य में ही फल छिपा है। तुम्हारे सोचने में ही तुम्हारे होने का सारा आधार है। तुमने जैसा सोचा।

प्रत्येक कृत्य निर्णायक है। और कृत्य का निर्णय तुम्हारे अंतस में

है, तुम्हारे बाहर नहीं। तुम बाहर से मौन खड़े हो सकते हो और भीतर तूफान उठा हो सकता है। तुम बाहर शांत दिखाई पड़ सकते हो और भीतर अशांति का दावानल हो। तुम बाहर चुप और भीतर ज्वालामुखी तैयार हो रहा हो विस्फोट पाने को। तुम्हारा बाहर मूल्यवान नहीं है, तुम्हारा भीतर ही तुम्हारा अस्तित्व है। और तुम्हारा प्रत्येक कृत्य निर्णय करता है, तुम्हारी आत्मा के स्वरूप की। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य तुम्हें निर्मित करता है। कोई निर्णायक नहीं है, तुम्हीं हो।'

बाउल फकीर संत दद्दू शाह कहते हैं–

'मिछे फेले मानुष रौतोन
बेलतौलाते कौरे गौमोन
दीन दूद्दू ताई कौरे बौर्नोन
जौतो शौब बेशातीरे।।'

मिथ्या ही मानुष रतन को तज कर बेल पेड़ के नीचे पूजा करते हैं।

दीन दद्दू कहते हैं–ये सब जितने भी लोगों को देखता हूं, ये सब व्यापारी हैं, सब व्यापार करते हैं।

पूजा लोग स्वार्थ के लिए करते हैं। दो कारण से लोग पूजा कर रहे हैं। भय के कारण और लोभ के कारण। भय है...आखिरकार भय किस चीज का है? असली भय है मृत्यु का। हमारे जीवन में कुछ बुरा ना हो जाए, कुछ अशुभ ना हो जाए, हमारे जीवन में सब सुन्दर होता रहे, इसलिए पूजा कर रहे हैं। डर से भी पूजा कर रहे हैं और लोभ के कारण भी। हमें जो चाहिए, हमारे अहंकार को जो–जो चाहिए, वो सब घेरे हमारे अहंकार के कैसे और बड़े होते जाएं, इसके लिए भी पूजा कर रहे हैं। सब याचना को पूजा कह रहे हैं। याचना पूजा थोड़ी है। मांग करने के लिए हम मंदिर जाते हैं...मांगने के लिए।

कोई ऐसा व्यक्ति है जो बिना मांगने के लिए सिर्फ सिर नवाने के लिए मंदिर जाता है। केवल धन्यवाद देने के लिए मंदिर जाता है। वो व्यक्ति जो भी होगा, संत है। वो भक्त है, जो सिर्फ प्रभु के चरणों में सिर झुकाने जाता है। वही सच्चा संत है। जो केवल धन्यवाद देने जाता है। जब हम संसार में किसी उद्देश्य से प्रेम करते हैं, तो उस प्रेम को क्या कहते हैं हम? प्रेम नहीं कहते, स्वार्थ कहते हैं। और फिर हम परमात्मा से कहते हैं कि पूजा कर रहे हैं और याचना सहित हम मांग रखते हुए पूजा कर रहे हैं तो किस तरह की पूजा है? किस तरह की प्रार्थना है?

सच्ची प्रार्थना है शुद्धतम धन्यवाद का भाव– अहर्निश, अकारण, अहेतुक अहोभाव।

हर पल, प्रतिपल उठता हुआ धन्यवाद––यही वास्तविक प्रार्थना है।

एक बार एक ईसाई फकीर बहुत साधना करता था। तीस साल तक साधना करता रहा। रोता रहा, परमात्मा को याद करता रहा, लेकिन परमात्मा के दर्शन नहीं हुए। वो बिल्कुल निराश होकर ऊपर ऊंचाई पर साधना कर रहा था। पहाड़ से नीचे उतरने लगा, आ रहा था संसार में कि अब परमात्मा तो मिला ही नहीं चलते हैं संसार में वापिस। नीचे उतरते–उतरते अचानक एक जगह पर उसे एक भेड़ दिखाई दे गई और उसे चोट लगी हुई थी, खून निरंतर बह रहा था। ईसाई फकीर को उस भेड़ पर दया आ गई, उसने उस भेड़ को पट्टी बांधी दवाई लगाई, अचानक देखता है कि उसे परमात्मा के दर्शन हो गए। वो तो हतप्रभ रह गया। उसने बोला– जब मैंने तीस साल साधना की, तब तो आपने दर्शन नहीं दिए और जब मैं सब साधना छोड़ चुका और अब तो संसार की ओर जा रहा था, तब आप दर्शन दे रहे हैं।

तो परमात्मा ने कहा– 'अब तक तूने जो साधना की थी, उसमें स्वार्थ छिपा हुआ था। उसमें कामना छिपी हुई थी। चाहे वह कामना परमात्मा के दर्शन की क्यों ना हो? वो भी कामना है। और अब जो तूने किया, वो निस्वार्थ किया। ये प्रेम के कारण किया। और तुझे पता है, मैं प्रेम का भूखा हूं।'

जीवन से प्रेम करो। जीवन का सम्मान सीखो। होशपूर्वक, भावपूर्वक, संवेदनशील होकर जियो। यही सच्चा अध्यात्म है। ध्यान में घटती है निर्विचार जागृति। जागृति में अवतरित होती है शांति। शांत हृदय में उत्पन्न होती है अलौकिक प्रीति। वही प्रीति शुद्ध होते–होते बन जाती है भक्ति। अंततः भक्ति ही मुक्तिदायी है। यह सिर्फ बाउल फकीरों का उपदेश ही नहीं, समस्त आध्यात्मिक व्यक्तियों की शिक्षा का सार–निचोड़ है।

हरि ओम तत्सत्।

रोशनी जपने से अंधेरा मिटेगा?

'तौत्तो कोरे आँधार घौरे शेधौन कि जाय रे चेना
आँधारे खूँज़ले पौरे पोड़बी फेरे, शे धौन हाते आर पाबेना।।
जेखाने आछे शे धौन, मानिक रौतोन,
जौतोन बिना जाय कि जाना,
जालाये रौंगेरबाती, तोड़ित–भाति,
चिने ने राँग की शोना।।
कौतोजोन कौतो भाबे तारे भाबे,
भाबे रे तार लेना–देना,
शे जे शौब भाबातीत
भाब ब्यातीत तारे लाभ–हौबे ना।
निशीथे शाखा खूले शोशीर कोले
औरूपेर रूप देखे ने ना।।
हाराले शोशीर किरौन
हाराबी धौन
भोर होले शे आर रौबे ना
दीन हीन पून्ये बौले, आलोक जेले
पौलोके शे रूप देखें ने ना।
श्रीगुरूर कृपा बिने औन्धो जौनार नौजोरे पौड़ेना।।'

'केवल तत्व ज्ञान से अंधेरे में ही उस धन को नहीं पहचानोगे, अंधेरे में ढूँढ़ते ही रहोगे; वह धन, वह रतन तुम्हे हाथ नहीं आएगा। जहाँ वह धन है, माणिक रतन है, बड़े जतन से जाना जाता है। उसके लिए तो रास रंग की बाती जलानी पड़ती है, वह तो बिजली की भाँति है। उसी बाती में जान ले मन कि वह सोना है, या पीतल है।

कितने ही जन, कितने प्रकार से उसे सोचते हैं। उससे कैसे लेना–देना करेंगे, सोचते रहे हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि वह तो भावातीत है। भाव बिना उसे जान न पाओगे। निशा की शाखा में, शशि की गोद में ही उस अरूप के रूप को निहार पाओगे।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

अध्यात्म–लोक में बड़ी से बड़ी भूल जो होती है, वह 'शब्द' को 'सत्य' समझने की भूल है। 'प्रकाश' शब्द स्वयं प्रकाशित नहीं है। रोशनी–रोशनी जपने से रोशनी नहीं हाती। 'रसो वै सः' रूपी परमानंद प्रभु को जानने के लिए रास–रंग की बाती जलानी पड़ती है, माटी के इस देह रूपी दीपक में स्नेह (प्रीति) का स्नेह (तेल) काम आता है। बौद्धिक ज्ञान से अंधेरा नहीं मिटता। बुद्धि में ईंधन नहीं है, तेल नहीं है कि वह जीवन में उजियारा कर दे। किंतु हृदय में अवश्य वैसी ऊर्जा समाई है जो अंधियारे को मिटा सकती है। बाउल फकीर पून्यो, उसी हार्दिकता के, संवेदनशीलता के, प्रीति के गुणगान गाते हैं; तथा बौद्धिकता के प्रति सावधान करते हैं–

'तौत्तो कोरे आँधार घौरे शेधौन कि जाए रे चेना
आँधारे खूँजले पौरे पोड़बी फेरे, शे धौन हाते आर पाबेना।।'

केवल तत्व ज्ञान से अंधेरे में ही उस धन को नहीं पहचानोगे, अंधेरे में ढूँढ़ते ही रहोगे; वह धन, वह रतन तुम्हारे हाथ नहीं आएगा।

तत्व ज्ञान से आशय है– शास्त्र से जो ज्ञान मिलता है, बाहर से जो ज्ञान मिलता है, शब्द ज्ञान जिसका मतलब है। शब्द ज्ञान से परमात्मा नहीं मिलता। तर्क–वितर्क करने से परमात्मा नहीं मिलता, चिंतन–मनन से परमात्मा नहीं मिलता। बौद्धिक ज्ञान काम नहीं आता, बुद्धि के पार है परमात्मा।

हम जब पैदा हुए थे, बच्चा जब पैदा होता है तो कोरा पैदा होता है। क्या वह कोई शब्द, कोई भाषा लेकर आता है? वह तो मौन लेकर आता है। यहां आकर भाषा, शब्द का ज्ञान उसे होता है। शब्द हमारे भीतर नहीं जाते, शब्द अंतर जगत तक ही जाते हैं। और जब हम भीतर जाएंगे, अंतर आकाश में जाएंगे, अपने निराकार देश में जाएंगे; वहां शब्द नहीं जाते तो वहां कैसे शब्द सहायता कर सकते हैं, परमात्मा को खोजने के लिए? जहां शब्द जाते ही नहीं, तो शब्द की सहायता से कैसे हम परमात्मा खोज सकते हैं?

वहां केवल मौन है, वहां केवल मौन जाता है, वह मौन सीखना होगा। जिस मौन को लेकर हम पैदा हुए थे, फिर से उस मौन को सीखना होगा। और जब हम मौन में होते हैं, उस मौन में परमात्मा का होना प्रतीत होता है। उस मौन में उसकी ध्वनि सदा सुनाई देती है; उस मौन में उसकी अनुभूति होती है।

एक बार की घटना है; एक शिष्य अपने गुरु से बार–बार पूछता था आत्म ज्ञान कैसे हो? गुरु मौन रह जाता। और भी वह प्रश्न करता कि क्रोध आता है, उससे कैसे निवारण हो? कभी–कभी अशांति आ जाती है। कई प्रश्न रहते थे जीवन के। सब प्रश्नों के उत्तर गुरु देता था। लेकिन फिर जब वह कहता था आत्मज्ञान कैसे हो? गुरु मौन रह जाता। एक बार शिष्य पूछ ही बैठा कि आप हर प्रश्न का उत्तर इतनी कुशलता से देते हैं और जब मैं कहता हूं आत्मज्ञान कैसे हो, आप मौन रह जाते हैं।

गुरु ने कहा– पागल! यही तो मेरा उत्तर है कि अगर आत्मज्ञान चाहिए तो मौन हो

जाओ। मौन में ही वह ज्ञान मिलता है। ध्यान क्या है?––जब हम शांत हो जाएं, अपने भीतर चले जाएं और उसे जान लें, जो सब कुछ जानता है, जो सब कुछ जानने वाला है। यह है ध्यान। और जब हम शब्द ज्ञान से उसे खोजते हैं, ज्ञान से उसे खोजते हैं तो महा अंधकार में भटक जाते हैं।

उपनिषदों का वचन है कि ज्ञानी महा अंधकार में भटकता है। अज्ञानी अंधकार में ही भटकता है। ज्ञानी महा अंधकार में भटकता है क्योंकि शब्द ज्ञान बहुत बड़ी बाधा बन जाता है, रूपांतरण कुछ भी नहीं होता। तुम्हें लगता है, धोखा होता है जानने का, लेकिन रूपांतरण आत्म–रूपांतरण नहीं होता।

सूरज की पेटिंग से कभी धूप आई है; या भोजन की रेसिपी से कभी पेट भरा है; या पानी का सूत्र पढ़ते रहो, एच–टू–ओ, रटते रहो बारम्बार, कितनी बार दुहरा लो लेकिन क्या प्यास बुझ सकती है? प्यास तो पानी से ही बुझेगी।

ऐसे ही परमात्मा की प्यास शब्दों से नहीं बुझेगी, शब्दों के पार जाना होगा। उस मौन में परमात्मा की प्यास बुझ जाती है, और एक तृप्ति का एहसास आता है भीतर।

'जेखाने आछे शे धौन, मानिक रौतोन,
जौतोन बिना जाए कि जाना,
जालाये रौंगेरबाती, तोड़ित–भाति,
चिने ने राँग की शोना।।'

जहाँ वह धन है, माणिक रतन है। बड़े जतन से जाना जाता है। उसके लिए तो रास रंग की बाती जलानी पड़ती है, वह तो बिजली की भाँति है। उसी रोशनी में जान ले, क्या सोना है और क्या पीतल है?

जतन––जतन यानी युक्ति, उपाय। शिव सूत्र में एक सूत्र है गुरु उपाय है, गुरु स्वयं उपाय है; और गुरु ही उपाय बता सकता है कि कैसे हम ध्यान में उतर सकें? ध्यान क्या है गुरु ही बता सकता है; कैसे हम उस निष्क्रिय जागरूकता को उपलब्ध हो सकें? कैसे हम उस अवस्था में पहुंच जाएं, जहां हम कुछ ना कर सकें, बस हो सकें। उसकी युक्ति गुरु की मौजूदगी ही बता सकती है। उस युक्ति से गुरु भांति–भांति की विधियों, छोटी–छोटी विधियों द्वारा अविधि में पहुंचा देता है। हर साधक को भ्रम है कि हमें कुछ करने से परमात्मा मिलेगा, साधना करने से परमात्मा मिलेगा। बाहर के जगत में जब भी हमने कुछ पाया है तो कुछ कर के पाया है। बिना किए कुछ नहीं मिला है, तो वही तर्क भीतर के जगत में जाता है। मन कहता है कि बिना किए कैसे परमात्मा मिलेगा? और वह करने में, और–और करने में संलग्न रह जाता है।

एक बार की बात है, एक युवक घूमने जा रहा था, जंगल घूमने का शौकीन था। घुमते–घुमते भूल ही गया वापस लौटना है, सांझ हो गई, सर्द रात थी, जल्दी अंधेरा हो गया, लौटना मुश्किल था। घबड़ा गया कहां जाए? पास कोई गांव भी दिखाई नहीं दे रहा था। अचानक उसे शेर के दहाड़ने की आवाज आई, वह घबड़ा गया। बचने की लालसा में

उसका पांव ही फिसल गया। उसने देखा कि वह एक गहरी खाई में गिरता जा रहा है, गिरते–गिरते उसके हाथ में एक पेड़ की डाल आ गई, लटकती हुई डाल उसने पकड़ ली। सर्द रात, अपनी जान बचाने के लिए युवक ने डाल को जोर से पकड़ा। शेर के दहाड़ने की आवाज आ रही। हाथ सर्दी में अब छूटते जा रहे, अब छूटी डाल कि तब छूटी, और जोरों से पकड़ता है, अपने पूरे प्राण लगा देता है पकड़े रखने के लिए।

अब क्या करता, लेकिन कुछ समझ ही नहीं आता कि कैसे प्राण बचाए? घबरा रहा था कि अब मरा कि तब मरा। अचानक उसे चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी। उसे लगा जान बच गई, शायद जल्दी सुबह हो जाएगी। और फिर भोर की पहली किरण उसने देखी तो बहुत हौसला आ गया, और जैसे ही थोड़ा सा उजाला हुआ उसने नीचे देखा, अरे! वहां तो खाई ही नहीं थी, दो इंच बाद जमीन थी। उस अंधकार में वह नाहक ही सोचता रहा कि वह खाई में गिरने वाला है, और पेड़ को पकड़ते हुए अपनी जान बचाता रहा।

ऐसा भ्रम होता है अंधकार में। जब तक जीवन में अंधकार है...अंधकार एक ही है, अहंकार का...और जब तक अंहकार है, तब तक कुछ करते ही रहोगे, करते ही रहोगे और परमात्मा की जमीन से दूर रहोगे। प्रकाश कैसे आए जीवन में? इसका जतन गुरु बताता है। जिस दिन जीवन में प्रकाश उतर आता है, पाते हैं सारे भ्रम मिट गए। हम नाहक ही भयभीत थे कि हम खाई में लटके हुए हैं, परमात्मा की जमीन तो बस पास ही है, उसी में हम रहते हैं और हम सोचते हैं कि परमात्मा हमसे दूर है। उसी के कारण हम जीवित हैं। उसी में हमारा जीवन है और उसे हम अपने से दूर सोचते हैं। और खोजने में लग जाते हैं। दूर हो तो हम खोज सकते थे; कुछ कर–कर के, क्रियाओं से लेकिन जबकी वह दूर है ही नहीं, हमारे ही भीतर है, हमारा ही स्वभाव है। तो हम कुछ कर के कैसे पा सकते हैं? कितने ही जन्म कितने ही प्रकार से उसे सोचते हैं? बस सोचते रहते हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि वो तो भावातीत है। भावातीत हुए बिना उसे कैसे जान पाओगे?

'कौतोजोन कौतो भाबे तारे भाबे,
भाबे रे तार लेना–देना,
शे जे शौब भाबातीत
भाब ब्यातीत तारे लाभ–हौबे ना।
निशीथे शाखा खूले शोशीर कोले
औरूपेर रूप देखे ने ना।।'

लोग सोचते हैं कैसे परमात्मा को पाएं? कैसे उसे पा सकेंगे? तरह–तरह के तर्क करते रहते हैं। लेकिन किसी विधि से मिलता नहीं है परमात्मा।

'कौतोजोन कौतो भाबे तारे भाबे,
भाबे रे तार लेना–देना,

वह मिलेगा...भावतीत...भाव के पार जाना पड़ेगा। विचारों से परमात्मा नहीं मिलता, तर्क से परमात्मा नहीं मिलता। ऐसे ही भाव के भी पार जाना पड़ेगा। विचारों के पार, भाव के

पार, जहां कुछ भी नहीं जाता, उस प्रदेश में, उस देश में, वहां कुछ भी नहीं जाता; जहां न समय है, न रात है, न दिवस है, कुछ भी नहीं जाता वहां पर।

कैसे हम विचारों के पार जांए? उस प्रदेश में जाने के लिए सब चीजों के पार जाना होगा। हमारा होना विचार के तल पर है, भाव के तल पर है। पहला तल है शरीर का तल। फिर एक तल है विचार का तल और फिर एक तल भाव का तल है। सब तलों के पार जाना होगा हमें। उस मौन में, उस सन्नाटे में हमें डूबना होगा; वहां उसकी अनुभूति होगी, लेकिन यह युक्ति गुरु ही बताएगा।

लोग सोचते हैं, भावातीत भाव के पार जाना है तो फिर निर्भाव हो जाओ, भावशून्य हो जाओ। भावों के पार तो जाना है मगर अपने भीतर। लेकिन फिर जब जगत में आएंगे तो भावशून्य होकर थोड़े ही जिएंगे। तब प्रेम से रिक्त होकर थोडे ही जिएंगे। तब तो प्रेमपूर्ण सजगता साधनी होगी, यह युक्ति गुरु बताता है।

आएं, परमगुरु ओशो को सुनते हैं, वे ध्यान के बारे में हमें कुछ बताएंगे–

'ध्यान दो ढंग से किया जा सकता है: एक– कि तुम सिर्फ अपने को भूलना चाहते हो; दो– कि तुम अपने को बदलना चाहते हो। और जो तुम्हारा भीतर कारण होगा, उसी के फल लगेंगे; तुम जो बोओगे, वही काटोगे। अगर तुमने ध्यान में अपने को मिटाने का बीज बोया, तो फसल में तुम पाओगे कि तुम मिट गए, परमात्मा बचा। अगर तुमने ध्यान में अपने को खोने का, सिर्फ भुलाने का बीज बोया, तो तुम पाओगे– ध्यान भी नशा बन गया; घड़ी भर को भूले, फिर वही का वही हो गया; फिर वापस अपनी जगह आ गए, शायद पहले से भी बदतर; क्योंकि यह घड़ी भर भी जीवन की व्यर्थ गई।

तो मैं निश्चित कहता हूं कि भजन में खो जाना नशा है, अगर तुम खो जाने के लिए ही गए। अगर तुम मिटने के लिए गए, तो नशा नहीं है– तो जागरण है, तो होश है, तो अमूर्च्छा है, तो अप्रमाद है।

खो जाने के लिए भजन करना नशा है; भजन करते–करते खो जाना नशा नहीं है। फिर से दोहरा दूं। थोड़ा जटिल है, बारीक है, लेकिन समझ में आ जाएगा। खो जाने के लिए भजन करना नशा है– सिर्फ खो जाने के लिए।

जीवन में चिंता है, दुख है, पीड़ा है, तनाव है, अशांति है, संताप है। इससे बचना है; इसको भूलना है; कहीं भी अपने को व्यस्त कर लेना है, ताकि यह भूल जाए। तो कोई सिनेमा में जाकर बैठ जाता है, दो घंटे भूल जाता है; कोई शराबघर में बैठ जाता है, दो घंटे भूल जाता है; कोई मंदिर में जाकर कीर्तन करने लगता है, वहां भूल जाता है। ये भूलने की अलग–अलग विधियां हुईं, लेकिन तीनों की नजर एक है– चिंता को भूलना है।

लेकिन घर लौट कर चिंता प्रतीक्षा कर रही है। फिर तुम वही के वही हो, वे दो घंटे व्यर्थ ही गए; उनसे कुछ सार न हुआ। उन दो घंटों के कारण चिंता मिटेगी नहीं।

भूलने की खोज करना नशा है, शराब है। और तुम चाहो तो धर्म की भी शराब बना सकते हो। लेकिन भजन करते खो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। तुम खोने गए नहीं थे; तुम्हारी कोई आकांक्षा अपने को भूलने की न थी; तुम किसी चिंता से बचने को न गए थे; तुम चिंता से उठने गए थे, जागने गए थे। चिंता को मिटाना है, भूलना नहीं है। तुम चिंता मिटाने गए थे; तुम जीवन का सार समझने गए थे; तुम जीवन की एक ऐसी घड़ी निर्मित करने गए थे, जहां चिंता उठनी असंभव हो जाए, जहां अशांति न उठे, जहां बेचैनी पैदा न हो। तुम स्वभाव की तलाश करने गए थे; तुम तुम भूलने न गए थे, जागने गए थे।'

हम अपनी युक्ति से, अपने उपाय से परमात्मा को नहीं पा सकते, ध्यान में नहीं पहुंच सकते, हमें युक्ति सीखनी होगी गुरु से। एक बार की बात है झेन मठ में एक युवक घुमने गया, उसे सब जगह घुमाया गया। वहां के जो संन्यासी थे, झेन मठ थी, वो घुमाते गए सब जगह। किचन दिखाई, डायनिंग रूम दिखाया; सब जगह के बारे में बताया कि यह स्नान करने की जगह है, यहां सब लोग स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं, यहां लोग रहते हैं, यह पुस्तकालय है। बीच–बीच में वह युवक पूछता कि यह जो बड़ा सा गृह दिखाई दे रहा है, यहां क्या होता है?

झेन फकीर मौन रह जाता, बार–बार पूछता वह युवक कि इस जगह, यह जो बड़ा हॉल दिखाई दे रहा है, यहां क्या करते हैं सब लोग? और फिर झेन फकीर मौन हो जाता। उसने अंततः पूछ ही लिया, आप सब घरों के बारे में बता रहे हैं, यहां यह होता है, वहां वह होता लेकिन मैं जो पूछ रहा हूं कि इस घर में क्या होता है? बड़े से घर में, तो आप बताते ही नहीं, मौन रह जाते।

तो झेन फकीर ने बोला, यही तो बता रहा हूं कि यहां लोग कुछ करते ही नहीं हैं। जहां कुछ नहीं करते वहां के बारे में क्या बताऊं? सभी वहां बस होते हैं, करते कुछ भी नहीं हैं। लोग सिर्फ होते हैं, मात्र होते हैं मौन में।

उस पूर्ण अकर्ता भाव में, निष्क्रिय जागरूकता में रास–रंग की बाती जल उठती है। 'रसो वै सः' रूपी परमानंद प्रभु को जान लिया जाता है। जानना कहना भी उचित नहीं, जानने वाला वही हो जाता है। शून्य होकर ही शून्य को जाना जाता है। बाउल फकीरों का जोर है कि माटी के इस देह रूपी दीपक में स्नेह (प्रीति) का स्नेह (तेल) काम आता है। बौद्धिक ज्ञान से अंधेरा नहीं मिटता। बुद्धि, सोच–विचार, चिंतन–मनन, स्मृति–कल्पना आदि मन की क्रियाएं हैं। तन की क्रियाएं स्थूल हैं, मन की क्रियाएं सूक्ष्म है। दोनों प्रकार की क्रियाओं के परे, चेतन सदैव निष्क्रिय–साक्षी है। तन–मन के पार चेतन में रमो।

हरि ओम् तत्सत्!

त्रिवेणी संगम में ज्ञानोदय

'आर कैनो मोन भ्रोमिछो बाहिरे
चौलो ना आपोन औन्तौरे।
तूभी बाहिरे जारे तौत्तो कौरो
ओबिरतो शे जे आज्ञाचौक्रेर उपौरे।।
कूलोकूण्डोलिनी–शोक्ती रौय मूलाधारे
प्रोनोयेर जोगे जागाओ ताहारे
शोक्ती चेतौन होले पूर्णानौन्दो मिले तोमार
शौदानौन्दो शौरूप एकबार देखोना। बामे
इड़ानाड़ी, दोक्खिने पिंगला
रौजो–तौमो गुने कोरितेछे खैला
मोध्ये बिराजे सुषुम्ना
तारे धौरो ना कैनो शादोरे।।
तौखोन आत्तो तौत्तो–ज्ञाने
उदौय हौबे प्राने
तूभी जारे खोजो शौदा बाहिरे।।'

ओ मन! अब भी बाहर के भ्रम में क्यों पड़ा है, चलो ना अपने अंतर मन में। बाहर जिसको तुम खोज रहे हो, वे तो अविरल आज्ञाचक्र में विराज रहे हैं।

मूलाधार में जो कुण्डलिनी शक्ति है, प्रेम भाव से उसे जगाओ। उसी शक्ति चैतन्य से फिर पूर्णानंद की अनुभूति कर सकोगे। अपना सदानंद स्वरूप एक बार देख तो लो।

वाम में इड़ा, दक्षिण में पिंगला रजो–तमो गुण जिसमें समाए। मध्य में सुषुम्ना है, जिसे सादर प्रेमभाव से धारण करना पड़ता है। तभी तो आत्मज्ञान का उदय होता है प्राणों में, और इसे ही तुम बाहर खोज रहे हो। ये त्रिवेणी संगम तो तुम्हारे अंतर में ही समाया है।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत नवीन कहते हैं–

‘आर कैनो मोन भ्रोमिछो बाहिरे
चौलो ना आपोन औन्तौरे।
तूभी बाहिरे जारे तौत्तो कौरो
ओबिरतो शे जे आज्ञाचौक्रेर उपौरे।।’

ओ मन! अब भी बाहर के भ्रम में क्यों पड़ा है, चलो ना अपने अंतर मन में। बाहर जिसको तुम खोज रहे हो, वे तो अविरल आज्ञाचक्र में विराज रहे हैं।

मन सदा बाहर ही खोजता है। उसके पास भी तर्क है, बच्चा पैदा हुआ, उसे भूख लगती है, भोजन बाहर मिलता है, दूध बाहर मिलता है। प्यास लगती है, पानी बाहर मिलता है, प्रेम बाहर मिलता है। फिर बड़ा होता है। धीरे–धीरे जो भी चाहिए उसे सब कुछ तो बाहर ही मिलता है। प्रेम बाहर मिलता है, सुख के हर साधन बाहर मिलते हैं। तो धीरे–धीरे मन को यह भ्रम हो जाता है कि जब भी कुछ चाहिए वह बाहर मिलता है।

भीतर जब परमात्मा की प्यास जागती है, परमात्मा से मिलन चाहिए, परमात्मा चाहिए, तो वह बाहर खोजने लगता है। उसे आज तक सब कुछ बाहर ही मिला है। परमात्मा भी बाहर खोजता है, आनंद भी बाहर खोजता है, मगर मिलता नहीं। आनंद से सुख मिलता था, सुख के साधन मिल जाते थे, सुख की भी झलकें मिलती थीं लेकिन बाद में दुख मिलता। सुख के साधन आने से आनंद थोड़े ही मिलता है? साधन आ जाते हैं, आनंद नहीं मिलता, क्योंकि आनंद बाहर नहीं है। मन खोज में है, वह आनंद की खोज में है और उस आनंद की खोज में वह खोजते चले जाता है, खोजते चला जाता है, तरह–तरह से रस परिवर्तन करता रहता है लेकिन आनंद नहीं मिलता। क्योंकि बाहर है ही नहीं, आनंद अपने भीतर है।

वही कह रहे हैं संत नवीन कि ऐ मेरे मन! अब भी बाहर के मन में पड़े हो, इतनी बार तुमने सुख के साधन जुटाए, सुख नहीं मिला। सुख के साधन इकट्ठे हो गए। कभी आनंद की झलक तो मिल ही न सकी। तुम्हें सीखना चाहिए कि हर सुख एक दिन दुख में ले जाता है; तब भी तुम भ्रम में पड़े हो कि बाहर आनंद मिलेगा? ऐ मेरे मन! भ्रम में क्यों पड़े हो? अपने अंतर मन में चलो, तुम जिसे खोज रहे हो, वह तो अविरल आज्ञाचक्र के ऊपर विराज रहा।

आज्ञाचक्र द्वार है– स्वयं में प्रवेश का, अपने अंतर में प्रवेश का, निराकार के लोक में, उस देश में पहुंचने का जहां आनंद है। उस द्वार से हम सहस्त्रार पर पहुंचते हैं और वहां परमात्मा की अनुभूति में डूबते हैं। जब हम उस अनुभूति में डूबते हैं, परमात्मा की ध्वनि को सुनते हैं, उसके स्वर में डूबते हैं तो भीतर आनंद का खजाना, आनंद का स्रोत फूट पड़ता है। और उसे ही हम खोज रहे हैं। उस जगह नहीं जाते हैं जहां वह मौजूद है।

एक बहुत प्यारी कहानी है– एक बहुत गरीब लकड़हारा है, लकड़ी काट कर अपना जीविकोपार्जन करता है। एक फकीर रोज रास्ते में जाते हुए उस गरीब लकड़हारे को देखता है। फकीर ने उसे पास बुलाया और कहा कि मेरे पास आओ, मैं तुम्हें और आगे का रास्ता बताता हूं, जहां तुम कम मेहनत से और ज्यादा धन कमा सकते हो। यहां इधर से जाओ, एक जंगल है,

वहां तुम्हें चांदी की खदान मिलेगी।

लकड़हारा गया। उसे चांदी की खदान मिल गई; वह चांदी इकट्ठी करता, खदान से लाता, बेचता और अपना गुजर–बसर ज्यादा बेहतर ढंग से करने लगा। फिर एक दिन वह वहां से गुजर रहा था, फकीर ने फिर बुलाया, कहा कि तुम मेरे पास आओ, और आगे की बात तुम्हें बताता हूं। आगे और खदान है, वहां सोने की खदान है, वहां से तुम सोना निकाल सकते हो और बहुत अमीर हो सकते हो।

गया लकड़हारा, सोना मिल गया, सोना बेचने लगा, बहुत अमीर हो गया। एक बार फिर वह गुजर रहा था; फकीर ने फिर से उसे पुकारा। लकड़हारा गया, बोला अब मुझे कुछ नहीं चाहिए, इतना धन मिल गया है, सोने से बड़ा क्या हो सकता है? और आगे कहां भेज रहे हैं?

फकीर ने कहा– पागल! तुझे लगता नहीं कि मुझे सब खदानों का पता है, मगर फिर भी मैं वहां नहीं गया और मैं यहां आराम से बैठा हुआ हूं, ऐसी क्या बात है? पूछो मुझसे कि मुझे क्या मिल गया है?

एक और खजाना है, एक और खदान है और वह खदान हमारे भीतर है; जिससे कि वह खजाना निकलता है, जिसका नाम आनंद है, जिसके लिए तुम सारा कुछ कर रहे हो।

भीतर कोई नहीं जाता, बाहर–बाहर सब खोजते हैं। भीतर लौटना है, आज्ञाचक्र के द्वार से भीतर आने की कला गुरु बताता है।

'मोको कहां ढूंढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।

ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काबे कैलास में।।'

कहां–कहां खोज रहे हैं सब? काबे में, कैलाश में, गिरनार में, तीर्थों में, व्रत करने में।

'ना मैं क्रिया करम में रहता, नहिं जोग संन्यास में।'

'ना मैं क्रिया करम में रहता'––सोचते हैं, कुछ क्रिया करम करने में मिल जाएगा। सब कुछ जो भी संसार में मिला है, बैठ कर नहीं मिला, कर के मिला है। इसलिये सोचते हैं आनंद भी तो कर के मिलेगा।

फिर समझ में आता है, क्रियाओं से नहीं मिलता, संसारिक क्रियाओं से नहीं मिलता तो चलो योग वैराग कर लेते हैं। वैराग धारण करने के बाद भी क्रिया जारी रहती है। उन क्रियाओं से भी नहीं मिलता; योग क्रियाओं से, वैराग्य से, किसी चीज से परमात्मा का कार्य–कारण का संबंध ही नहीं है। परमात्मा अकारण है और हमारे भीतर है। इसलिए किसी कार्य–कारण से नहीं मिलता वह।

'खोजी होए तो तुरंत मिल जाऊं, इक पल की तलाश में।'

अगर भीतर प्यास है तो परमात्मा तुरंत मिल सकता है। मगर कैसे?

'कहै कबीर सुनो भई साधो, सब सांसों की सांस में।'

भीतर सांस आ रही है, जा रही है। सांस जब भीतर आती है, पल भर के लिए एक गृह पाती है, बाहर मुड़ने के पहले एक ठहराव है। उस छोटे से गैप को पकड़ो। फिर सांस बाहर से भीतर मुड़ती है, तो भीतर मुड़ने के पहले फिर एक गैप है। सांस भीतर आ रही है, बाहर जा रही है, इस आने जाने में गैप्स हैं...अंतराल हैं। उस गैप को जो पकड़ता है, उस सांस को जो

पकड़ता है, उसके भीतर एक शांति उतर आती है। और उस शांति में, उस सन्नाटे में परमात्मा का स्वर गूंज उठता है और जो उस गूंज में डूब जाता है, उसके भीतर आनंद की बरसात, आनंद की झड़ी लग जाती है।

'कूलोकूण्डोलिनी–शोक्ती रौय मूलाधारे
प्रोनोयेर जोगे जागाओ ताहारे
शोक्ती चेतौन होले पूर्णानौन्दो मिले
तोमार शौदानौन्दो शौरूप एकबार देखोना।'

मूलाधार में जो कुण्डलिनी शक्ति है, प्रेम भाव से उसे जगाओ, उसी शक्ति के चैतन्य से फिर पूर्णानंद की अनुभूति कर सकोगे। संत नवीन कहते हैं–तेरा सदानंद स्वरूप एक बार देख तो लो। हमारे मूलाधार में अनंत शक्ति का भण्डार है।

कुण्डलिनी शक्ति इसलिए कहते हैं; जैसे कि कोई सांप है और वह कुण्डलिनी मार के बैठा हुआ हो। हमें उसकी लंबाई का थोड़े ही पता चल सकता है? ऐसे ही अनंत स्रोत है हमारे भीतर शक्ति का। कहते हैं उसे जगाओ।

जब ये शक्ति जागती है, मूलाधार से उठकर सहस्त्रार पर जाती है, उसका नाम कुण्डलिनी है। लेकिन एक बात गौर करना, बोल रहे हैं भाव से उसे जगाओ, प्रेमभाव से उसे जगाओ। प्रेमभाव से क्यों जगाओ उसे? अगर हम प्रेमभाव से उसे नहीं जगा रहे, और हमारे भीतर अहंकार है तो शक्ति घातक है। जब तक अहंकार है, तब तक हम शक्ति का दुरुपयोग ही कर सकते हैं। जब हमारे भीतर प्रेम जाग जाता है, तब हम शक्तियों का सदुपयोग कर सकते हैं। नहीं तो हम शक्ति का दुरुपयोग ही करेंगे।

उपनिषद् कहते हैं, जब तक हमारे भीतर अहं भाव है, तब तक ज्ञान हो ही नहीं सकता। जो भी ज्ञान की अनुभूति हो रही वह केवल भ्रम होगी। जिस दिन अहंकार विदा होता है, उस दिन वास्तविक ज्ञान होता है। और यह अहंकार कैसे विदा होगा? शक्ति जगाने से नहीं होगा, शक्ति के साथ प्रेम का नाता? प्रेम जोड़ना है भावपूर्वक। नहीं तो यह भ्रम हो जाएगा, एक अहंकार पैदा होगा कि हमारी कुण्डलिनी शक्ति जाग गई। हमारे पास अनंत ऊर्जा का स्रोत है, हम विशेष हो गए। और जब तक यह भाव है, यह भाव ही तो बाधा है, यह भाव ही तो बाधा है परमात्मा के अवतरण में।

परमगुरु ओशो ने कुण्डलिनी ध्यान की विधि बनाई है, कैसे कुण्डलिनी को जगाया जाए? जिसमें की पहले चरण में हम पूरे शरीर को कंपित करते हैं, ऊर्जा को जगाते हैं, हम इस जागी हुई ऊर्जा को नृत्य के द्वारा आरोहण करते हैं; उसका ऊर्ध्वगमन करते हैं जो कि सहस्त्रार पर जाने लगती है। नृत्य में जब हम होते हैं, तो प्रेम अपने आप घटित होता है, भाव में हो ही जाते हैं। एक नृत्य करता हुआ व्यक्ति अहंकार में नहीं हो सकता, अहंकारी व्यक्ति नृत्य ही नहीं कर सकता। तो प्रेम अपने आप ही जुड़ गया इसमें। नृत्य के द्वारा हमने ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी किया।

तीसरे चरण में फिर सक्रिय जागरूकता के साथ, बाहर एक संगीत बज रहा है हम उस संगीत को सुनते हैं। संगीत को अपनी याद के साथ सुनते हैं। और फिर चौथे चरण में हम इस जागी हुई ऊर्जा को काम करने देते हैं। लेट जाते हैं शवासन में। और जो ऊर्जा भीतर जगी है, कुण्डलिनी ऊर्जा– वह ऊर्जा फैला दी गई थी नृत्य के माध्यम से। अब वह आनंद बनकर भीतर

बरसती है। जब हम शवासन में लेटते हैं, तभी उसे महसूस कर सकते हैं। फिर हम उस आनंद भाव में डूब जाते हैं।

आएं, अब हम परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

जुगत–जुगत की तृषा बुझानी, कर्म–मर्म अधि–व्याधि टरै। सब पाप, कर्म इत्यादि, सब समाप्त हो गए, सब जल गए। कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै। और इस दसवें द्वार को जिसने जान लिया, वह अमर हो गया। उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है।

धर्म अमृत की खोज है। अमृत दसवें द्वार का अनुभव है। कैसे तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी जीवन शक्ति, पहले द्वार से उठे और दसवें तक पहुंच जाए– –यही सारी ध्यान–विधियों का लक्ष्य है।

यहां हम कुंडलिनी ध्यान का प्रयोग कर रहे हैं। यह ध्यान तुम्हारी ऊर्जा को पहले द्वार से उठा कर दसवें तक ले जाने का मार्ग है। इसलिए पहले दस मिनट तुम शरीर को कंपाते हो। कंपाने का अर्थ है कि जो–जो ऊर्जा जहां–जहां दबी पड़ी है, वह पिघल जाए; जहां–जहां रुकी पड़ी है, वहां–वहां से गतिमान हो जाए। अगर तुमने ठीक से शरीर को दस मिनट संपूर्ण भाव से कंपाया तो सारी दबी हुई ऊर्जा प्रकट हो जाएगी, बहने लगेगी।

फिर दूसरे चरण में नृत्य है। नृत्य का अर्थ है कि जो ऊर्जा अब फैल गई है सब तरफ, वह आनंद भाव में रूपांतरित हो, तुम नाचो; जैसे तुम एक उत्सव में हो; जैसे कोई महा घटना घटी है; जैसे तुम्हारे जीवन में कोई प्रकाश उतरा। तुम नाचो आनंद भाव से। क्योंकि जितने तुम आनंदित होते हो, उतनी ही ऊर्जा ऊपर उठती है, जितनी ऊर्जा ऊपर उठती है, उतने तुम आनंदित होते हो। तो अगर तुम मस्त होगे, नाचने लगे, जैसे पूरी मधुशाला पी गए...ऐसा कंजूस का नाच– –उससे कम न चलेगा– –कि नाच रहे हैं ऐसा, जैसे कि बड़ी मजबूरी है, कि क्या करें, अब आ फंसे हैं, या कि देख लें शायद कुछ हो। न, ऐसे नहीं चलेगा। ऐसा कुनकुना काम, काम नहीं आएगा। त्वरा चाहिए, नाच रहे हैं, जैसे पागल होकर।

पागल हुए बिना परमात्मा नहीं मिलता। तुम अपनी बुद्धि से चले तो तुम जहां हो वहीं रहोगे। तुम्हारी बुद्धि से थोड़ा पार जाने की जरूरत है। और जब तुम्हारी पूरी ऊर्जा आनंदमग्न हो गई है, ऊपर की तरफ बह रही है...आनंदमग्न होने का अर्थ ही है कि ऊपर की तरफ बह रही है। क्योंकि आनंद का भाव ही ऊपर की तरफ बहने से होता है। जितनी नीचे बहती, इतना दुख का भाव होता है, उतना ही जीवन में नर्क उतरता है। इसलिए हम कहते हैं नर्क नीचे, और स्वर्ग ऊपर। उसका मतलब कुल इतना ही है कि पहले द्वार के साथ जुड़ा है नर्क और दसवें द्वार के साथ जुड़ा है स्वर्ग। ऊपर–नीचे का और कोई मतलब नहीं।

जब तुम्हारी ऊर्जा पहले द्वार से नीचे गिरती है, तब तुम अपने जीवन में नर्क पैदा कर रहे हो। और जब तुम्हारी ऊर्जा दसवें द्वार पर खड़े होकर विराट की तरफ बहती है, तब तुमने अपने जीवन में स्वर्ग बना लिया। दोनों तुममें छिपे हैं। जब ऊर्जा प्रवाहित हो रही है और तुम आनंदमग्न हो,

तब ठहरकर खड़े हो जाना या बैठ जाना; ताकि ऊर्जा को अब पूरा मौका मिल जाए प्रवाहित होने का। बैठ जाना उपयोगी है, ताकि सिर्फ रीढ़ बचे। सारा शरीर खो जाए, सिर्फ रीढ़ बचे। और रीढ़ से ऊर्जा ऊपर जाए और सारी ऊर्जा रीढ़ में संगृहीत हो जाए। फिर लेट जाना है, ताकि जो ऊर्जा संगृहीत होकर ऊपर बह रही है उसके लिए सगम हो जाए, वह दसवें द्वार पर टक्कर मारने लगे। कुंडलिनी का पूरा प्रयोग दसवें द्वार पर टक्कर मारने का है। अगर तुमने ठीक से किया, तो तुम भी कह सकोगे:

जुगत–जुगत की तृषा बुझानी, कर्म–मर्म अधि–व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूं न मरै।।

बाउल फकीर संत नवीन कहते हैं–

'बामे इड़ानाड़ी, दोक्खिने पिंगला
रौजो–तौमो गुने कोरितेछे खैला
मोध्ये बिराजे सुषुम्ना
तारे धौरो ना कैनो शादोरे।।'

वाम में इड़ा, दक्षिण में पिंगला रजो–तमो गुण जिसमें समाए, मध्य में सुषुम्ना है, जिसे सादर प्रेम भाव से धारण करना है। फिर से प्रेम भाव की बात करते हैं। ऊर्जा सुषुम्ना में जब तक नहीं होगी...इंगला नाड़ी और पिंगला नाड़ी...इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना, इन तीनों को कह रहे हैं त्रिवेणी। ऐसे ही रजो और तमो और सत्व ये तीन गुण हैं, ये त्रिवेणी। जब तक हमारे दोनों स्वर, दोनों नाड़ियां सम नहीं हैं, तब तक सुषुम्ना में ऊर्जा प्रवाहित नहीं होती और जब तक सुषुम्ना से ऊर्जा प्रवाहित नहीं होती, तब तक हमारी ऊर्जा आज्ञाचक्र से नीचे ही रहेगी। आज्ञाचक्र से अगर हमें ऊपर जाना है सहस्त्रार पर जाना है तो सुषुम्ना का खुला होना बहुत जरूरी है, इस लिए की दोनों स्वर सम हो जाएं इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी। अगर ऊर्जा जागरण हुआ है और अगर प्रेम पूर्ण चैतन्यता नहीं है, लवींग अवेयरनेस नहीं है, तब परमात्मा से मिलन संभव नहीं है।

'तौखोन आत्तो तौत्तो–ज्ञाने
उदौय हौबे प्राने
तूभी जारे खोजो शौदा बाहिरे।।'

तभी तो आत्म ज्ञान का उदय होता है प्राणों में, और इसे ही तुम बाहर खोज रहे हो। ये त्रिवेणी संगम जो तुम्हारे अंतर में ही समाया हुआ है। इस त्रिवेणी में जहां की गंगा, जमुना, सरस्वती, बाहर के जगत में जो तीनों नदियां मिलती हैं, उसे तीर्थ माना गया है; ऐसे ही यहां पर हमारे भीतर रज, तम और सत्व का जब मिलन होता है, अंतर तीर्थ बन जाता है और उस तीर्थ में जब हम स्नान करते हैं तो आनंद हमारा जीवन बन जाता है। उसे आंतरिक त्रिवेणी संगम में वास्तविक ज्ञानोदय होता है। ऐसा ज्ञान, जो सत् है, चित् है, आनंद है। जो सत्यं है, शिवं है, सुंदरं है।

हरि ओम तत्सत्।

काठ की नहीं, श्वासों की माला

'देखबी जोदी चिकौन–काला शाशेर माला जौप ना मोन रे
भोला, काठेर माला जोप्ले जाला जाबेना।। जींयौन्ते
मोरबी जोर्दि शाशेर शौंगो धौर ना, आशा–जावार जे
जौन्त्रेणा जेने कि ता जानो ना।।
जार चेतौन गुरू मेरेछे लाथी
तार किशोर औभाब बौलो ना।
निदान काले होरी बोले द्विदौले प्रान जाओ ना।।
षौट्चौक्रो–भेदी जौबे होबे पाबे तौबो ठिकाना।
देखबे आलोर भितोर कालो मानिक
घूचबे भौबेर जौन्त्रेणा।।
गोबिन बौले देखले पौरे आशा–जावा आर रौबे
ना। एकूश हाजार छौय शो बार जौप कोरे ता दैख ना।'

'देखना चाहो अगर श्याम सुंदर कृष्ण को तो श्वासों की माला जपो। रे भोला मन काठ की माला जपने से ये ज्वाला कम न होगी। जीते जी अगर मरना है तो श्वास का साथ हीं धरना होगा। तभी तो आवागमन की यंत्रणा से मुक्ति पाओगे। जिसका चैतन्य गुरु लात का प्रहार करता है, वो तो सौभाग्यशाली है। उसको कोई अभाव नहीं रह जाता। अंत समय में फिर आज्ञाचक्र से हीं प्राण निकलते हैं, इसलिए चैतन्य स्वरूप गुरु का हाथ पकड़ ले। षट्चक्र भेदन जब जान जाओगे, तभी तो ठिकाना पाओगे। भीतर का अंधेरा मिटकर, उस परम माणिक के आलोक में, समस्त यंत्रणा मिट जाएगी।

संत गोबिन कहते हैं– चाहे इक्कीस हजार छः सौ बार जप करके देख लो, गुरु कृपा बिना आने–जाने की यंत्रणा से मुक्ति नहीं पा सकते।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर गोबिन कहते हैं–

'देखबीं जोदीं चिंकौन–काला शाशेर माला जौप ना
मोन रे भोला, काठेर माला जोप्ले जाला जाबेना।।'

अगर श्याम सुन्दर के दर्शन करना है तो सांसों की माला जपो।

रे भोला मन! काठ की माला जपने से काम नहीं बनेगा। काठ की माला जपने से ये ज्वाला कम ना होगी।

श्याम सुन्दर का दर्शन करना है तो सांसों की माला जपो। श्याम सुन्दर कृष्ण को कहते हैं; एक कृष्ण का साकार स्वरूप, मूर्ति पूजा जिसकी लोग करते हैं, एक और रूप है उनका, निराकार रूप। वो निराकार रूप, वो श्याम सुन्दर का रूप हमारे भीतर मौजूद है। सदा मौजूद है, प्रतिपल मौजूद है, उसी के साथ पैदा हुए थे, उसी के साथ रहते हैं और उसी के साथ इस जगत से विदा लेते हैं। अगर उस श्याम सुन्दर के दर्शन करने हैं तो सांसों की माला जपनी होगी।

'साँसों की माला पे सिमरूं मैं पी का नाम।'

श्वास कुछ ऐसे है...जैसे पुल, ब्रिज की तरह...ब्रिज के इस पार देह रूपी जमीन है, शरीर है हमारा। सांस रूपी ब्रिज के, पुल के उस पार हमारी आत्मा। निराकार स्वरूप सांसों के पुल पर जाए बिना, हम अपने निराकार में प्रवेश नहीं कर सकते। और जब तक हम अपने निराकार में प्रवेश नहीं कर सकते, तब तक श्याम सुन्दर के दर्शन भी नहीं कर सकते।

गोबिन कहते हैं–

'श्वासों की माला जपो रे भोला मन।'

काठ की माला जपने से कुछ नहीं होगा। लोग काठ की माला जप रहे हैं।

कबीर साहब कहते हैं–

'माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार दे, मन का मनका फेर।।'

अगर सांसों की माला नहीं जपते, काठ की माला जपने से मन की ज्वाला कम नहीं होगी, मन की बेचैनी कम नहीं होगी।

कर का मन का डार दे, मन का मनका फेर।
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।

युगों से माला फेर रहे हो, लेकिन मन का फेर नहीं गया, मन की बेचैनी वैसी ही चालू है। यहां से वहां, वहां से यहां भटकता फिर रहा है, न जाने क्या सोच रहा है? और भीतर माला भी जप रहा है। लेकिन ये मन का फेर कैसे चला जाए? ये अशांति कैसे खत्म हो जाए?

जब तक हम अपने भीतर उस श्याम सुन्दर के दर्शन नहीं कर लेते, तब तक ये अशांति खत्म नहीं हो सकती। जिस दिन उसके दर्शन होते हैं और फिर जिस दिन उससे मिलन होता है, उस दिन सदा के लिए अशांति विदा हो जाती है। और जीवन में प्रेम, जीवन में आनंद, जीवन में

उत्सव फलित हो जाता है। अहम् ब्रह्मास्मि का उद्घोष हो जाता है।

'जीयौन्ते मोरबी जोदि शाशेर शौंगो धौर ना,

आशा–जावार जे जौन्त्रेणा जेने कि ता जानो ना।।'

जीते जी अगर मरना है, तो श्वास का साथ ही धरना होगा। तभी तो आवागमन की यंत्रणा से मुक्ति पाओगे। जब तक हम अपने भीतर उस अमृत तत्व को ना जान लें, तब तक आवागमन की यंत्रणा जारी रहेगी। और उस अमृत तत्व को जानने के लिए हमें जीते जी मरना होगा।

'जीवित मरिए भवजल तरिए।'

ये जीवित कैसे मरा जाए? जीते जी मरना यानी अहंकार की मृत्यु। उसके लिए क्या करना है?

गोविन्द कहते हैं– जीते जी अगर मरना है तो श्वास का साथ धरना होगा। श्वास का साथ कैसे धरना होगा? श्वास से और श्वास के पैटर्न से ही तो हमारा जीवन जुड़ा हुआ है।

जब हम क्रोध में हैं तो अलग तरह से सांस चलती है, जब हम बेचैन हैं तो अलग तरह से सांस चलती है, नींद में हैं तो अलग तरह से सांस चलती है, प्रेम में हैं तो अलग तरह से सांस चलती है।

अगर हम श्वास का साथ धर लें, देखें जब हम शांत होते हैं तो कैसी सांस चलती है? जब हम प्रेम में होते हैं तो कैसी सांस चलती है?

वैसी सांस लेना हम शुरू कर दें। प्रेमपूर्ण ढंग से श्वास लेना शुरू कर दें, तो अहंकार और प्रेम एक साथ नहीं रह सकते। जब हम धीमी सांस लेते हैं तो अहंकार में नहीं जी सकते। तब हम शांत ही होंगे, तब हम प्रेमपूर्ण ही होंगे। सांस के पैटर्न से हमारा जीवन बंधा हुआ है, जीवन की अभिव्यक्ति बंधी हुई है। जीते जी अगर श्वास का साथ धरना आ गया, एक नैक, लयबद्धता आ गई सांस लेने की, तो जीवन धन्य हो जाता है। तब जीते जी मरने की कला आ जाती है। सांस के साथ हमारा जीवन आया और सांस जब विदा हो जाएगी, जीवन चला जाएगा।

परम गुरु ओशो ने एक घटना सुनाई है अपने जीवन की; उन्हें अपने नाना से बहुत प्रेम था और उनके नाना की जब मृत्यु होने वाली थी, वो बहुत बीमार थे, तो वो गांव से दूसरे गांव आ रहे थे। बैलगाड़ी से आ रहे थे, उन्हें बहुत दर्द था, और रास्ते में उनकी मृत्यु हो गई।

ओशो को बहुत दुख हुआ। उन्हें इतना प्रेम था नाना से, उन्हें लगा अब ये जीवन मुझे क्यों जीना है? मैं भी मर जाऊं, काश मैं भी मर जाऊं और रात हुई तो वो इसी भाव में सो गए, जैसे कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, ठीक वैसे ही सांस उन्होंने कर ली, जैसे नाना की सांस धीरे–धीरे, धीरे–धीरे विलीन होती गई; वैसे ही उन्होंने करना शुरू कर दिया, और नींद लग गई। अचानक उन्होंने देखा कि उनकी मृत्यु हो गई है और देखा मृत्यु होने के बावजूद भी भीतर सब कुछ जीवित है।

ये है जीते जी मरना। 'जीवित मरिए भवजल तरिए'।

ये शरीर से सारी ऊर्जा सिकुड़ गई एक बिंदु पर। वो बिंदु जागृत है, पूरा शरीर मरा हुआ है, तब भी हमें अपने जीने का, अपने जीवन का एहसास है कि शरीर ही हमारा जीवन नहीं है। शरीर के पार भी एक जीवन है, शरीर के पार जो है वह जीता है इस शरीर में, वो वास्तविक

जीवन है। जीते जी मरने की कला जो जान जाता है, उसे इस जीवन से परिचय मिलता है। और तब उसकी आवागमन की यंत्रणा मिट जाती है। फिर उसका भय ही विदा हो जाता है क्योंकि शरीर मरता है हम तो नहीं मरते। वो जो अमर तत्व है, वो भीतर हमारे निराकार में मौजूद है। वहां जाकर जब श्याम सुन्दर के दर्शन होते हैं, उस तत्व की भी अनुभूति होती है। जिसे अग्नि नहीं जला सकती, वायु नहीं नष्ट कर सकती, पानी में नहीं गल सकता, शस्त्र नहीं छेद सकते, उसे कुछ भी नष्ट नहीं कर सकता। उस तत्व की अनुभूति भीतर होती है, और आवागमन की यंत्रणा मिट जाती है।

आएं, परम गुरु ओशो को सुनते हैं–

'जीते जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।
आसिक का दिन–रात रहै सूली उपर बासा।।'

'जीते जी मरि जाय' . . .। मरते तो सभी हैं। मरना तो सभी को है। कोई भी बच तो सकेगा नहीं। फिर आशिक में, प्रेमी में, भक्त में, और साधारण संसारी में क्या फर्क है? संसारी मजबूरी में मरता है। मारा जाता है, तब मरता है। मौत जब आकर घसीटती है, तब मरता है।

संसारियों ने जो कथाएं लिखी हैं मौत की, वह तुम समझ लेना। तुम्हारे पुराणों में जो लिखा है, वे पुराण किन्हीं ज्ञानियों ने नहीं लिखे होंगे। क्योंकि जो बात लिखी है वह अज्ञान की है। तुम्हारे पुराणों में लिखा है कि जब मौत आती है तो मौत का जो राजा है यमदूत, काला–कलूटा, भयंकर, भैंसों पर सवार होकर आता है। ज्ञानियों ने तो मौत में परमात्मा को ही देखा है आते– काला–कलूटा नहीं, यमदूत नहीं, भैंसे पर सवार नहीं। यह भैंसे पर सवार जो मौत तुम्हें दिखाई पड़ी है, यह तुम्हारी वासनाओं के कारण दिखाई पड़ी है, क्योंकि यह तुम्हें दुश्मन मालूम पड़ती है। तो तुम दुश्मन को काले रंग में रंगते हो; भैंसे पर बिठालते हो। यह तुम्हें अतिथि नहीं मालूम होती। इसके साथ तुम अतिथि का संबंध नहीं बनाते, शत्रु का बनाते हो; आ रही है और तुम्हें जिंदगी से जबरदस्ती ले जाएगी। तुम जबरदस्ती ले जाए जाते हो, इसलिए भैंसों की जरूरत पड़ती है; यमदूतों की जरूरत पड़ती है; तुम्हें घसीटा जाता है; तुम्हें जबरदस्ती खींचा जाता है। तुम इस किनारे को जोर से पकड़ते हो। तुम छोड़ते ही नहीं। मरते दम तक तुम छोड़ते नहीं; तुम देह को पकड़ते हो, मोह को पकड़ते हो, माया को पकड़ते हो। चूंकि तुम्हारी यह दृष्टि पकड़ने की है, इसलिए मौत तुम्हें लगता है छुड़ाने आ रही है। लेकिन जो खुद ही छोड़ चुका––'जीते जी मरि जाय'––जो मौत के आने के पहले मर गया, जो परमात्मा के चरणों में मर गया, जिसने अपने होने को शून्य कर दिया, जिसने कहा अब मैं नहीं हूं, तू है––उसके लिए मौत यमदूत की तरह नहीं आती, भैंसे पर सवार होकर नहीं आती। उसके लिए तो मौत का भी मुंह बड़ा प्यारा है। वह भी परमात्मा की ही तस्वीर है। वह भी प्रभु का ही रूप है। प्रभु ही भेजता है।

वही एक दिन लेकर आता है और ले जाता है। लेकिन यह तो तभी संभव है, मृत्यु में तुम्हें परमात्मा तभी दिखाई पड़ेगा, मृत्यु तुम्हें समाधि जैसे आनंद से तभी भरेगी – –जब तुम जीते–जी मर जाओ।

यही फर्क है भक्त में और संसारी में। संसारी भी मरता है, भक्त भी मरता है। संसारी बे–मन से मरता है अनिच्छा से मरता है, मारा जाता है। संसारी की हत्या होती है। भक्त मौत से मरता है, स्वयं मर जाता है। वह कहता है, जो हाथ से छूट ही जाना है उसे मैं छोड़ ही क्यों न दूं। जब छूट ही जाना है तो पकड़ना क्या। फिर यह पकड़ने की और व्यर्थ की झंझट क्यों करूं? जो मुझसे ले ही लिया जाएगा, उसे देने का मजा क्यों न ले लूं? उसे बांट क्यों न दूं? उसे परमात्मा के चरणों में पहले ही क्यों न रख दूं कि जब तुम आओगे ही और ले ही लोगे तो इतना मौका मैं क्यों खोऊं कि तुम्हारे चरणों में खुद को रख दिया? चढ़ा दिया, अर्पण कर दिया।'

संसारी भी मरता है और संन्यासी भी मरता है। संसारी बेमन से मरता है, अनिच्छा से मरता है; भक्त जो मरता है वो स्वयं मर जाता है। वो कहता है जो छूट जाना है, वो आज ही छोड़ देना। अब क्या पकड़ना इसको? वो हर वक्त तैयार है। भक्त जब सोता है तो वो कह कर रोज रात को सोता है, हे प्रभु! मैं तैयार हूं। तेरी जब मर्जी हो, तू मुझे उठा लेना। मेरी तैयारी आज भी है, तेरी जैसी मर्जी, वो पूरी हो।

'जार चेतौन गुरु मेरेछे लाथी
तार किंशेर औभाब बौलो ना।'

जिसका चैतन्य गुरु लात का प्रहार करता है, वो तो सौभाग्यशाली है, उसको कोई अभाव नहीं रह जाता। जीवन में गुरु आ गया तो सारे अभाव खत्म हो गए; भराव आ गया, सौभाग्य आ गया जीवन में। चैतन्य गुरु लात का प्रहार करता है।

'गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि–गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।।'

बाहर से तो उसे चोट भी करनी पड़ेगी। और सहारा भी देना पड़ेगा। गुरु को शिष्य से, परमात्मा की मूर्ति गढ़नी है। और जिसको जीवन में गुरु का प्रहार मिल गया, उसके सौभाग्य का उदय हो गया। उसके जीवन में परमात्मा की मूर्ति निखरनी ही निखरनी है।

'निदान काले होरी बोले द्विदौले प्रान जाओ ना।।
षौट्चौक्रो–भेदी जौबे हौबे पाबे तौबो ठिकाना।'

अंत समय में फिर आज्ञा चक्र से ही प्राण निकलते हैं, इसलिए चैतन्य स्वरूप गुरु का हाथ पकड़ लें। षट्चक्र भेदन जब जान जाओगे तभी तो ठिकाना पाओगे।

सात चक्र हैं, अकसर तो मनुष्य पहले चक्र से ही विदा हो जाता है, जैसे–जैसे साधना करता है वह, तो एक समय आता है कि अंतिम समय में आज्ञाचक्र से उसके प्राण निकलते हैं। मृत्यु के समय में आज्ञाचक्र से प्राण निकलें, जब यहां से प्राण निकलते हैं तो आवागमन समाप्त हो जाता है।

परम गुरु ओशो के पिता ने जब देह त्यागा तो परम गुरु ओशो उन्हें देखने आए, उनके मृत शरीर को देखा उन्होंने, माथे पर आज्ञाचक्र पर उन्होंने अंगूठा रखा और फिर उन्होंने कहा– मैं देख रहा था कि उनके प्राण कहां से निकले? ठीक उनके प्राण आज्ञाचक्र से निकले, जो चाहते थे ओशो वैसा ही हुआ। इसके बाद अब स्वतंत्रता होती है कि मनुष्य चाहे तो एक जन्म और ले सकता है। अब उसकी स्वतंत्रता है जन्म लेना।

तो षट्चक्र भेदन, यानी छः चक्रों को भेदने की कला जाननी होगी। खोलना होगा इन चक्रों को। और इन्हें खोलने की कला, इन्हें जगाने की कला गुरु बताता है। इसलिए गुरु का हाथ पकड़ ले तू।

'देखबे आलोर भितोर कालो मानिक
घूचबे भौबेर जौन्त्रेणा।।
गोबिन बौले देखले पौरे आशा–जावा आर रौबे ना।
एकूश हाजार छौय शो बार जौप कोरे ता दैख ना।'

भीतर का अंधेरा मिट कर उस परम माणिक आज्ञाचक्र, जिसे मोती भी कहते हैं, इसके आलोक में समस्त यंत्रणा मिट जाती है।

संत गोबिन कहते हैं– चाहे इक्कीस हजार छः सौ बार जप करके देख लो, गुरु कृपा बिना आने–जाने की यंत्रणा से मुक्ति नहीं पा सकते।

भीतर का अंधेरा तभी मिटता है, जब हमारी ऊर्जा आज्ञाचक्र पर आ जाती है। जब हमारा आज्ञाचक्र खुलता है तब भीतर का अंधेरा मिटता है। और उस प्रकाश में सारी यंत्रणाएं मिट जाती हैं, सारे भ्रम दूर हो जाते हैं। चौबीस घंटे में हम इक्कीस हजार छः सौ बार सांस लेते हैं। एक मिनट में हम पंद्रह सांस लेते हैं। इतना जप करने के बावजूद भी संत गोबिन कहते हैं कि आने–जाने की यंत्रणा से मुक्ति नहीं पा सकते, जब तक की गुरुकृपा ना हो।

'मोटे बंधन जगत के, गुरु भक्ति से काट'

ये जो जगत के बंधन है वो गुरु भक्ति से कटते और फिर अगर हम इतनी साधना कर रहे हैं तो एक झीना बंधन बन जाता है। सोने सी जंजीरें, पायल सा वो बन जाता। इस बंधन को कौन काटेगा? झीने बंधन कैसे कटेंगे? अब गोविन्द की याद में डूबना है। अब भीतर उस निराकार में डूबना है। जहां हम मिट जाते हैं, हमारा अहंकार मिट जाता है। और हमारा ओंकार की तरह होना प्रकट हो जाता है। यहां पर सारे बंधन मिट जाते हैं, यहां पर आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। और यहां तक जाना होता है गुरु कृपा से। और गुरु कृपा प्राप्त करने की पात्रता मिलती है भावपूर्ण जागरूकता की साधना से। उस साधना के संबंध में गोबिन के वचन याद रखना–

'देखबी जोदी चिकौन–काला शाशेर माला जौप ना
मोन रे भोला, काठेर माला जोप्ले जाला जाबेना।।'

श्याम सुन्दर के दर्शन करना है तो सांसों की माला जपो। रे भोला मन! काठ की माला जपने से काम नहीं बनेगा।

हरि ओम तत्सत्!

प्रवृत्ति–निवृत्ति सम्वृत्ति

'भौक्तो हौवा मुखेर कौथा नौय
भौक्तो होते इच्छे जार, तार शाक्तो होते हौय।।
शोक्ती होले प्रोकाश, शेई शोक्तीते प्रोबृन्ति बिनाश
मान–औशोम्मान बोलिदान दिये कौरो रिपू जौय।।
रिपू–जौय होले हौय ज्ञानेर बृद्धि
औनायाशे तौखोन हौबे शिद्धि
नोइले मोन औ आ इ ई कोरते हौय।।
शिद्धि होले मोन बोइष्णौब लौक्खोन
तौखोन हिंशा आदि हौय रे बारोन
बिबेकी जौखोन हौय रे मोन
तौखोन भोक्तीर उदौय।।
कांगाल बोलिछे भोक्ती हौय जौखोन
ओरे भेदज्ञान थाके ना तौखोन
जाय प्रोबृत्ति निबृत्ति
जौगोत दैखे ब्रोम्होमौय।।'

'भक्त होना केवल मुख की बात नहीं। भक्त बनना कोई साधारण बात नहीं। भक्त होने की इच्छा जिसमें होगी उसे शक्ति भी धारण करनी होगी, अर्थात् भक्त बनने के लिए सुयोग्य पात्रता होनी चाहिए। शक्ति से ही प्रकाश का उदय होगा उसी प्रकाश में प्रवृत्ति का विनाश होगा। मान–अपमान का बलिदान दिए बिना रिपुओं का जय असम्भव है। रिपु जय होने पर ही ज्ञान की वृद्धि होगी और अनायास ही सिद्धि मिलेगी, नहीं तो मन बस अ, आ, इ, ई करता रह जाएगा। सिद्धि होने पर वैष्णव लक्षण का उदय होगा, हिंसा आदि दूर होकर विवेक का उदय होगा। उसी विवेक से भक्ति का उदय होगा।

संत कांगाल कहते हैं– जब भक्ति का उदय होता है, सभी भेद ज्ञान मिट जाते हैं। प्रवृत्ति–निवृत्ति सब खो जाते हैं। जगत को तब साधक ब्रह्म स्वरूप निहारता है। सर्वत्र उसी ब्रह्म का वास है।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर कांगाल कहते हैं–

'भौक्तो हौवा मुखेर कौथा नौय।

भौक्तो होते इच्छे जार, तार शाक्तो होते हौय।।'

भक्त होना मुख की बात नहीं है। केवल मुख से भक्त बोल लिया अपने आप को, तो भक्त नहीं हो जाते।

भक्त होना है अगर, तो उसे शक्ति धारण करनी होगी। धारण करने हेतु पहले पात्रता हासिल करनी होगी।

शक्ति क्या है? शक्ति है– संकल्प से भरना होगा? अगर हमें संसार में जाना है, तो छोटा संकल्प चाहिए। छोटे–मोटे संकल्प संसार में काम आ जाएंगे। लेकिन अगर हमें अध्यात्म में प्रवेश करना है तो एक महासंकल्प चाहिए। खुद को मिटा देने का संकल्प; जिसमें इतना बड़ा साहस है खुद को मिटा देने का, अपने अहंकार को दांव पर लगा देने का, वो हीं भक्त होता है।

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तबा चाहे,

कि दाना ख़ाक में मिलकर गुले–गुलजार होता है।

तो मुख से भक्त–भक्त बोलने से बात नहीं बनती। अगर हम प्रेम की बात मुख से करें, बहुत सरल है––'आई लव यू' बोल देना। ऐसे परमात्मा को कह दो 'आई लव यू', ऐसे भक्ति नहीं होती। मिटना होगा, समर्पण करना होगा, उसकी मर्जी में राजी होना होगा। तेरी मर्जी पूरी हो। प्रतिपल मरने की कला, प्रतिपल मिटने का नाम भक्ति है; और जो ऐसी कला जानता है, वो भक्त है।

एक कहानी परम गुरु ओशो सुनाते हैं; जापान का समुराई है। उसकी नई–नई शादी हुई है और दोनों नव विवाहित दंपति समुद्री यात्रा कर रहे हैं, नाव में बैठे हुए हैं कि अचानक समुद्र में तूफान आ जाता है, लोग भयभीत हो जाते हैं, कोहराम मच जाता है। लेकिन जो समराई है वो बिल्कुल निश्चल बैठ जाता है...अडिग, कोई डर नहीं, कोई कंप नहीं। उसकी नव–विवाहित पत्नी तो घबड़ाई। उसने पूछा– आप तो बिल्कुल नहीं डर रहे, सारे लोग भयभीत हैं, कोहराम मचा हुआ है, लेकिन आप तो निश्चिंत बैठे हुए हैं। समराई ने तुरंत अपनी तलवार निकाली और नव–विवाहित पत्नी की गर्दन पर लगा दी।

तो पत्नी तो हंसने लगी कि ये क्या कर रहे हैं आप? समराई ने कहा– तुम्हें डर नहीं लगता? तो पत्नी बोली– आप से कैसा डर? आप मुझे प्रेम करते हैं, आप से कैसा डर? तो

समराई ने कहा– ऐसे ही मुझे कैसा डर? वो मुझे प्रेम करता है, अस्तित्व मुझे प्रेम करता है, वो मेरी रक्षा करता है, वो मेरे साथ है, मुझे कैसा भय? वो मेरी रक्षा कर रहा है। मैं निरंतर अपने आप को सुरक्षित महसूस करता हूं।

प्रेम में मिटने की तैयारी चाहिए और जो मिट गया, वो बन गया। प्रेम के मार्ग पर मिटना ही बनना है। हारना ही जीतना है। हम तो जीतने की कला सीखते हैं संसार में। कैसे दूसरे को जीत लिया जाए? लेकिन प्रेम हारने का नाम है।

'विश्व में सबसे बड़े वहीं हैं वीर, जिन्होंने आप अपने को गढ़ा।

और वे ज्ञानी अगम गंभीर है वे, जिन्होंने आप अपने को पढ़ा।।'

भक्ति है अपने आप को गढ़ना, परमात्मा को गढ़ना और स्वयं को पढ़ना। दूसरे को पढ़ना बहुत सरल है, दूसरे को गढ़ना भी सरल है। लोग दूसरे को बदलना चाहते हैं। लेकिन भक्ति है, स्वयं को बदलना, स्वयं को गढ़ना। परमात्मा की मूर्ति गढ़ रहे हैं हम। हमारे स्वयं के भीतर वह मूर्ति छिपी है। उस मूर्ति को हम उभार रहे हैं। भक्त परमात्मा की मर्जी में राजी हो जाता है और उसी राजी होने में, कैसे भी तूफ़ान आएं? कितने तूफ़ान आएं, वह निश्चल रहता है, अडिग रहता है। संसार का कोई भी तूफ़ान उस तूफ़ान के आगे फीके हैं। परमात्मा की भक्ति का जो तूफ़ान है, उसके आगे सब तूफ़ान फीके हैं। भक्त को डूबने में ही मजा आता है। अपने को डूबा देने का साहस चाहिए।

'ये इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजिए।

एक आग का दरिया है और डूब के जाना है।।'

डूबने की तैयारी चाहिए, मरने की तैयारी चाहिए।

'शोक्ती होले प्रोकाश, शेई शोक्तीते प्रोबृन्ति बिनाश

मान–औशोम्मान बोलिदान दिये कौरो रिपू जौय।।'

शक्ति से ही प्रकाश का उदय होगा। उसी प्रकाश में प्रवृत्ति का नाश होगा। मान–अपमान का बलिदान दिए बिना रिपुओं का जय असंभव है। मान और अपमान तब तक रहेंगे जब तक अहंकार है, और जब तक 'मैं' 'मेरा' है; तब तक इस घेरे से हम निकल ही नहीं सकते। प्रवृत्ति यानी षठ्रिपुओं की बात कर रहे हैं। और पलटू क्या कहते हैं–

'काम और क्रोध दुई दुष्ट ये बड़े हैं

ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।'

जब भीतर कोई कामना उठे, तब भीतर सजग हो जाओ। तब ध्यान पूर्ण हो जाओ, होश से भर जाओ, फिर देखो।

'कूद परि जाय कै कोट काया महै,
आगि लगाय के मोहजारै।'

एक ही चीज जीवन में जलाने जैसी है– यह देह। संसार में मृत्यु आए और देह जल जाए, उसके पहले हमें क्या जला देना है? हमें 'मैं', अपने ममत्व को जला देना है। जब तक 'मैं' 'मेरापन' है, ममत्व है, तब तक 'मैं' ही रहेगा। ये 'मैं' का ही घेरा है, 'मेरापन'। 'मैं' ने घेरा बना लिया 'मेरेपन' का। और फिर जब 'मैं' है, 'मेरा' है, तो मान–अपमान हर चीज हमें प्रभावित करती रहेगी। और हम इसी में ही उलझे रह जाएंगे। और जिसे मान और अपमान प्रभावित करता है, वो भक्त नहीं हो सकता।

कबीर साहब कहते हैं–

'मैं बौरा सभ खलक सयानी।'

तुम सारे सयाने हो, समझदार हो, चतुर हो। मैं बौरा हूं, मैं दीवाना हूं। 'मैं बौरा सब खलक सयानी।' पागल होने की तैयारी चाहिए, दीवाने होने की तैयारी चाहिए। लोग पागल ही कहते हैं भक्तों को। क्या कोई समझदार कहता है? पागल कहेंगे ही लोग। ये मान और अपमान में जब तक तुम टिके हुए हो, तब तक पागल कहलाने की तैयारी ही कहां से आएगी? 'मेरापन' जाए, मान– अपमान चला जाए। ये सब कब जाएगा? –– जब 'मैं' ही गिर जाए। तो 'मैं' कैसे गिरेगा? तुम देखो कितना–कितना तुम्हारा 'मेरापन' है। ममत्व को देखो, ममत्व से आंको 'मैं' पन को। 'मैं' को सीधे नहीं पकड़ सकते, अहंकार को सीधे नहीं पकड़ सकते, लेकिन हम कहां–कहां अपना 'मेरापन' देखते हैं? उसे देखो; वहां देखोगे तो बात बन जाएगी।

एक बार की बात है, एक राजा ने बहुत सारे ब्राह्मणों को आमंत्रण दिया और कहा कि आज शाम सब को पुकारा गया है। सब लोग आ सकते हैं, सब का स्वागत है। राजा को दान देना था। राजा ने कुछ इस तरीके से दान दिया, कहा कि इस राज्य में जितनी बड़ी से बड़ी जमीन जो घेर लेता है, वो जमीन उस ब्राह्मण की हो जाएगी।

बहुत सारे ब्राह्मण आए, सब ने बहुत जल्दी–जल्दी दौड़ लगाई जितनी ताकत थी, सब बड़े से बड़ा घेरा बनाने में लग गए। राजा देखने आया, मंत्री देखने आया, लोगों के घेरे देखे।

एक ब्राह्मण ने बहुत छोटा सा घेरा बनाया था और फिर सांझ होते–होते उस घेरे को भी उसने तोड़ दिया। तो राजा और मंत्री ने आकर देखा। उन्होंने पूछा ब्राह्मण से कि आपने तो कोई घेरा ही नहीं बनाया, सब ने इतनी बड़ी–बड़ी जमीन घेरी, आपने जो बहुत छोटा सा एक घेरा बनाया था, उसे भी तोड़ दिया।

तो ब्राह्मण ने कहा– मैं कितना भी बड़ा घेरा बनाता, लेकिन इतना बड़ा राज्य है, कितना बड़ा और छूट जाता है। इसलिए मैंने बनाया ही छोटा था और फिर इस घेरे को भी तोड़ दिया। जब मेरा घेरा ही टूट गया तो अब जितनी भी जमीन है ये तो सारी मेरी हो गई।

जब तक 'मैं' का घेरा है; 'मैं' का घेरा कैसे बनता है? 'मेरे' पन' से। ये 'मेरे' पन' का घेरा जिस दिन टूटा, उस दिन 'मैं' ही गिर जाता है। और 'मैं' गिर गया तो भीतर जो आत्मा है, वो विराट आत्मा से परिचय हो जाता है।

'रिपु–जौय होले हौय ज्ञानेर बृद्धि
औनायाशे तौखोन हौबे शिद्धि
नोइले मोन औ आ इ ई कोरते हौय।।'

रिपु जय होने पर ही ज्ञान की वृद्धि होगी और अनायास ही सिद्धि मिलेगी, नहीं तो मन बस अ, आ, इ, ई करता रह जाएगा।

सिद्धि का मतलब है आत्म–सिद्धि, बुद्धत्व, आत्मज्ञान, जो अनायास होता है।

रामकृष्ण एक बार अपने खेत से गुजर रहे थे, उन्होंने देखा बादल घिरे हुए हैं, काले बादल हैं और अचानक बगुलों की कतार उड़कर चली जाती है, श्वेत बगुलों की कतार। और उन्हें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की याद आ गई।

लाओत्सु बैठा हुआ था और अचानक गिरता हुआ पत्ता देखकर, आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। ऐसा ही यह संसार है, सूखे पत्ते की तरह अब गिरा कि तब गिरा।

भगवान बुद्ध सुबह भोर का तारा डूबते हुए देखते हैं और उन्हें ज्ञान हो जाता है। तो ज्ञान अनायास ही होता है।

'शिद्धि होले मोन बोइष्णौब लौक्खोन
तौखोन हिंशा आदि हौय रे बारोन
बिबेकी जौखोन हौय रे मोन
तौखोन भोक्तीर उदौय।।'

सिद्धि होने पर वैष्णव लक्षण का उदय होगा, हिंसा आदि दूर होकर विवेक का उदय होगा। उसी विवेक से भक्ति का उदय होगा।

जब सिद्धि होगी, आत्मज्ञान होगा 'मैं आत्मा हूं', तब फिर हिंसा कैसे रह जाएगी? जीवन से हिंसा दूर हो जाएगी।

'किसको कैसे पत्थर मारूं, यहाँ कौन पराया है?
शीश–महल में हर एक चेहरा अपना लगता है।।'

सभी सब में मैं हूं, और मैं सब में हूं तो यहां दूसरा कोई है नहीं, तो हिंसा कैसे बचेगी? हिंसा तो दूर हो ही जाएगी। और कहते हैं विवेक का उदय होगा। विवेक कहते हैं अनकंडिशंड चेतना को, वो जो हमारा अंतःकरण है भीतर, उसको कहते हैं। विवेक उसे कहते हैं जिसे सार्थक और असार्थक का बोध हो जाए। सार्थक क्या है? सार्थक वहीं है जो हमारे साथ जाए, जो शाश्वत है, वहीं सार्थक है। जब हम सार्थक को पकड़ने लगते हैं, सार्थक से अपना नाता जोड़ने लगते हैं, शाश्वतता से अपने तादात्म्य बनाने लगते हैं वहीं है विवेक। विवेक का उदय होता है सिद्ध होने पर, वह वैष्णव लक्षण का उदय होगा, विवेक का उदय होगा। और विवेक से भक्ति का उदय होगा। विवेक से ही भक्ति का उदय होता है। मिट जाना, भक्त हो जाना।

'कांगाल बोलिछे भोक्ती हौय जौखोन
ओरे भेदज्ञान थाके ना तौखोन
जाय प्रोबृत्ति निबृत्ति
जौगोत देखे ब्रोम्होमौय।'

संत कांगाल कहते हैं जब भक्ति का उदय होता है सभी भेद ज्ञान मिट जाते हैं। प्रवृत्ति–निवृत्ति सब खो जाते हैं। जगत को तब साधक ब्रह्म स्वरूप निहारता है। सर्वत्र उसी ब्रह्म का वास है।

निवृत्ति का अर्थ है– सब कुछ छोड़ देना। छोड़ते–छोड़ते, छोड़ते–छोड़ते छोड़ने को कुछ शेष ना रह जाए, केवल शेष रह जाए हमारी आत्मा– ये है निवृत्ति। प्रवृत्ति का अर्थ है– सब कुछ शामिल करते जाना जीवन में। सब का समावेश, इतना समावेश कर लेना, इतना समाविष्ट कर लेना कि समावेश करने के लिए कुछ बचे ही ना। पूरा जगत समाविष्ट हो जाए। ये हो गया प्रवृत्ति मार्ग।

ओशो फ्रेगरेंस में प्रवृत्ति मार्ग भी नहीं, निवृत्ति मार्ग भी नहीं। स्मृति मार्ग कह लो, प्रवृत्ति और निवृत्ति का मिलन हो रहा है।

यही बाउल फकीर कहते हैं कि प्रवृत्ति और निवृत्ति के भेद ही खो जाते हैं। प्रवृत्ति भी और निवृत्ति भी, तो तीसरा शब्द गढ़ सकते हैं– सम्वृत्ति, जहां हम आती सांसों के साथ हरि स्मरण में डूबते हैं। जाती सांसों के साथ आत्मस्मरण में डूबते हैं, यह हो गया सम्वृत्ति–मार्ग। **ओशो फ्रेगरेंस** में आप सब का स्वागत है, इस संतुलित, संयमित, मध्य–मार्ग पर चलने के लिए।

संत पलटू के पदों पर प्रवचन देते हुए परम गुरु ओशो कहते हैं–

'मन को जीतने के पहले हार मत जाना। पलटू कहते हैं:

'काम और क्रोध दुई दुष्ठ ये बड़े हैं
ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।'

बोध को जगाएं। जब काम उठे तो परिपूर्ण ध्यान को उठाएं। जागरूक हों। होश की लहर से भर जाएं। देखें क्रोध को, क्रोध का संग–साथ न दें, क्रोध के चक्कर में न आएं, क्रोध के साथ तादात्म्य न करें। और जब काम उठे तो उसके साथ भी तादात्म्य न करें। दूर खड़े होकर साक्षी भाव से देखें। यह है अर्थ– ज्ञान के धनुष से इन्हें टारै।

'कूद परि जाय कै कोट काया मंहै,
आगि लगाय के मोह जारै।'

और अगर कोई चीज जलाने योग्य है––इसके पहले कि तुम्हारी देह जले चिता पर, अगर किसी चीज की चिता बना देने योग्य है––तो वह है मोह; मेरा तेरा; ममत्व। क्योंकि जब तक 'मेरा' है तब तक 'मैं' बचा रहेगा। 'मेरा' 'मैं' का ही फैलाव है। तो 'मेरे' को काटें। मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र––जहां–जहां 'मेरा' है––मेरा देश, मेरी जाति, मेरा वर्ण––जहां–जहां 'मेरा' है, 'मेरे' को काटते जाएं। जिस दिन सारा 'मेरा' कट जाता है, उस दिन जो मैं है, तत्क्षण गिर जाता है।

'कूद परि जायकै कोट काया मंहै,
आगि लगाय के मोह जारै।
दास पलटू कहैं सोई रज पूत है
लेहि मन जीति तब आपु हारै।।

मन को जीतने के पहले हार मत जाना। मन को जीत लो, फिर विश्राम करो। फिर कोई चिंता न रही। मन को जीते बिना जो न हारे, जो लड़ता ही रहे मन को जीतने के लिए, जो जिन बने बिना रुके नहीं––सोई रजपूत है। दास पलटू कहैं लेहि मन जीत तब आपु हारै!

रुकना तभी, विराम तभी, विश्राम तभी––जब एक बात

सुनिश्चित हो जाए कि तुम मन के विजेता हो गए। सोई रजपूत है पलटू कहैं! वही है क्षत्रिय, वही है वीर पुरुष––जो काम को, क्रोध को, मोह को शस्त्र कर दे; जो ज्ञान की अग्नि में अज्ञान को भस्म कर दे। जो अपने साक्षी के भाव में 'मैं देह हूं' यह भी भूल जाए; 'मैं मन हूं', यह भी भूल जाए; 'मैं हूं', अंततः यह भी भूल जाए। जब समस्त 'मैं' विलीन हो जाता है, तो जो शेष रह जाता है––वही है ओंकार। वही है नाद। वही है हरिनाम।'

जो मन बाहर दौड़ता है, वहीं मन भीतर भी दौड़ाता है। गृहस्थ और संन्यस्थ का यही भेद है। मगर दानों दौड़ रहे हैं। एक को धन चाहिए, दूसरे को ध्यान चाहिए। एक पद को मांगता है, दूसरा परमपद अर्थात् प्रभुत्व को मांगता है। प्रवृत्ति– बहिर्मुखता है। निवृत्ति– अंतर्मुखता है। और दोनों अतियों के बीच, द्वन्द्वों के पार है–सम्वृत्ति। पहली अवस्था में सामान्य संसारी होता है। दूसरी दशा में साधक होता है। और तीसरी स्थिति में सिद्ध होता है। मन की भाग–दौड़ खत्म.... परम विश्राम आ गया, राम आ गया।

हरिं ओम् तत्सत्।

कौन मेरा, मैं किसका?

'ए देशोते एइ शुख होलो आबार कोथा जाइ ना जानि
पेयेछि ऐक भाँगा नोउका जौनोम गैलो छेंचते पानि।।
कार बा आमी के बा आमार,
आशोल बोस्तु ठिक नाही तार,
बोइदिक मेघे घोर औंधोकार
उदौय हौय ना दिनोमोनि।।
आर कि रे एइ पापीर भाग्ये,
दौयाल चाँदेर दौया हौबे
बोहिये पापेर तौरोनी।।
कार दोष दिबो ए भूबौने,
हीन होयेछि भौजोन गूने,
लालोन बौले कौतोदिने पाबो
सांइयेर चौरोन दूखानि।।'

इस संसार में आकर बहुत सुख पाया। न जाने फिर कहाँ जाऊँगा? एक टूटी सी नाव पाकर पूरा जन्म पानी निकालने में ही चला गया।

कौन है मेरा और मैं किसका हूँ? असल वस्तु को ही तो जान नहीं पाया। वेद ज्ञान रूपी मेघ सदा घिरा रहता है, जिससे अंधकार फैला रहता है। सूर्य का उदय ही नहीं होता, अर्थात् अहंकार रूपी अंधकार का बादल सूरज की रोशनी फैलने नहीं देता।

इस पापी के भाग्य में क्या दयालु चाँद की दया होगी, कितने दिन और इस हाल में पाप की नैया बहेगी?

इस संसार में किसको दोष दूँ क्योंकि यह हीन दशा तो साधन भजन बिना ही हुई है। संत लालन कहते हैं– साँई के चरण कब मिलेंगे, जिससे ये दीन–हीन दशा कटेगी?

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर लालन शाह कहते हैं–

'ए देशेते एइ शुख होलो आबार कोथा जाइ ना जानि
पेयेछि ऐक भाँगा नोउका जौनोम गैलो छेंचते पानि।।'

कहते हैं– इस संसार में आकर बहुत सुख पाया। न जाने फिर कहाँ जाऊँगा। एक टूटी सी नाव पाकर पूरा जन्म पानी में ही चला गया।

जब बाउल फकीर कहते हैं, एक टूटी सी नाव पाई जीवन में...ये टूटी नाव का अर्थ है शरीर को वो कह रहे हैं टूटी नाव। टूटी नाव...शरीर रूपी नाव जिसमें मौत का जल निरंतर भरता जा रहा है।

जैसे छेद वाली नाव हो और वो नदी में हो, तो आप कितना भी पानी निकालो, उसमें पानी भरता जाएगा और वो फिर डुबाने वाली साबित होगी। लेकिन आप पानी नहीं निकाल पाओगे, कितना पानी निकालोगे? नाव साबुत होनी चाहिए, टूटी नहीं। लेकिन ये शरीर रूपी नाव साबुत नहीं। इसमें मौत का जल कहीं ना कहीं से निरंतर भरता जा रहा है और हमारी कोशिश रहती है इसे बचाने की, हमारी जीवेषणा इसे बचाना चाहती है। लेकिन कौन बचा पाया है आज तक? जिस दिन से हमारा जन्म हुआ उस दिन से मृत्यु की शुरुआत हो गई। प्रतिदिन हमारे मस्तिष्क के पांच हजार सेल मरते हैं, जो दुबारा कभी नहीं बनते। अगर सुनने में सक्षम हो, तो जन्म के ही साथ मौत की पगध्वनि सुनाई देने लगती हैं। बच्चन जी ने लिखा है–

'स्वागत के ही साथ विदा की होती देखी तैयारी।
बंद होने लगी, खुलते ही, मेरी प्यारी मधुशाला।'

जन्म लिया और मरने की तैयारी शुरू हो गई। इस नाव को कैसे बचाएं? कोई नहीं बचा पाया और जब लालन शाह कह रहे हैं टूटी नाव, तो दो नाव हैं हमारे पास। एक जिंदगी की नदी में दो नाव चल रही हैं। पहली नाव शरीर की और इसी शरीर में एक और नाव कह लो, वह है मन की। जिसमें कि हमारा अहंकार है। इस अहंकार को डुबाने के लिए सात अरब लोग बैठे हुए हैं। इस मन रूपी नाव में, इस अहंकार के नाव में महत्वाकांक्षा के छेद हैं, प्रतिस्पर्धा के छेद हैं जिसे की हम कितना भी भरने की कोशिश करें, बाकी लोग तैयार है हमें डुबाने के लिए।

एक शब्द मनोवैज्ञानिक उपयोग करते हैं––'पर्सनैलिटी होल्स'––अहंकार के छेद की बात आती है तो पर्सनैलिटी होल कह लो। पर्सनैलिटी होल क्या है?

अगर कोई व्यक्ति दरिद्र है तो अपने को अमीर दिखाने की कोशिश में लगा हुआ है। जो हम हैं उससे हम उल्टा दिखाने की कोशिश में लगे हुए हैं। अगर हम डरपोक हैं तो अपने आप को साहसी दिखाने की कोशिश में लगे हुए हैं; अगर हम क्रूर हैं तो अपने आप को बड़े कृपालु

दिखाने की कोशिश में हैं; अगर हम डरपोक हैं तो बड़े वीर बन रहे हैं। तो जो हम नहीं है, वो हम दिखाने की कोशिश में लगे हुए हैं।

पहली जो नाव है शरीर की, जिसमें की बीमारियां भी आएंगी, ये तो प्रकृति का खेल है। इनसे हम बचेंगे, बचना भी चाहिए, तरह–तरह के प्रयास करेंगे; लेकिन जो दूसरी नाव है इसे बचाने में हमारा ज्यादा समय जा रहा है। ये अहंकार की नाव जो है, इसे बचाने में जिंदगी निकली जा रही है, और जीवन की हमारी जो ऊर्जा है वो सदा दूसरी ओर...बाहर की ओर बहती जा रही और हम खाली होते जा रहे हैं, बिल्कुल निस्तेज होते जा रहे हैं। इस अहंकार रूपी नाव को बचाने के लिए जो कोशिश है, इसे छोड़ा जा सकता है, यह व्यर्थ है। हम जो हैं, उसे स्वीकार करें और जैसे हैं प्रामाणिक होकर जिएं। प्रतिस्पर्धा की होड़ में न जाएं, तो बात बिल्कुल स्वयं पर लौट आएगी। ये जो ऊर्जा अहंकार को बचाने में लगी है, वो स्वयं पर लौटने लगेगी। स्वयं को स्वीकार किया, स्वयं पर लौटे। जब हम स्वयं पर लौटते हैं तो पाते हैं, ये स्वयं क्या है?

हमारे भीतर का जो स्वरूप है, अमृत स्वरूप, वही हैं हम। और जिसे बचाने की फिर कोई जरूरत नहीं है, जो कि नश्वर नहीं है। अमृत स्वरूप सदा–सदा शाश्वत है, अब इसे बचाने की कोई जरूरत नहीं है। अहंकार की नाव; अहंकार जैसी कोई चीज ही नहीं है, तो उसे जो है ही नहीं, उसे कैसे बचाओगे? हमारी आत्मा है, आत्म स्वरूप हमारी चेतना है...चैतन्य स्वरूप...जो कि सदा बचा हुआ है, शाश्वत है। उसे क्या बचाना? और हम भगवत् स्वरूप हैं। हम तो अत्यंत महिमावान हैं, दिव्य हैं; तो अपने आप को और क्या दिखाएंगे, जो हम हैं वो इतना विराट है कि और उसे अन्यथा दिखाने की क्या कोशिश करना!

वे जो अंहकार बचाने की कोशिश में अपना जीवन व्यर्थ गवां रहे हैं, वो छूट सकता है। वो मूल्यवान नहीं है। कैसे हम अपने वास्तविक स्वरूप पर लौट सकते हैं? जिसके बार में लालन फकीर हमसे आगे बात करेंगे।

एक बार की बात है, एक लकड़हारा रोज लकड़ी ढोता था। ढोते–ढोते बेचारा बहुत परेशान हो गया, क्योंकि काफी काम करना पड़ता था। एक दिन बहुत दुखी होकर बड़ा शिकायत से भर कर गिड़गिड़ा रहा था। हे प्रभु! तुम तो सुनते नहीं हो, चलो मौत ही भेज दो, मृत्यु आ जाए तो छुट्टी मिले, छुटकारा हो जाए। मौत ने सुन ली, मौत को दया आ गई और मौत बोली– बोलो, क्या मांगते हो? मैं तो आ गई तुम्हें लेने के लिए। किस तरीके से मेरे साथ जाना पसंद करोगे?

लकड़हारा देखकर डर गया और बोला– इतनी सी बात मांगता हूं, ये बड़ी भारी गठरी उठा रहा हूं तो आप इसको उठाइए और मेरे सिर पर रख दीजिए बड़ी कृपा होगी।

कहते हैं मरना है, मरना है लेकिन मरना नहीं चाहते हम। ये जीवेषणा जो है निरंतर हमें

बचाने में लगी हुई है। और जबकी हम बचे ही हुए हैं। हम कभी मरते ही नहीं हैं; हम अमृत स्वरूप हैं। तो हमें ये याद होना चाहिए कि जब तक हमारी दृष्टि अहंकार को बचाने में लगी हुई है, तब तक नाव में छेद है। जब हमारी दृष्टि भीतर की ओर मुड़ी तो नाव में अब छेद खत्म हो गए। और हम अपने वास्तविक स्वरूप को जान पाएंगे जो की विराट है, भगवत् स्वरूप है, आनंद स्वरूप है।

'कार बा आमी के बा आमार,
आशोल बोस्तु ठिक नाही तार,
बोइदिक मेघे घोर औंधोकार
उदौय हौय ना दिनोमोनि'

कौन है मेरा और मैं किसका हूँ? असल वस्तु को ही नहीं जान पाया। वेद ज्ञान रूपी मेघ सदा घिरा रहता है, जिससे अंधकार फैला रहता है, सूर्य का उदय ही नहीं होता।

कौन है मेरा और मैं किसका हूँ। लालन शाह जिसकी बात कर रहे हैं, वह असल वस्तु अपना चैतन्य स्वरूप है। ओंकार स्वरूप, जो भीतर विद्यमान है, उसकी बात कर रहे हैं। जब उसे हम जान लेंगे, तभी जान पाते हैं कि कौन है मेरा और मैं किसका हूं? जब स्वयं को जानेंगे तभी तो जान पाएंगे कि हमारा कौन है? जब तक स्वयं को ही नहीं जाना तो मेरा कौन है, कैसे हम जान पाएंगे? तो स्वयं को जानना होगा और जिस दिन हम स्वयं को जानते हैं, उस दिन हमें पता चलता है कि सिवाय गुरु के, सिवाय गोविन्द के, सिवाय हमारी आत्मा के, और जो दूसरे रूप हैं, आकार हैं, वो मेरे नहीं हैं। क्योंकि वो सब क्षणभंगुर हैं तो मेरे कैसे हुए? अपने ही नहीं हैं तो मेरे कैसे हो सकते हैं? जो अपना ही नहीं है, स्वयं का, वो हमारा कैसे हो सकता है? जिस दिन नाव में छेद बंद हो गए, उस दिन हमारी ऊर्जा स्वयं पर लौटी, हमने स्वयं को जाना और फिर उस दिन हम जान पाते हैं कि वास्तव में हमारा अपना कौन है?

वेद ज्ञान रूपी मेघ सदा घिरा रहता है, बड़ी अद्भुत बात कह रहे हैं लालन शाह––'वेद ज्ञान रूपी मेघ'––वेद का ज्ञान सदा घिरा रहता है। हमने जो किताबों से ज्ञान इकट्ठा किया है। जो जानकारी बाहर से हासिल की, वेद से, किताबों से, ग्रंथों से, वो एक अंधेरा पैदा कर देती है, वो शब्दों का जो जाल है वो हमें स्वयं से और–और दूर कर देता है, तो हम अपने वास्तविक स्वरूप से और–और दूर होते जाते हैं। स्वयं का स्वरूप तो शांति में, सन्नाटे में, थिरता में जाना जाता है। तो हमारे अंदर जितना ज्यादा ज्ञान होगा, उतने ही विचार चलेंगे, उतना हम अहंकार में डूबेंगे। उतने हम बहिर्मुखी होंगे। हम जानेंगे कि हम तो बहुत जानते हैं और मूर्खता में जिंदगी गुजार देंगे।

मूढ़ कौन है? जिसने वही जान लिया, जो नहीं जानने योग्य है, वही तो मूढ़ है। जिसने वही जानने की कोशिश की, जो साथ नहीं जाता, जिंदगी भर उसी को इकट्ठा करता रहा,

वही तो मूढ़ है। मूढ़ वह है, जो जानता है कि मैं ज्ञानी हूं, और है नहीं; वही तो मूढ़ है।

दरिया साहब कहते हैं–

'दरिया नर तन पाय कर, किया चाहे काज।
राज रंक दोनों तरैं, बैठे नाम–जहाज।।'

धन, पद के पीछे तो मौत आने वाली है, और सब कुछ हमारा, जो भी हमने जिंदगी भर किया, सब पर मौत आकर पानी फेर देगी। मौत का पानी भर जाएगा। हमने जो भी, जैसी भी कोशिश की जिंदगी भर, मौत उसे मटियामेट कर देने वाली है। दरिया साहब कह रहे हैं–असली काम कर लो। असली काम क्या है? प्रभु के स्मरण की नाव पर सवार हो जाओ। उस पर सवार हो जाओ, इसके पहले की हमें मौत ले जाए।

'मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।'

हम ऐसा मरना सीख लें, अहंकार की मौत सीख लें। ये अहंकार जीते जी मर जाए तो हमने असली काम कर लिया। असली काम है अहंकार को मरने दो, 'मैं' भाव को मरने दो और शून्य में लीन हो जाओ।

'आर कि रे एइ पापीर भाग्ये,
दौयाल चाँदेर दौया होबे
बोहिये पापेर तौरोनी।।'

इस पापी के भाग्य में क्या दयाल चांद की दया होगी? कितने दिन और इस हाल में पाप की नैया बहेगी? पाप की नैया, जब तक शरीर है, जब तक जीवेषणा है, जब तक अहंकार है तो प्रतिस्पर्धा रहेगी, ईर्ष्या रहेगी, यही सब पापों की जड़ है।

पाप में और अपराध में क्या भेद है? पाप क्या है? और अपराध क्या है? जरा समझ लें। पाप ऐसा नहीं है कि हमने किसी को मारा, तब पाप हुआ––नहीं, अगर हमने सोचा भी किसी को प्रताड़ित करने का, किसी पर हिंसा करने की, तो वह पाप हो गया। विचारों के तल पर किया कृत्य पाप हो गया। और अपराध– जब हम कर्म में ले आए तो वो अपराध हो गया। सारे पापों की जड़ जो है––जीवेषणा है, अहंकार है।

तो इसलिए कहते हैं गुरु साहिबान, संत, बाउल फकीर, सब यही कहते हैं कि इस अहंकार की नाव से हटकर अपने जीवन को, नाम की नाव पर, नाम के जहाज पर ले जाओ। उस पर अपनी सवारी कर लो तो जीवन धन्य हो जाएगा।

आएं, अब परमगुरु ओशो की अमृत वचन सुनें जो उन्होंने संत गोरखनाथ के पद की व्याख्या करते हुए समझाए–

'गोरख कहै सुणौ रे मोंदू
अरंड अमीं कत सींचौ।'

और कब तक पागलों, व्यर्थ के घास-फूस को जीवन के महा-मूल्यवान अमृत से सींचते रहोगे।

'सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू नहीं तो परलै धा।'

नहीं तो प्रलय तक तुम यही करते रहोगे।

'कंद्रप रूप काया का मंडण, अबरिथा काइ उलींचौ।'

ये व्यर्थ की कामवासनाओं की जो भीड़ तुम्हारे भीतर है, इसी में उलझे रहोगे।

'चकमक ठरकै अगनि झरै त्यूं, दधि मथि घृत कर लीया।'

जैसे चकमक पत्थर को रगड़ने से आग पैदा हो जाती है, ऐसे ही जरा भीतर रगड़ को जगाओ, युक्ति सीखो और तुम्हारे भीतर भी ज्योति जल उठे।

'चकमक ठरकै मानि झरै त्युं दधि मथि घृत कर लीया।'

और जैसे दही को मथ कर...तुम दूध से दही बनाते, दही को मथ कर तुम घी बना लेते, ऐसे ही थोड़े-से मंथन की जरूरत है कि तुम्हारे भीतर जीवन का सार, तुम्हारे भीतर जीवन की परम उपलब्धि फलित हो जाए। तुम्हारे भीतर स्वर्ण-फूल खिलें।

'आपा माहीं आपा प्रगट्या, तब गुरु संदेसा दीया।'

और तुम्हारे भीतर ही छिपा है जिसे तुम खोजने चले हो।

'आपा मांहीं आपा प्रगट्या।'

वहीं प्रगट हो जाएगी आत्मा, वहीं परमात्मा।

'सतगुरु मिलै तो ऊबरै बाबू नहीं तो परलै धा।'

हरि ओम् तत् सत्!

देह : परमात्मा की पवित्र भेंट

'ना जेने घौरेर खौबोर ताकाओ कैनो आसमाने।
चाँद रोयेछे चाँदेर कोले ईशान कोने।।
प्रोथोमे चाँद उदौय दोक्खिने,
शुक्लोपौक्खे आशे नेमे बामे,
आबार दैखो कृष्णपौक्खे
किरूपे जाय दोक्खिने।।
खूँजले आपोन घौरखाना
तूमी पाबे शौकोल ठिकाना।
बारोमाशे चोब्बीश पौक्खो
औधोर, धौरा तार शौने।।
शौर्गो–चौन्द्रो देहो चौन्द्रो हौय
ताते भिन्नों किछू नौय।
ए चाँद धोरीले शे चाँद मिले,
फोकीर, लालोन कौय निर्जौने।।'

'संत लालन शाह कहते हैं– अपने घर की खबर लो पहले फिर बाहर देखना। पहले स्वयं को जानो, फिर आसमान की खबर लेना। चांद तो चांद के पास ही है, फिर कहाँ ढूंढ़ना। पहले चांद दक्षिण में उदय होता, फिर शुक्ल पक्ष में बायें जाता, फिर कृष्ण पक्ष में दक्षिण में जाता, अर्थात् वो सुन्दर सलोना चांद अपने ही अनुसार चलता। स्वयं में खोजने से ही तू सकल ठिकाना पाएगा। बारह मास में चौबीस पक्ष स्वयं में ही हैं, स्वयं में ही उस अधर को जानकर उस चांद को पाया जा सकता है।

स्वर्ग चन्द्र इस देह रूपी चंद्र में ही समाया है। उससे कुछ भी भिन्न नहीं है। इस देह में उदय चंद्र को जानने से ही उस अधर चन्द्र को जाना जा सकता है। फकीर लालन एकांत में इस गूढ़ रहस्य का उद्घाटन कर रहे हैं।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'ना जेने घौरेर खौबोर ताकाओ कैनो आसमाने।

चाँद रोयेछे चाँदेर कोले ईशान कोने।।'

संत लालन किसी ज्योतिषी से कहते हुए इस गीत को गा रहे हैं कि पहले अपने घर की खबर लो, फिर बाहर देखना। पहले स्वयं को जानो, फिर आसमान की खबर लेना। चांद तो चांद के पास ही है, फिर कहाँ ढूंढना। ज्योतिष है ग्रह नक्षत्रों का, आसमान का, चांद का ज्ञान, ग्रहों के खेल का ज्ञान। लेकिन स्वयं का ज्ञान ज्योतिष नहीं है। अपने आप को नहीं जानते, लेकिन सर्वत्र सब कुछ जान रहे हैं; दूर–दूर की खबर है।

'आए बहार बन के, खिजां बन के ढल गए

मुस्कान के इरादे अश्कों में झल गए।

नजरें तो टिकी हुई थीं चांद और सितारों पर,

खुद अपने ही आंगन की जमीं पर फिसल गए।'

जब हम स्वयं को नहीं जानते तो जीवन में एक न एक दिन मृत्यु आती है और हम जीवन ऐसे ही खो देते हैं।

अपना पता करना होगा, स्वयं को जानना होगा तब हमें अपने घर की खबर होगी। पहले स्वयं को जानो, फिर अपने घर का पता चलेगा। फिर अपने घर की खबर होगी।

लालन शाह कहते हैं– कैसे जानेंगे हम अपना घर? हम अपने आप के बारे में जो जान रहे हैं, दूसरों से जान रहे हैं। दूसरों से जानना, ये गलत उपाय है स्वयं को जानने का। दूसरों से ख्याति का क्या अर्थ है? ख्याति का अर्थ...दूसरों से हम पूछ रहे हैं हम क्या हैं? हम एक अच्छे गायक हैं, हम एक अच्छे लेखक हैं, हम एक अच्छे कवि हैं, हम एक अच्छे राजनीतिज्ञ हैं, अच्छे साहित्यकार हैं, अच्छे विचारक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, धर्माचार्य हैं, ये दूसरे हमें बता रहे हैं। और जब लोग बार–बार कहते हैं कि आप तो महान हैं तो उनकी बातें सुनते–सुनते हमें भी भरोसा आने लगता है। और हमें भी एक आत्म सम्मोहन पैदा हो जाता और हम भी मानने लगते हैं कि हां, यही हम हैं।

हमारा जो व्यवसाय है, वही हम हैं। लेकिन हम ये नहीं हैं। तो हम क्या हैं? हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है? इस आत्म सम्मोहन के घेरे को तोड़कर हमें बाहर निकलना होगा। ये बाहर कैसे निकलेंगे? इस मार्ग में जाने का जो रास्ता है, उसका नाम है– ध्यान। और यही है सही उपाय स्वयं को जानने का।

ये जीवन एक यात्रा है। ये यात्रा है––मृत्यु से अमृत की ओर––अंधकार से प्रकाश की ओर। और याद रखना, इस यात्रा में वे सारे लोग भटके हैं, जो बाहर तलाश रहे हैं। वे सारे लोग सुलझे हुए हैं और सही रास्ते में हैं, जो स्वयं के भीतर छिपे रहस्य को जानने की दिशा

में अपने भीतर की यात्रा कर रहे हैं...अंतर्यात्रा कह लो... अंतर्यात्रा कर रहे हैं। और जो अपने से दूर निकल चुके, चाहे दुनिया भर का ज्ञान हो जाए लेकिन हर ज्ञान एक भटकाव ही है, दूर ले जाने वाला भटकाव। लौटना है स्वयं पर, दूसरे पर नहीं जाना है, अपने पर लौटना है। फिर कहते हैं लालन शाह–

'प्रोथोमे चाँद उदौय दोक्खिने,
शुक्लोपौक्खे आशे नेमे बामे,
आबार दैखो कृष्णपौक्खे
किरूपे जाए दोक्खिने।।'

वे कहते हैं– पहले चांद दक्षिण में उदय होता, फिर शुक्ल पक्ष में बायें जाता, फिर कृष्ण पक्ष में आता और सुन्दर सलोना चांद अपने अनुसार चलता। हम चांद को कितना जानेंगे? चांद की दिशा तो हमेशा बदलती ही रही है। दो प्रकार के चांद––एक चांद वो आसमान वाला चांद; एक और चांद है जो कभी नहीं बदलता वो है परमात्मा रूपी चांद, जो हमारे इसी शरीर में मौजूद है। उस आसमान वाले चांद की चांदनी तो हमेशा नहीं रहती लेकिन एक चांदनी है जो सदैव रहती है; उस चांदनी को जब हम जानते हैं तब हम अपने वास्तविक स्वरूप को जान पाते हैं, उससे हमारा परिचय हो पाता है।

वो चांद की चांदनी... जो चैतन्य रूपी चांद हमारे भीतर मौजूद है, परमात्मा रूपी चांद जो हमारे भीतर है...उसकी चांदनी जो छिटकी हुई है, उस चांदनी के बारे में **ओशो फ्रेगरेंस** में आने पर निरति में बताया जाता है। उस चांदनी को जान लेने से हम स्वयं के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। अपने वास्तविक घर को जानते हैं, जहां पर वो चांदनी छिटकी हुई है।

'खूँज़ले आपोन घौरखाना
तूमी पाबे शौकोल ठिकाना।
बारोमाशे चोब्बीश पौक्खो
औधोर, धौरा तार शौने।।'

स्वयं में खोजने से ही तू सकल ठिकाना पाएगा। बारह मास में चौबीस पक्ष स्वयं में ही हैं। स्वयं में ही उस अधर को जानकर उस चांद को पाया जा सकता है। लालन शाह कह रहे हैं–

'खूँज़ले आपोन घौरखाना'

स्वयं में खोजना होगा। जो स्वयं को जान लेता है, उसने सब जान लिया। और जिसने स्वयं को नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना।

उपनिषद् की एक प्यारी कथा है, उद्दालक का बेटा श्वेतकेतु ज्ञान प्राप्त कर गुरुकुल से लौटा। जब पिता से मिला तो पिता ने पूछा– क्या तूने उस एक को जाना, जिसे जानकर

सब जान लिया जाता है? क्या तूने अपने उस वास्तविक स्वरूप को जाना? क्या तूने अपने अमृत स्वरूप से पहचान की?

श्वेतकेतु कहता है कि मैंने ये जाना, मैंने वो जाना। सब कुछ उसने बखान किया लेकिन उस एक का बखान नहीं कर पाया, उसे जाना ही नहीं। तो उद्दालक कहते हैं कि तुम वापस लौट जाओ। केवल बाहरी ज्ञान ही नहीं, जब तक स्वयं का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सको, लौटना मत। और श्वेतकेतु फिर लौट जाता है।

जो सब को जान रहा है, उस जानने वाले को जानना है। और यही वास्तविक ज्ञान है। और उसे कहां खोजना होगा? उसे स्वयं में खोजना होगा।

'शौर्गो–चौन्द्रो देहो चौन्द्रो हौय
ताते भिन्नों किछू नौय।
ए चाँद धोरीले शे चाँद मिले,
फोकीर, लालोन कौय निर्जौने।।'

स्वर्ग चंद्र इस देह रूपी चंद्र में समाया हुआ है। उससे कुछ भी भिन्न नहीं है। स्वर्ग चंद्र––वही चंद्र जो कि भीतर सदा मौजूद है, जिसकी चांदनी हमेशा भीतर अंतर आकाश में छिटकी हुई है। उस चांद की बात कह रहे हैं। कहते हैं कि वो इसी देह में समाया हुआ है, इस देह में ही उदय होता है। उस चांद को जानने से ही उस अधर चंद्र को जाना जा सकता और अधर चांद चैतन्य को बोल रहे हैं, परमात्मा को बोल रहे हैं।

फकीर लालन कहते हैं– अधोर चांद एकांत में ही जाना जाता है। एकांत हिमालय जाने से नहीं मिलता, एकांत अकेले गुफा में जाने से नहीं मिलता। एकांत मिलता है उस एक को जानने से जो अनंत है। तब हमें एकांत की पहचान होती है। अपने भीतर वो एक जो गुफा है, वो जो अंतर आकाश है, वो जो अपना घर है, वहां जाकर जब हमारी चेतना ठहरती है, तब एकांत का पता चलता है और फिर हम भरी भीड़ में ही अकेले हो जाते हैं। अपने रस का मजा लेते हुए भीड़ में भी पूरा मजा...जैसे जल में कमलवत् हो जाते हैं भरी भीड़ में।

'आईने के सौ टुकड़े, कर के हमने देखे हैं।
एक में भी तनहा थे, सौ में भी अकेले हैं।।'

कितने भी निर्जन स्थान पर हम जाएं, एकांत नहीं होता हमारा, चाहे हम हिमालय पर भी चले जाएं। भरी भीड़ में रहेंगे, विचारों का ऊहापोह, पता नहीं क्या–क्या चलता रहेगा? हिमालय क्या कर सकता है? गुफा बेचारी क्या कर सकती है?

सुन्दरदास कहते हैं–

'देह सो ना देहरा।'

क्योंकि लालन शाह देह की बात कर रहे हैं, इसी देह में वो चांद समाया हुआ है। सुन्दरदास भी यही कहते हैं, सारे संत एक ही बात कहते हैं।

'देह सो न देहरा।'

देह जैसा कोई द्वार नहीं है, देहरी नहीं है। देहरी यानी जो दरवाजे पर चौखट होती है, उस देहरी को कह रहे हैं।

'देह सो न देहरा।'

ये देह ऐसी देहरी है, जिसको पार कर के परमात्मा तक जाया जा सकता है।

'प्रीति सी ना पाती कोऊ, प्रेम से ना फूल और।'

प्रीति जैसी कोई पाती नहीं हो सकती और प्रेम जैसा कोई फूल नहीं हो सकता। बाहरी फूल चढ़ाने से कुछ नहीं होगा, अपने प्रेम के फूल चढ़ाने होंगे अपने प्रभु के चरणों में।

'चित्त सौ ना चंदन, सनेह सौ न सोहरा।'

इस चित्त जैसा चंदन हो नहीं सकता और स्नेह जैसा सेहरा नहीं हो सकता, सजावट नहीं हो सकती।

'मन सी ना माला कोऊ सोहम सा ना जाप और।'

मन की माला सबसे सुन्दर माला है।

'माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।'

माला फेरते रहो, जिंदगी भर फेरते रहो, मन चलता रहा तो माला फेरने से कुछ नहीं होगा। इस मन की ही माला बना लो।

'मन सी ना माला कोऊ, सोहम सा न जाप और।

आतमा सौ देव नांहिं, देह सो ना देहरा।।'

इस देह जैसी देहरी नहीं है, और आत्म जैसा देव नहीं है। इस आत्म देव तक जाने के लिए इस देह को पार करना होगा। ये देह मंदिर है, इस देह के माध्यम से हमें जाना है। याद रखना किसी भी संत ने देह की निंदा नहीं की है। तथाकथित जो नहीं जानते और कहते हैं अपने आप को हमने जाना, वो बाहर का ज्ञान जिसने प्राप्त किया, वो निंदा कर सकते हैं कि शरीर नर्क की खान है, नर्क का द्वार है। लेकिन नहीं! संत कहते हैं यही शरीर मंदिर है और इसी शरीर से होकर परमात्मा तक जाया जा सकता है। इसी द्वार से होकर परमात्मा तक जाया जा सकता है, यही तो द्वार है। चैतन्य का द्वार है, परमात्मा का द्वार है, आत्म साक्षात्कार का द्वार है। आत्म साक्षात्कार ही परमात्मा का साक्षात्कार है।

तो सच्चे सद्गुरुओं ने भी निंदा नहीं की; वो कहते हैं ये शरीर परमात्मा की भेंट है। इसलिए इसी देह में वे सारे द्वार हैं जिससे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओ। अब अंत में, 'बिरहनी, मंदिर दियना बार' नामक प्रवचनमाला में परम गुरु ओशो देह के विषय में क्या कहते हैं, आएं, हम सुनते हैं–

'तुम्हारे तथाकथित पुरोहित तुम्हारी देह की निंदा में संलग्न हैं।

सदियों से उनका एक ही काम है कि तुम्हारी देह की निंदा करें, कि तुम्हें देह का शत्रु बनाएं, कि तुम्हें बताएं कि देह के कारण ही तुम परमात्मा से टूटे हो। झूठी यह बात है, सरासर झूठी यह बात है, सौ प्रतिशत झूठी यह बात है। तुम्हारी देह परमात्मा के विपरीत नहीं है। तुम्हारी देह को तो परमात्मा ने अपना आवास बनाया है। तुम्हारी देह मंदिर है, पूजा का स्थल है, काबा है, काशी है। तुम्हारी देह को दबाना मत, सताना मत। तुम्हारी देह को तोड़ने में मत लग जाना। हालांकि यही तुम्हें सिखाया गया है, यही जहर तुम्हें पिलाया गया है। दूध के साथ, घुट्टी के साथ, तुम्हें यह जहर पिलाया गया है कि देह पाप है।

और जिसको यह समझ में आ गई बात, जिसके भीतर यह बात बहुत गहराई में बैठ गई, यह नासमझी कि देह पाप है, वह परमात्मा से कभी भी न मिल सकेगा। क्योंकि देह से डरा-डरा बाहर-बाहर रहेगा और देह के भीतर तो प्रवेश कैसे करेगा? पाप में कहीं प्रवेश किया जाता है?

देह उसकी भेंट है, पाप नहीं। देह पुण्य है, पाप नहीं। देह पवित्र है, अपवित्र नहीं। देह का सम्मान करो। देह का सत्कार करो। और तभी तो तुम प्रवेश कर पाओगे। देह से मैत्री बनाओ, यारी साधो। और धीरे-धीरे देह में भीतर सरको।

योग तैयार करता है तुम्हारी देह को, ताकि तुम भीतर सरक सको; तुम्हारी देह के द्वार खोलता है। और ध्यान, तुम्हें देह के भीतर बैठने की कला सिखाता है। और जिसने देह के द्वार खोल लिए योग से और जिसने ध्यान से भीतर बैठने की कला सीख ली, पा लिया उसने परमात्मा को। सदा परमात्मा ऐसे ही पाया गया है।

बिरहनी, मंदिर दियना बार! आत्म-ज्योति भीतर जलानी है। यह दीया तुम्हारी देह में जलना है। जलाना है, कहना शायद ठीक नहीं- जल ही रहा है, पहचानना है, प्रत्यभिज्ञा करनी है।'

हरि ओम् तत्सत्!

गुरु : अंधकार–हर्ता

‘जे जौन देखेछे औटोल रूपेर बिहार
मुखे बोलुक ना बोलुक, शे राखबे ओइ नेहार।।
नौयोने रूप ना देखते पाय–
नाम–मौन्त्रो जोपींले की हौय,
नामेर तूल्यों नाम पावा जाय
रूपेर तूल्यों कार।।
नेहाराय गोलमाल होले
पोड़बीं मोन कू–जौनार भोले
आखेरे गुरु बोले धोरबीं कारे
तौरोंगो माझारे।।
शौरूप–रूपेर रूपेर भैला
त्रिजौगोते कोरछे खैला,
औधींन लालोन बौले, मोन रे भोला
कोले घोर तोमार।।’

‘जो जन उस अटल विराट रूप को जान जाता है, वह मुख से कुछ नहीं कहता है; वह केवल उस विराट रूप को ही निहारता है। चर्म–चक्षु से उस विराट को देखा नहीं जा सकता। मंत्र जपने से भी वह नहीं मिलता। नाम के तुल्य और कुछ भी नहीं है। नाम गान से ही उस विराट को जाना जा सकता है। देखने में भूल हो जाए तो भटकना हो जाता है और व्यक्ति कुसंग में पड़ जाता है। अंततः गुरु ही हाथ थामकर तरंगों के बीच संभालते हैं। इस त्रि–जगत के खेल में, संत लालन कहते हैं– रे भोले मन! तू घोर अंधेरा है। गुरु स्वरूप से इस अंधेरे को मिटाया जा सकता है।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'जे जौन देखेछे औटोल रूपेर बिहार

मुखे बोलुक ना बोलुक, शेराखबे ओइ नेहार।।'

जो जन उस अटल विराट रूप को जान जाता है, वह मुख से कुछ नहीं कहता है, वह केवल उस विराट रूप को ही निहारता है।

लाओत्सु नाम के एक संत हुए हैं चीन में, वो रोज सुबह घूमने जाते थे और उनके साथ उनका एक मित्र भी घूमने जाता था। एक दिन उस मित्र के घर में मेहमान आया तो उस मित्र ने लाओत्सु से पूछा कि मैं अपने मित्र को भी लाना चाहता हूं, अपने मेहमान को भी ले आऊं साथ में? तो लाओत्सु ने हां कह दिया। और वो मित्र को लेकर आ गया। तीनों लोग घूमने गए और जब लौट रहे थे, लौटते समय जब यात्रा खत्म होने को थी, तब वो जो मेहमान मित्र था वो कहता है लाओत्सु से कि आज की सुबह बड़ी मनमोहक सुबह थी। बस इतनी सी लाइन कही उसने और चले गए। लाओत्सु ने अपने मित्र से कहा कल तुम अकेले ही आना, अपने मित्र को नहीं लाना, तुम्हारा मित्र बहुत बकवासी है।

हमें सुनकर हंसी आएगी, एक लाइन बोलना और बकवासी हो गया। उस सौन्दर्य के बारे में कहा नहीं जा सकता, जो भी कुछ कहेंगे सब बकवास ही होगी। जो भी परम अनुभव है, अनुभव के बारे में कहना संभव नहीं। जैसे अगर आप कुछ मीठा खाएं, मिठास के बारे में कैसे कहोगे? सुगंध के बारे में कैसे बताओगे, कैसी है सुगंध? सुगंध के बारे में शब्द नहीं दे सकते, मिठास के बारे में शब्द नहीं दे सकते, बहुत मुश्किल है; अनुभव को शब्दों में लाना मुश्किल है।

परमात्मा... विराट का अनुभव...शब्दों के पार है, और कहना पड़ता है शब्दों में। सत्य विराट है और शब्द हैं क्षुद्र। मन के पार होता है सत्य का अनुभव, और मन के माध्यम से कहा जाना है। अनुभूति मन के पार हुई है, अभिव्यक्ति मन से करनी है और मन है क्षुद्र, शब्दों की सीमा है। मन क्षुद्र है, तो कैसे उस विराट को कहेगा? अकथनीय, अवर्णननीय को कैसे कहोगे? इसलिए संत जो अनुभव करता है, वो बस निहारता ही रह जाता है। खो ही जाता है, लीन ही हो जाता है।

जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो सात दिन तक वो मौन रहे, कुछ बोले ही नहीं। कहानी कहती है कि देवता आए, देवताओं ने तरह–तरह से प्रार्थनाएं की, फुसलाया, तरह–तरह के तर्क दिए, और बुद्ध को राजी किया शब्द में आने के लिए।

तो झेन नामक एक संत हुए हैं, यही घटना उनके साथ घटी, उन्हें तो देखा जाना ही मुश्किल हो गया, वो इतने विलीन हो गए कि उनका तो शरीर भी देखना मुश्किल हो गया और फिर देवताओं ने एक साजिश गढ़ी और उस विधि से उनके शरीर को देखा।

तो जब वो परम अनुभूति होती है तो संत उसमें लीन हो जाते हैं, और मुख से कुछ नहीं कहते लेकिन फिर भी कहना है। उस परम अनुभूति के बारे में लोगों को नहीं बताएंगे, उस अनुभूति को सामान्य जन तक नहीं लाएंगे तो प्यास कैसे पैदा होगी? जीवन की व्यर्थता कैसे दिखेगी और सार्थकता की ओर कैसे अग्रसर होंगे? तो एक बंधन भी है, एक आवश्यक बुराई भी है कि हमें कहना भी है, शब्दों के माध्यम से कहना है। कुछ ऐसे ही कह पाएंगे।

एक व्यक्ति रेगिस्तान गया, सुबह की सुन्दर धूप थी, चिड़ियों की चहचहाहट थी, लहरों की अवाज थी, फूलों की खुशबू, धूप भी थी; उसने सोचा क्यों ना ये सब अपने दोस्त के लिए ले चलूं, जो की बीमार है, घर से बाहर ही नहीं निकल पाता, उसके लिए ये बड़ा सुन्दर उपहार होगा। वो एक संदूक लाया और उस संदूक में सब कुछ भर लिया, और ले जाता है। अपने दोस्त को कहता है कि मैं तुम्हारे लिए बहुत अमूल्य उपहार लेकर आया हूं। और संदूक खोलता है तो देखता है कि ना उसमें चिड़ियों की चहचहाहट है, ना वहां फूलों की सुगंध है, ना वहां धूप है। नहीं ला सकते, धूप को कैसे बांधोगे?

हां, एक विज्ञापन आता है टेलीविज़न पे, एक छोटी सी बच्ची अपनी मम्मी के पास मुट्ठी बांधकर आती है, मम्मी पूछती है क्या है? बच्ची कहती है– धूप। मां के पास पीयर्स साबुन है जो की पारदर्शी है, और वो दिखा देती है कि ये देखो इसमें रख लेते हैं, और वो उसको चमका कर धूप दिखा देती है।

ऐसा विज्ञापन में हो सकता है लेकिन वास्तविक जीवन में संभव नहीं है। उस परम अनुभव को हम मुट्ठी में नहीं बांध सकते। सूरज को कैसे मुट्ठी में बांधोगे? आकाश को कैसे मुट्ठी में बांधोगे? सुगंध को कैसे मुट्ठी में लाओगे? संभव नहीं है। इसलिए मौन; जिसने मौन होने की कला सीखी, जिसने चुप होकर गुरु के चरणों में बैठना सीखा, उसके हृदय में वह इम्प्रेशन हो जाता है।

गुरु इसको कहते हैं– उपनिषद्। गुरु के निकट बैठना। गुरु का दीया जल गया है, उनके निकट बैठने से हमारी भी चेतना का दीया जल जाता है। ये संभव है और संभव तभी है, जब हमें मौन बैठना आए; तब उस मौन के अंतरंग क्षणों में ही गुरु शिष्य को कुछ दे पाता है, जैसे की बुद्ध ने विमल कीर्ति को दिया था उन मौन के क्षणों में।

'नौयोने रूप ना देखते पाय–
नाम–मौन्त्रो जोपीले की हौय,
नामेर तूल्यों नाम पावा जाय
रूपेर तूल्यों कार।।'

चर्म–चक्षु से उस विराट को देखा नहीं जा सकता है। मंत्र जपने से भी वह नहीं मिलता। नाम के तुल्य और कुछ भी नहीं है। नाम गान से ही उस विराट को जाना जा सकता है।

इन आंखो से उस विराट को नहीं देख सकते, क्योंकि ये आंखें केवल पदार्थ को ही देख सकतीं हैं। ये आंखें द्वैत को, आकार को ही देख सकती हैं। इन आंखों से लौकिक ज्ञान संभव है, पारलौकिक ज्ञान संभव नहीं; उस विराट को, उस निराकार को, उस शून्य को नहीं देखा जा सकता। वह इंद्रियातीत ज्ञान है, इन दो आंखों के पीछे जो आंख है, उस तीसरी आंख से उस सत्य को देखा जाता है। मनातीत होकर देखा जाता है।

कहते हैं मंत्र जपने से भी वह नहीं मिलता, मंत्र जपने से वह विराट कैसे मिलेगा? मंत्र क्या है? मंत्र विचार है और शब्द हैं; शब्दों और विचार से ही तो बना है मंत्र, और सत्य मनातीत है, मन के पार है। मंत्र के द्वारा अगर कोई स्वयं के पार जाना चाहे, मन के पार जाना चाहे और परमात्मा के अनुभव को पाना चाहे तो संभव नहीं। कुछ ऐसा ही कह लो कि अपने ही जूते की बंध को उठा के स्वयं को उठाओ, कैसे संभव है? मंत्र के द्वारा मन के पार जाना और परमात्मा का ज्ञान संभव नहीं है।

फिर आगे वो कहते हैं– नाम के तुल्य आगे और कुछ भी नहीं है। नाम के तुल्य, नाम मंत्र नहीं है, अनाहत मंत्र है। अनाहत मंत्र क्या है? अनाहत मंत्र मन के पार जाने पर मिलता है। मन के पार, तन–मन के पार हमारी चेतना में जब हमारा प्रवेश होता है, वो चेतना गुंजायमान है। वहां गूंज रहा है वह अनाहत मंत्र, उसे सुनने से परमात्मा मिलता है। उस नाम ज्ञान से ही उस विराट को जाना जाता है। और याद रखना नाम गान राम, राम, राम गाना नहीं है। नाम गान है– वो जो भीतर निरंतर चल रहा है, निरंतर राम नाम की जो गूंज भीतर चल रही है, उस गूंज को सुनना, उस गूंज में डूबना; ये असली नाम गान और नाम स्मरण है। इसके द्वारा परमात्मा को पाया जा सकता है, मंत्र से नहीं। मंत्र के पार जाकर अनाहत मंत्र में जब हम डूबते हैं, तब परमात्मा पाया जाता है।

'नेहाराय गोलमाल होले
पोड़बी मोन कू–जौनार भोले
आखेरे गुरु बोले धोरबी कारे
तौरोंगो माझारे।।'

देखने में भूल हो जाए तो भटकन हो जाती है और व्यक्ति कुसंग में पड़ जाता है। अंततः गुरु ही हाथ थामकर तरंगों के बीच सम्भालते हैं। कबीर साहिब कहते हैं–

'मेरे सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो मैं बहि जाता।।'

इस संसार रूपी नदिया में मेरा बहना हो रहा था, लेकिन मेरे सद्गुरु ने मेरी बांह पकड़ कर मुझे निकाल लिया।

'करम काटि कोइला किया, ब्रह्म अगिनि परिचार।'

सारे कर्मों को भस्मभूत कर दिया ब्रह्म की अग्नि में जला दिया।

'लोभ मोह भ्रम जारिया, सद्गुरु बड़े दयार।।'

मेरे लोभ, मोह, भ्रम सब को जला दिया; इतने दयालु हैं मेरे सद्‌गुरु।

'कागा ते हंसा किया, जाति बरन कुल खोय।

'कागा से हंसा किया' कागा कुशलता का प्रतीक है। 'हंसा किया' और श्वेत हंस जो है वो शुभत्व का प्रतीक है।

दया दृष्टि से सहज सब, पातक दारे धोय।।'

गुरु की दया दृष्टि क्या पड़ी कि सारे जीवन के पाप विलीन हो गए। जब भी जीवन में विराट का उदय होता है, जब भी जीवन में सत्य की अनुभूति होती है, उस दिन पता चलता है गुरु की कृपा से ही हुआ। गुरु उत्प्रेरक है, गुरु की मौजूदगी मात्र ही काफी है।

कैसे गुरु की कृपा से हुआ? गुरु कुछ करता नहीं है, लेकिन गुरु के किए से ही होता है। गुरु ने क्या किया? और शिष्य ने क्या किया? ऐसा समझ लो जैसे शिष्य है किसान। शिष्य ने बीज बोए, अगर तुम बीज ही नहीं बोते तो फल कैसे आते? पौधा कैसे लगता? कुछ भी नहीं होता। शिष्य ने आम का बीज बोया। अब क्या ये किसान के हाथ में है कि उसे खींच–खींच के अंकुर निकाले, पेड़ बनाए? आम प्रतिवर्ष आम दे, ये तो परमात्मा के हाथ में है, ये तो अस्तित्व के हाथ में है। तो इसलिए जो शिष्य करता है वो इतना छोटा है, बीज बोना इतना छोटा है कि वो करने जैसा है ही नहीं। कुछ किया ही नहीं, सारा काम तो अस्तित्व कर रहा है। इसलिए हर शिष्य को यही लगता है, उसने तो कुछ भी नहीं किया, सब कुछ तो गुरु ने किया। उसके जीवन में गुरु ही कर्ता पुरुष बन गया, उसकी ही कृपा से सब कुछ हुआ।

'शौरूप–रूपेर रूपेर भैला
त्रिजौगोते कोरछे खैला,
औधीन लालोन बौले, मोन रे भोला
कोले घोर तोमार।।'

इस त्रि–जगत के खेल में, संत लालन कहते हैं– रे भोले मन! तू घोर अंधेरा है। गुरु स्वरूप से इस अंधेरे को मिटाया जा सकता है।

त्रि–जगत का खेल...जैसे पदार्थ बना है, जिसमें इलेक्ट्रॉन हैं, प्रोटॉन हैं, न्यूट्रॉन हैं। हमारे भीतर सत्व गुण है, रजस है, तमस है, ये है त्रि–जगत का खेल। इनको बनाने वाले, ये सृष्टि को बनाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश; ये त्रि–जगत का खेल है।

और फिर कहते हैं लालन शाह–

रे भोले मन! तू घोर अंधेरा है। तू अंधेरा है, अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए गुरु स्वरूप से इस अंधेरे को मिटाया जा सकता है। प्रत्यक्ष रूप से नहीं लड़ा जा सकता है; अंधेरे से हम प्रत्यक्ष रूप से लड़ेंगे तो हार–हार जाएंगे क्योंकि अंधेरे का अस्तित्व ही नहीं है। इसीलिए गुरु जीवन में दीया जलाना सिखाता है। जैसे ही हम जीवन में दीया जलाना सीखते हैं, वह दीया जो बिन बाती बिन तेल जल रहा है; जीवन का अंधेरा तुरंत मिट जाता है। सारे भ्रम तुरंत

दूर हो जाते हैं, जन्मों–जन्मों का अंधेरा दूर हो जाता है। ये कला गुरु बताता है।

आएं, अब हम परम गुरु ओशो को सुनते हैं–

'गुरु' बनता है दो शब्दों से– गु और रु। गु का अर्थ होता है अंधकार; रु का अर्थ होता है अंधकार को दूर करने वाला। गुरु का अर्थ है जिसके अंतस का दीया जल गया है; जिसके भीतर रोशनी हो गई है; सूरज हो गया है; जिसके अंग–अंग से, द्वारों से, झरोखों से, संधों से रोशनी झर रही है। और जो भी उसके पास बैठेंगे, नहा जाएंगे उस रोशनी में; उस प्रभामंडल से वे भी आंदोलित होंगे। जो स्वर गुरु के भीतर बजा है, उसकी चोट तुम्हारे हृदय की वीणा पर भी पड़ने लगेगी।

जो गुरु ने जाना है, उसे गुरु जना नहीं सकता; जो जाना है उसे बता नहीं सकता। लेकिन उसके पास बैठें तो बिना कहे कुछ कह दिया जाता है और बिना बताए कुछ बता दिया जाता है। उसकी मौजूदगी, उसकी उपस्थिति तुम्हें तरंगायित कर देती है।

स्वभावतः रोशनी के पास बैठोगे, अगर आंख बंद कर के भी बैठे तो भी रोशनी में नहा जाओगे। संगीत चाहे सुनाई भी न पड़े तो भी तुम्हारे रोएं–रोएं को स्पर्श करेगा। और सुगंध, चाहे तुम्हारे नासापुट सक्रिय न भी हों, तो भी तुम्हारे नासापुटों तक आएगी, तुम्हारे फेफड़ों तक पहुंचेगी। और सुगंध तुम्हारे फेफड़ों तक पहुंच जाए तो नासापुट सक्रिय हो जाएंगे। और रोशनी तुम्हारे रोएं–रोएं को नहला दे तो आंखें खुल जाएंगी।

सुबह देखा नहीं, चादर ओढ़े बिस्तर पर पड़े हो और सूरज उगने लगा है, दरवाजे बंद हैं, परदे पड़े हैं और फिर भी परदों की संधों से रोशनी भीतर आने लगी और रोशनी तुम्हारी बंद आंखों पर पड़ने लगी, तत्क्षण कोई भीतर जाग जाता है। तत्क्षण कोई भीतर कहने लगता है कि सुबह हो गई, अब उठो।'

हरि ओम् तत्सत्!

मुर्शिद ही अल्लाह है

‘मुर्शीद बिने कि धौनआर आछे रे ए जौगोते
मुर्शीदिर चौरोन–शुधा
पान कोरिले होरे खुदा
कोरो ना देले दिधा
जे ही मुर्शीद शे ही खुदा
बोझ अलियम मौरशेदो
आयेत लेखा कोरानेते।।
आप्नी खोदा आप्नी नोबी
आप्नी शेई आदम छोबी,
औनोन्तोरूप कौरे धारोन,
के बोद्ये तार निराकौरोन
निराकार हाकिम निरौंजौन,
मुर्शीद–रूपे भौजोन पौथे।।
‘कुल्ले साइन मोहित’ आर ओ आलाकुल्ले
साइन कादिरो–
पोड़े कालाम नेहाज कौरो
तौबे शौब जानिते पारो,
कैनो लालोन फाँके फेरो,
फोकीरी नाम पाड़ाओ मित्थे।’

‘मुर्शिद बिना और कौन सा धन है इस जगत में? मुर्शिद की चरण–सुधा का पान करने से सारी क्षुधा दूर हो जाती है। जो मुर्शिद है वही खुदा है। कुरान के आयत में भी यही लिखा है कि मुर्शिद ही अल्लाह है। मुर्शिद ही खुदा, मुर्शिद ही नबी है। स्वयं में ही वह आदम छवि समाए हुए है। अनंत रूप धारी, निरंजन, हाकिम रूपी मुर्शिद का रूप ही भजन–पथ है। मुर्शिद में ही उस अल्लाह का रूप समाया है, इस कलाम को जानकर ही निहारते चलो, तभी सब जाना जा सकता है। संत लालन कहते हैं कि अली–गली के बीच ना फिरो। मिथ्या फकीरी नाम मत धरो।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'मुर्शीद बिने कि धौनआर आछे रे ए जौगोते'

मुर्शिद बिना और कौन सा धन है इस जगत में?

इस जगत का जो भी धन है, वो धन कहने जैसा नहीं है; क्योंकि वास्तविक धन वही है, जो सदा–सदा हमारे साथ जाए, मृत्यु के बाद भी हमारे साथ जाए। असली कसौटी सत्य की यही है कि जो शाश्वत है, वही असली है। और जो इस संसार का धन है वह तो यहीं छूट जाता है।

एक बार की बात है, गुरु नानक देव किसी गांव में गए और वहां का जमींदार उनसे मिलने के लिए आया। उनके चरणों में गिर गया और कहा कि मैं आप के लिए क्या कर सकता हूं? आप मुझे आदेश दीजिए।

नानक देव ने कहा कि मैं तुम्हें एक छोटी सी सूई देता हूं। इस सूई को तुम मुझे मृत्युपर्यन्त लौटा देना। जमींदार ने कहा बिल्कुल। इतना छोटा सा काम, आप के लिए अवश्य करूंगा। आप जो भी कहेंगे वही करने के लिए तैयार हूं। ये तो बिल्कुल छोटा सा काम है। ये कह के वो चला गया; उसे अहंकार के नशे में, धन के नशे में, पद के नशे में कुछ याद ही नहीं रहा और चला गया। जब घर गया, सोया, सोते वक्त उसे याद आया कि मृत्यु के साथ कैसे ले जाऊंगा इसे? और उसे फिर अपने पर पश्चाताप हुआ। दूसरे दिन लौट कर नानक देव के पास आया और क्षमा मांगी। बोला मुझे क्षमा करिए, मुझे और काम दे दीजिए, दूसरे आदेश दीजिए; ये कैसे हो सकता है? ये तो मैं नहीं कर पाऊंगा।

तब नानक देव बोले कि तुम जिसे धन समझ कर सारा जीवन व्यर्थ कर रहे हो, और दूसरों के ऊपर तानाशाही कर रहे हो, दूसरों को तंग कर रहे हो उस धन के लिए, जो तुम ले ही नहीं जा सकते। एक सूई ही नहीं ले जा सकते तो किसलिए ये जीवन व्यर्थ कर रहे हो?

सारा जगत ऐसे ही धन को इकट्ठा करने में जीवन व्यर्थ कर रहा है। कोई धन, कोई पद, कोई संबंध, कोई प्रेम साथ नहीं जाता। सब धन के ही रूप हैं। अलग–अलग स्वभाव के जो लोग हैं, उनके अलग–अलग प्रकार के धन हैं। और उन्हीं को एकत्रित करने में वो अपनी सारी जिंदगी लगा देते हैं। लेकिन सिवाय मुर्शिद के, लालन शाह कहते हैं–

'मुर्शीद बिने कि धौन आर आछे रे ए जौगोते'

ये सारे रिश्ते–नाते यहीं छूट जाते हैं, सारा प्रेम यहीं छूट जाता है।

'जाती हुई मैयत देख के भी, लिल्लाह तुम उठ कर आ न सके,

दो चार कदम तो दुश्मन भी तक़लीफ़ गवारा करते हैं।।'

लेकिन कहां? चार कदम भी मुश्किल से साथ दे पाते हैं। ऐसा ही स्वभाव है इस जगत का। लेकिन मुर्शिद हमें ऐसा धन देता है जो अमृत स्वरूप है, जो हमारी आत्मा का संगीत है। और जो निरंतर हमारे भीतर गूंज रहा है, जिसे सुनकर हम भवसागर से पार हो जाते हैं।

गुरु में और शिक्षक में भेद है...शिक्षक भी ज्ञान देता है लेकिन शिक्षक ज्ञान देता है

बाहर का, शिक्षक हमें सूचनाएं देता है, ज्ञान देता है, महत्वाकांक्षाएं जगाता है, मन को हमारे मजबूत करता है। और गुरु क्या करता है? गुरु हमें मन के पार ले जाता है। गुरु हमें ज्ञानातीत, सरल बनाता है, सहज बनाता है, और अतीत और भविष्य से मुक्त होकर वर्तमान में जीने का कला सिखाता है। और वर्तमान ही द्वार है प्रभु का, जिसने वर्तमान में जीना सीख लिया, उसके जीवन से मृत्यु का भय विदा हो गया।

बाहर के ज्ञान के लिए हम शिक्षक खोजते हैं, गुरु खोजते हैं। सोचते हैं विज्ञान, गणित, भूगोल सब चीजों के लिए हमें अध्यापक चाहिए और हम भूल जाते हैं कि जो असली शिक्षा है, जीवन में साथ जाने वाली है, उसके लिए हम गुरु नहीं खोजते। हम सोचते हैं, ये तो हम शास्त्रों से पढ़ लेंगे, किताबों से ले लेंगे। ये कैसी दृष्टि है?

इसके लिए हमें गुरु चाहिए, कोई ऐसा व्यक्ति चाहिए जिसे देखकर हमारे भीतर एक प्रेरणा जागे। जिसकी शांति हमें प्रभावित करे, जिसकी सरलता, जिसकी निर्दोषता हमें प्रभावित करे और हमें भी लगे कि हम ऐसी अवस्था में पहुंच पाएंगे। ऐसा भरोसा जागे। ऐसे व्यक्ति को देख कर एक श्रद्धा जागे। इसलिए गुरु की जीवन में बहुत आवश्यकता है। गुरु याद दिलाते हैं, जिसे हम भूलकर जीते हैं। और पूरी जिंदगी दुनिया भर की चीजें इकट्ठी करते हैं, दुनिया भर से संबंध बनाते हैं; सिवाय एक संबंध के जो शाश्वत संबंध है, शिष्य और गुरु का।

'मुर्शिदिर चौरोन–शुधा
पान कोरिले होरे खुदा
कोरो ना देले दिधा
जे ही मुर्शीद शे ही खुदा
बोझ अलियम मौरशेदो
आयेत लेखा कोरानेते।।'

मुर्शिद की चरण–सुधा का पान करने से सारी क्षुधा दूर हो जाती है। जो मुर्शिद है वही खुदा है। कुरान के आयत में भी यही लिखा है कि मुर्शिद ही अल्लाह है।

एक बार अल हल्लाज मंसूर के गुरु ने कहा कि मंसूर तुम जाओ और हज कर के आओ। मंसूर तुरंत उठा और अपने गुरु के सात चक्कर लगा लिए। और कहा मेरा हज हो गया।

शिष्य के लिए गुरु भगवान है, गुरु ही काबा है। मुर्शिद की गली का एक फेरा सौ हज के बराबर होता है।

'मुर्शिदिर चौरोन–शुधा
पान कोरिले होरे खुदा'

समस्त संतो की शिक्षा का सार है कि ज्ञान इकट्ठा नहीं करना, जीवंत गुरु के पास बैठना। जीवंत गुरु खोजना, उससे जुड़ना। और तब फिर भीतर अंतर ज्ञान तक हम पहुंचते हैं; और तब जीवन में जो विवेक और ज्ञान उत्पन्न होता है, उस ज्ञान को पाना है। वो गुरु के

चरणों में ही होता है।

कहते हैं लालन शाह कि जो मुर्शिद है वही खुदा है, कुरान की आयत में भी यही लिखा है। मुर्शिद की चरण–सुधा का पान करने से सारी क्षुधा दूर हो जाती है। अब क्षुधा यानी प्यास पर निर्भर करता है।

एक शिष्य की प्यास कुछ और है, एक विद्यार्थी की प्यास और है और एक भक्त की प्यास कुछ और है। विद्यार्थी विद्वान बनने आया है। विद्यार्थी सूचनाएं एवं ज्ञान इकट्ठा करने आया है, महत्वाकांक्षाओं को भरने आया है। शिष्य अपने रूपांतरण के लिए आया है, आत्मरूपांतरण से गुजरने के लिए आया है, उसकी खोज में आया है। एक और शब्द है डिसाइपल, डिसिप्लिन से जो शब्द बना। अब ये गुरु के चरणों में मिटने के लिए तैयार है। जब तक ये गुरु के चरणों में मिटना ना हो जाए, तब तक तृप्ति ना होगी, तब तक पूर्णता ना होगी; तो जिसे आध्यात्मिक प्यास है उसकी तृप्ति गुरु के चरणों में ही जाकर होगी। और जिसे सांसारिक प्यास है, संसार के ज्ञान की प्यास है वो शिक्षक के पास तृप्त हो जाएगा।

लौकिक ज्ञान जरूरी है संसार के पार जाने के लिए, आत्मा तक जाने के लिए, अंतर तक जाने के लिए, अपने अंतरतम में प्रवेश के लिए आध्यात्मिक ज्ञान जरूरी है जो कि सत्संग में मिलता है। एक शब्द है उपनिषद्– गुरु के चरणों में बैठना। वेद कितेब से आध्यात्मिक ज्ञान नहीं मिलता।

‘आप्नी खोदा आप्नी नोबी
आप्नी शेई आदम छोबी,
औनोन्तोरूप कौरे धारोन,
के बोद्ये तार निराकौरोन
निराकार हाकिम निरौंजौन,
मुर्शीद–रूपे भौजोन पौथे।।’

मुर्शिद ही खुदा, मुर्शिद ही नबी है। स्वयं में ही वह आदम छवि समाए हुए है। अनंत रूप धारी, निरंजन, हाकिम रूपी मुर्शिद का रूप ही भजन–पथ है।

भक्त के लिए मुर्शिद ही उसका भगवान है, मुर्शिद ही खुदा, मुर्शिद ही नबी है। आदम छवि, हमें मुर्शिद में परमात्मा को देखने की कला आनी चाहिए। जिस दिन हम अपने मुर्शिद में, अपने गुरु में परमात्मा देखते हैं, उस दिन हमारे भीतर जो परमात्मा मौजूद है उसे देखने की कला आ जाती है, उसे देखने का गुर हमें मिल जाता है। एक भरोसा, एक दृढ़ता आती है गुरु में परमात्मा की छवि को देखकर।

गुरु क्या है?...उस निराकार ने रूप ले लिया। गुरु है देहधारी परमात्मा। और परमात्मा क्या है?...गुरु जब विलीन हो गया उस निराकार में, उस अनंत विराट में, परमात्मा हो गया। जब हम इंद्रियों के पार की अवस्था में जाते हैं, तब मुर्शिद का ये रूप देखने को मिलता है। और जिस दिन हम मुर्शिद में इस रूप को देखते हैं, उस दिन हमें परमात्मा का अनुभव होता है।

ऋषि कहते हैं कि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। मुर्शिद ने, गुरु ने ब्रह्म को जाना है, वह ब्रह्मस्वरूप भी है। पतंजलि के अंतिम सूत्र में धारणा, ध्यान, समाधि आता है। अगर गुरु में हमने धारणा कर ली उस निराकार की, उस विराट की तो वो धारणा हमें ध्यान में ले जाएगी। और वही धारणा हमें समाधि में ले जाएगी। अपने अंतरतम में ले जाकर अपने परमात्म स्वरूप के दर्शन करा देगी। गुरु में परमात्मा की धारणा करना, जीवन की एक विधि बन जाए तो हम उस विधि से परमात्मा तक पहुंच सकते हैं। गुरु में उस विराट स्वरूप का, उस आकाश का, उस शून्य का, उस निरलेप का...वह आकाश जिस पर काले बादलों का रंग नहीं चढ़ता, कुछ नहीं चढ़ता, कुछ उसे प्रभावित नहीं करता...उस आकाश का अनुभव करना; और उसकी याद में जीना, यही सच्चा भजन पथ है, यही सुमिरन है। उस निराकार, निराधार चैतन्य की याद में जीना और वह तभी हो सकता है जब हमें गुरु से प्रेम हो। गुरु शुरुआत है उस निराकार तक पहुंचने की।

'जिस्म की बात नहीं है, अपने दिल तक जाना है।
लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है।।
नये परिन्दों को उड़ने में वक्त तो लगता है।
प्यार का पहला ख़त लिखने में वक्त तो लगता है।।
ढूंढ़ रहा कोई काशी में कोई काबा में।
जीवन में गुरु को पाने में वक्त तो लगता है।।'

बाहर का गुरु आकार स्वरूप है। और वह गुरु जो हमारे भीतर छुपा हुआ है निराकार रूप में, उस गुरु तक जाने में वक्त तो लगता है। बाहर का गुरु एक शुरुआत है, द्वार है, उस गुरु तक जाने के लिए, उस निराकार गुरु तक, उस निरलेप, जिस पर कोई लेप नहीं चढ़ता, उस गुरु तक जाने के लिए द्वार है।

लालन शाह कहते हैं– मिथ्या मत करो। मिथ्या क्या है? जब हम अपनी जिम्मेदारियों को छोड़कर भाग जाते हैं शांति पाने के लिए चाहे वह जंगल हो, चाहे वह हिमालय हो। जब हमने संसार को छोड़कर, अपने जिम्मेदारियां जो थीं, वह सब छोड़कर पलायन कर लिया, ये मिथ्या है। और जिस दिन हमने होश और जागरण को केन्द्र बनाकर जीना शुरू कर दिया, तब हमने शुरुआत की। एक है पलायन से शुरुआत करना, और एक है कि कैसे हम परमात्मा की प्यास से शुरुआत करें? कैसे हमारा और–और होश सधे? कैसे हमारे जीवन में ध्यान घटे? कैसे सुमिरन घटे? कैसे हम गुरु से जुड़ें? ये है सच्ची प्यास, जो अपने आप को मिटा देने के लिए तैयार है, जो शून्य में लीन हो जाने के लिए तैयार है, जिसे कुछ भी नहीं चाहिए, जो मिटने के लिए कटिबद्ध हो गया है, तैयार हो गया, वह है सच्चा भक्त।

आएं, अब हम परमगुरु ओशो को सुनें–

'फकीर का अर्थ है– जिसने यह कहा कि मेरा कुछ भी नहीं है। यह कहते ही उसने कह दिया कि मैं कुछ भी नहीं हूं। तो फकीर का

पहला परिधिगत अर्थ तो होता है कि मेरा कुछ नहीं और गहरा केंद्रगत अर्थ होता है कि मैं कुछ नहीं।

जिसके पास कुछ भी नहीं है, 'स्व' भी नहीं, वही। फिर स्वभावत: मस्ती का क्या कहना। जितना तुम्हारे पास है उतनी चिंता है, उतना द्वंद्व है, उतनी फिक्र है, उतनी सुरक्षा करना, व्यवस्था करना। जब तुम्हारा कुछ भी नहीं है, फिर कैसी चिंता, फिर कैसी सुरक्षा? फिर तुम सो सकते हो पैर पसार कर।

एक प्रधानमंत्री संन्यस्थ हो गया। सम्राट उसे बहुत चाहता था। धीरे-धीरे खबरें आने लगी कि वह परम ज्ञानी हो गया। तो सम्राट उसके दर्शन करने को गया। लेकिन सम्राट का ही पुराना मंत्री था, तो अनजानी अपेक्षाएं भी थीं। जब सम्राट वहां पहुंचा तो वह प्रधानमंत्री पैर फैलाए एक वृक्ष के नीचे बैठा था, नंग-धड़ंग, एक ढपली बजा रहा था। न तो उसने ढपली बजाना बंद किया, न उठ कर नमस्कार किया, न पैर सिकोड़े। यह जरा सीमा के बाहर थी बात। यह जरा अशिष्ट था। सम्राट ने कहा, और सब तो ठीक है। मैंने सुना है, तुम ज्ञानी हो गए; मगर यह कैसा ज्ञान? तुमने पैर भी न सिकोड़े, तुमने ढपली भी अपनी बंद नहीं की। तुम उठ कर खड़े भी नहीं हुए। कम से कम पैर तो सिकोड़ो। शिष्टाचार तो न भूल जाओ।

वह हंसने लगा। उसने कहा, जाने दो जी। अब क्या पैर सिकोड़ने? पैर सिकोड़ता था, क्योंकि भीतर द्वंद्व था; पद को बचाना था। तुम्हारे लिए पैर सिकोड़े थे, इस भूल में तुम पड़ना भी मत; अपने ही लिए पैर सिकोड़े थे। और तुम्हारे लिए उठ-उठ खड़ा होता था, इस झंझट में तुम पड़ना ही मत; इस भ्रांति में मत रहना। अपने लिए ही उठ-उठ कर खड़ा होता था। भय था, पद को बचाना था। प्रतिष्ठा बचानी थी। धन बचाना था, नौकरी बचानी थी। अब किसलिए उठना जी? किसके लिए उठना? अब तो जब उठना होगा उठेंगे, नहीं उठना होगा नहीं उठेंगे। अब कैसा शिष्टाचार और कैसा आचार? वे सब बातें थीं, बकवास थीं; भीतर तो अहंकार था।

फकीर का अर्थ होता है- जिसके पास अब अपना कुछ भी नहीं।

अलमस्त शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो होता है- अपनी मस्ती में डूबा हुआ है। और दूसरा अर्थ होता है- निर्द्वंद्व; जिसके भीतर अब कोई द्वंद्व न रहा। अब कोई चिंता नहीं उठती। अब जो है, ठीक है। अब जैसा है, बिल्कुल ठीक है। जैसा जगत चलता हो चलता रहे, उसके सुख में कोई अंतर नहीं पड़ता।

हरि ओम् तत्सत्!

कौन मालिक, कौन गुलाम?

‘आमार घौरेर चाबी पौरेर हाते।
आमार घौरेर चाबी पौरेर हाते।
कैम्ने खूलिये शेधौन देखबो चोक्खेते।।
आपोन घौरे बोझाइ शोना
पौरे कौरे लेना–देना
आमी होलेमजौन्मो–काना
ना पाइ देखीते।।
राजीं होले दौरवानी
दार छाड़िये देबेन तिनि,
तारे बा कोई चिनि शूनि
बैड़ाई कूपौथे।।
एइ मानुषे आछे रे मोन
जारे बौले मानुष–रौतोन,
लालोन बौले पेये शेधौन।
पारलाभ ना रे चिनिते।’

‘संत लालन शाह कहते हैं– मैंने अपने घर की चाबी दूसरे को दे दी है। अब कैसे उसे खोलूँगा और उस परम धन को देखूँगा।

अपने घर में ही तो अपार धन है, जिसे दूसरे खरीद–बेच रहे हैं, लेन–देन कर रहे हैं। लेकिन मैं जन्म का अंधा, इसे देख भी नहीं पा रहा हूं।

अगर मेरे अंतर में बैठे दरबान राजी हो जाएं तो द्वार खोल देंगे, लेकिन मैं तो इतना अधम हूं कि उन्हें पहचानता भी नहीं हूं। सदा कुपथ पर चला हूँ, उस विराट को सामने पाकर भी कैसे पहचानूंगा?

इस मानुष में ही तो अनमोल रतन हैं। लालन संत कहते हैं– उस अमूल्य धन को पाकर भी मैंने उसे नहीं पहचाना।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'आमार घौरेर चाबीं पौरेर हाते।

आमार घौरेर चाबीं पौरेर हाते।

कैम्ने खूलिये शेधौन देखबो चोक्खेते।।'

मैंने अपने घर की चाबीं दूसरे को दे दी है। अब कैसे उसे खोलूँगा और उस परम धन को देखूँगा।

एक बार एक फकीर के पास एक सम्राट आए और उन्होंने कहा कि मेरे पास एक प्रश्न है, मैं बहुतों के पास गया हूं इस प्रश्न का उत्तर खोजने। अंतिम आशा लेकर आपके पास आया हूं। ये प्रश्न है कि स्वर्ग क्या है, नर्क क्या है और मुक्ति क्या है?

फकीर ने बड़ी–बड़ी आंखों से सम्राट की ओर देखा, सम्राट क्षण भर को ठहर गया कि किस तरीके का फकीर है, ऐसे देख रहा है लगातार? फिर बोलता है– तुम्हारे दिमाग में गोबर भरा है। कुछ अकल है तुमको, शकल देखी है अपनी आईने में? पूछने आए हो स्वर्ग–नर्क क्या है, मुक्ति क्या है?

राजा को तो गुस्सा आ गया, किस तरीके का फकीर है? उसने अपनी तलवार म्यान से निकाल ली, और जैसे ही तलवार गले पर लगाने वाला था, फकीर ने उसे बोला कि देखो ये है नर्क का द्वार।

सम्राट को भी समझ में आ गया, होश आ गया तब तक। पैरों में गिर गया, क्षमा मांगने लगा, आंसू झरने लगे। फकीर ने कहा– ये देखो, यह है स्वर्ग का द्वार।

राजा को अब बात समझ में आई। हमने जब तक अपनी चाबीं दूसरे को दे दी है, दूसरों से हम लगातार प्रभावित हैं, दूसरे हमारी प्रशंसा कर दें तो हम खुश हो जाते हैं, दूसरे हमारी निंदा कर दें तो हम दुखी हो जाते हैं; दूसरे हमें प्रेम करें तो हम उमंग में आ जाते हैं। सदा हम दूसरों से संचालित हो रहे हैं, यही है चाबीं दूसरे को देना। लेकिन जिस दिन हमारी चाबीं स्वयं के हाथ आती है...कैसे आती है? ... जिस दिन साक्षी का आविर्भाव होता है, तब चाबीं हमारे हाथ में आ गई।

अब हम बाहर से संचालित नहीं हो रहे हैं, बाहर से प्रेरित नहीं हो रहे। अब फिर हम अपने घर में हैं। हमारा घर, जब हम अपने घर में होते हैं, अपने भीतर से संचालित होते हैं तब हम प्रेमपूर्ण हैं, तब हमारे भीतर क्षमा है। जितने सद्‌गुण हैं वो सारे हमारे भीतर से बाहर की ओर प्रवाह करने लगते हैं। जिसको हम आचरण कहते हैं, इनसाइड आउट। लेकिन ये बाहर से नहीं थोपे जाते। भीतर से आते हैं; और भीतर से कैसे आएंगे? जब हम अपने भीतर साक्षी चैतन्य में रमण करेंगे, तब हमारे भीतर ये प्रेम, ये सेवा, ये करुणा, ये क्षमा, सारे सद्‌गुण आ जाएंगे।

और मुक्ति क्या है? ...सुख–दुख, स्वर्ग–नर्क, इन सब के पार उस शून्य अवस्था में, इन दोनों के मध्य में ठहर जाना। समता भाव में ठहर जाना। सुख और दुख के मध्य में, कुछ चीज हमें दुखी करती है, तब हम नहीं डोलते। और इन दोनों के मध्य में जब हम जीना सीख जाते हैं, तब हम जीते जी मुक्त हो जाते हैं। जीवित मुक्त हो जाते हैं। यह है मुक्ति।

और इसका द्वार क्या है? ... द्वार है ध्यान, मेडिटेशन; जब तक हम बाहर से प्रभावित होते रहेंगे, तब तक हम अपने भीतर स्थित हो ही नहीं सकते। बाहर से प्रभावित होना जिस दिन हम छोड़ देते हैं, और वह छोड़ने से नहीं छूटता। जिस दिन हमें अपने स्वभाव का पता चलता है, जिस दिन हम अपने आप में ठहर जाते हैं, उस दिन हम बाहर से प्रभावित होना बंद हो जाते हैं, बाहर से संचालित होना बंद हो जाते हैं।

'आपोन घौरे बोझाइ शोना
पौरे कौरे लेना–देना
आमी होलेमजौन्मो–काना
ना पाइ देखीते।।'

अपने घर में ही तो अपार धन है, जिसे दूसरे खरीद–बेच रहे हैं, लेन–देन कर रहे हैं। लेकिन मैं जन्म का अंधा, इसे देख भी नहीं पा रहा हूं।

अपने घर में अपार धन...जब हम भीतर अपने घर में जाते हैं, जिस दिन चाबी अपने हाथ में आती है, घर खुलता है और भीतर जाते हैं, तो उस दिन पाते हैं कि यहां तो अपार धन है। लेकिन इसी धन को लोग खरीद–बेच रहे थे। हम इतने धनवान हैं लेकिन दूसरे लोग खरीद–बेच रहे थे, लेन–देन कर रहे थे; और हम अंधे कि हम देख नहीं रहे थे।

ऐसे समझें, जहां दो राजा हों वहां की जनता की कैसी मुसीबत हो जाती है? किसकी माने, किसकी नहीं माने? ऐसे हमारे भीतर दो नहीं, हमारे भीतर कई राजा हैं। हम इंद्रियों के गुलाम हैं। सारी इंद्रियां मालिक बन के बैठी हुई हैं। मन हमारा इन सब का गुलाम हो गया है, और फिर हमारी हालत इस गुलामी में कितनी पीड़ादायी हो सकती है, जरा सोचें?

इस संदर्भ में परमगुरु ओशो ने संत पलटू पर प्रवचन देते हुए जो कहा है; आइए, हम उन प्यारे वचनों को सुनते हैं–

'दस इंद्रियां हैं तुम्हारे भीतर और हर इंद्री तुम्हें अपनी तरफ खींच रही है। और तुम्हारा इंद्र सोया हुआ है। इंद्र आकाश में नहीं है, याद रखना। इंद्र तो तुम्हारे भीतर उस तत्व का नाम है जो तुम्हारी सारी इंद्रियों के ऊपर मालकियत कर सकता है। इंद्र वह जो इंद्रियों का मालिक है। इंद्र वह जिसके चारों तरफ इंद्रियां नाचें, जो सिंहासन पर विराजमान हो सके। इंद्र का अर्थ है स्वामित्व। और स्वामित्व

किसका हो सकता है? सोए हुए का नहीं। सोया हुआ तो अनेक होगा; जागा हुआ एक हो सकता है। सोने में तो अनेक सपने होंगे; जागने में सब सपने खो जाएंगे, सिर्फ जागरण बचेगा।

'पलटू जहवां दो अमल, रैयत होय उजाड़।'

एक तुम्हारी आत्मा है, जो कहती है चलो परमात्मा की तरफ। और एक तुम्हारी देह है, जो कहती है चलो पदार्थ की तरफ। देह खींचती है जमीन की तरफ और आत्मा खींचती है आकाश की तरफ। और तुम उजड़े जा रहे हो।

तुम्हारा तनाव क्या है? मनुष्य के जीवन में इतनी चिंता क्या है? एक ही चिंता, एक ही तनाव कि विपरीत की तरफ खिंचाव है। इसमें तय करना जरूरी है कि कौन मालिक है और कौन गुलाम?'

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'राजी होले दौरवानी
दार छाड़िये देबेन तिनि,
तारे बा कोई चिनि शूनि
बैड़ाई कूपौथे'

अगर मेरे अंतर में बैठे दरबान राजी हो जाएं तो द्वार खोल देंगे, लेकिन मैं तो इतना अधम हूँ कि उन्हें पहचानता भी नहीं हूँ। सदा कुपथ पर चला हूँ, उस विराट को सामने पाकर भी कैसे पहचानूंगा।

दरबान राजी हो जाए...कैसे राजी हो दरबान? भक्त क्या करता है? भक्त से सीखना होगा। भक्त 'मैं' को मिटाता है, दरबान राजी हो जाता है और द्वार खुल जाते हैं। जैसे ही हमने 'मैं' को मिटाया, द्वार खुल जाते हैं। 'मैं' का ही तो ताला है, 'मैं' ही तो बाधा है; क्योंकि 'मैं' से बड़ी और कोई बाधा ही नहीं है।

और कुपथ क्या है? कुपथ है जो हमें हमसे तोड़ दे। जो हमें वास्तविक स्वरूप से दूर ले जाए। यही कुपथ है। और इस रास्ते में जो भी साथ देता है, वो सारे लोग कुपथ ही हैं। और सुपथ क्या है? ठीक इससे उल्टा, जो हमें हमसे जोड़ दे, हमारे वास्तविक स्वरूप से हमें जोड़ दे; हमें ओंकार से जोड़ दे। अहंकार से जो जोड़ दे वो कुपथ और जो ओंकार से जोड़ दे वो सुपथ। और ओंकार से कौन जोड़ता है? ओंकार से गुरु जोड़ता है।

'एइ मानुषे आछे रे मोन
जारे बौले मानुष–रौतोन,
लालोन बौले पेये शेधौन।
पारलाभ ना रे चिनिते।'

इस मानुष में ही तो अनमोल रतन है। लालन शाह कहते हैं उस अमूल्य धन को पाकर भी मैंने उसे नहीं पहचाना। इस मानुष में ही अनमोल रतन है... ये भी संत बताते हैं। रतन हम बाहर खोजते हैं लेकिन गुरु बताते हैं कि कहां है वो अनमोल रतन? साधना की शुरुआत में जितनी आवश्यकता गुरु की है, उससे भी कहीं अधिक आवश्यकता साधना के समापन में है। जिस दिन साधना का शिखर आता है, जिस दिन वो अनमोल रतन मिल जाता है, जिसे हमने कभी देखा नहीं, जिसने हीरा देखा नहीं तो कैसे जानेगा ये हीरा है? वो तो पत्थर ही समझेगा। हीरा तो जौहरी ही बताएगा।

ऐसे ही उस अमूल्य धन की पहचान गुरु करवाते हैं। अब ये धन जो है...यही तो तुम हो...ये बताने के लिए शुरुआत से भी ज्यादा अंतिम शिखर पर गुरु की आवश्यकता होती है। जो अब बता दे कि अब प्रसाद बरस गया है, अब मंजिल आ गई है। अब परिणाम आ चुका, फूल खिल चुका है। उस क्षण को बताने के लिए अब गुरु चाहिए।

जैसे अष्टावक्र जनक को चाहिए थे। हर गुरु शिष्य को बताता है कि यही तुम हो; तत्वमसि श्वेतकेतु।

'एइ मानुषे आछे रे मोन
जारे बौले मानुष–रौतोन,
लालोन बौले पेये शेधौन।
पारलाभ ना रे चिनिते।'

इस मानुष में ही तो अनमोल रतन है। लालन शाह कहते हैं कि उस अमूल्य धन को पाकर भी मैंने उसे नहीं पहचाना।

अमूल्य धन को, साक्षी की आंख जब तक ना हो, तब तक पहचानना संभव नहीं है। साक्षी की आंख मिलते ही उस अमूल्य धन को पहचाना जाता है।

एक बार की घटना है, भर्तृहरि का नाम सब ने सुना होगा, भर्तृहरि जंगल में तपस्या कर रहे हैं, ध्यान में बैठे हैं; एक क्षण को जब उनकी आंख खुलती है और पास में देखते हैं तो कुछ चीज चमक रही है। देखते हैं वो तो हीरा है बहुत अमूल्य हीरा। एक क्षण को उनके मन में ख्याल आया, मन हिला और तुरंत साक्षी जाग गया, होश आ गया कि अरे मैं तो हीरों का मालिक रहा हूं और तुरंत अडोल हो गए, अखंड हो गए, अपने आप में थिर हो गए, और देखते क्या हैं? दो घुड़सवार आ गए और दोनों में आपस में बकवास होने लगी कि मैंने इस हीरे को पहले देखा ये मेरा है। और दूसरा कहता नहीं मेरी नजर इसपर पहले गई, इसलिए हीरा मेरा है।

दोनों में झगड़ा छिड़ गया, तलवारें निकल गईं, दोनों ने एक दूसरे पे वार किया, मर गए, दोनों खत्म हो गए। क्षण भर की देर थी, साक्षी जाग गया था भर्तृहरि का, नहीं तो वही हालत उनकी भी होती। जब तक साक्षी नहीं जागा तब तक उस अमूल्य धन से दूर–दूर हैं; है

तो सब के पास, लेकिन वो आंख ही नहीं है। वो आंख जागती है ध्यान से, ध्यान के क्लाइमैक्स...ध्यान के शिखर से वो आंख मिलती है साक्षी की। और कहते हैं अमूल्य धन को पाकर भी मैंने उसे नहीं पहचाना। और जब अमूल्य धन साक्षी की साधना से मिलता है, तब फिर हमें गुरु की जरूरत पड़ती है।

शुरुआत में तो गुरु की जरूरत थी ही, जिसकी प्रेरणा पाकर हम अंतर यात्रा की ओर निकले। अंतर यात्रा के रास्ते बताता है गुरु। लेकिन जब अंतर यात्रा की मंजिल आती है और वह अनमोल धन मिल जाता है, तब बताने के लिए भी पारखी चाहिए न, जिसने हीरे को देखा है। जिसने हीरा ही नहीं देखा, वो तो पत्थर ही समझेगा। शिष्य को कैसे पता चलेगा कि मंजिल आ गई है? यही है असली हीरा, यही है अनमोल रतन, ये गुरु बताता है। साधना के अंतिम शिखर पर अंतिम पड़ाव पर गुरु और भी आवश्यक हो जाता है। जैसे जनक को अष्टावक्र मिले, ऐसे ही हर जनक को आध्यात्मिक जीवन में अष्टावक्र की जरूरत पड़ती है। राजा होकर भी जनक गुलाम ही थे। अष्टावक्र से मिलकर सचमुच में सम्राट हुए, मालिक बने।

परम सम्राट परमात्मामय होकर ही कोई मालिक बनता है। अपनी आत्मिक गुलामी के प्रति जागो, और मालकियत की ओर कदम बढ़ाओ। दुखों में बहुत जी लिए, अब आनंद में रमण करना सीखो। स्वर्ग–नर्क के उतार–चढ़ाव खूब देखे, अब मुक्ति का स्वाद भी चखो।

हरि ओम् तत् सत्!

फकीरी का सार

‘फेर पौं लो तोर फिकिरिते।
जे घाटशारा फिकिर–फाकार,
डूबे मोलि शेई घाटेते।। फिकिर
छिलो एकनागाड़ी, औधोर धोरे
दितामं पाड़ी
एबार होलो खोला दोंयाड़ि–
ताइ दैख रेखेछि पेते।।
ना जेने फिकिर आँटा
शिरेते पाड़ालाम जौटा
शार होलो भाँग–धूत्रो घोंटा
भौजोन–शाधोन शौब चूलोते।।
फोकीरी फिकिर कौरा
होते हौबे जैन्तो मौरा, लालोन
फोकीर नेंग्टी–एड़ा, आँट
बौशेना कोनोमौते।।’

‘तू फिर किस फेर में पड़ गया मन! तूने तो सब फिक्र को छोड़ दिया था, उसी घाट में फिर डूबने की तैयारी क्यों कर रहा है।

मेरी तो बस एक ही फिक्र थी उस अधर को धर कर पार हो जाऊँगा। मैंने इस बार नैया की रस्सी खोल दी है, अब सब बंधनों को पार कर जाऊँगा।

मैं तो ना जान कर व्यर्थ ही चिन्ता में पड़ा था और सिर पर जटा धारण कर ली। भांग–धतूरा खा–खा कर भजन साधन भूल गया था, व्यर्थ के आडम्बरों में फँस कर साधन–भजन सब चूल्हे में झोंक दिया था।

अब सब फिक्र से दूर होकर जाना कि फकीरी ही सार है। लालन कहते हैं फकीरी तभी सार्थक होगी, जब जिन्दा मरने की कला आ जाएगी, नहीं तो लंगोट धारण करने वाले फकीर का कोई सम्मान नहीं।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'फेर पौं लो तोर फिकिरिते।
जे घाटशारा फिकिर–फाकार,
डूबे मोलि शेई घाटेते।।'

तू फिर किस फेर में पड़ गया मन। तूने तो सब फिक्र को छोड़ दिया था, उसी घाट में फिर डूबने की तैयारी क्यों कर रहा है।

फेर शब्द का अर्थ होता है अटकना। जैसे पहले ग्रामोफ़ोन होते थे, उसमें उसकी सूई अटक जाती थी और एक ही शब्द पर अटक जाए तो बार–बार उसी का जाप करती। ऐसे ही हम भी जीवन में बार–बार एक ही जगह पर अटक जाते हैं।

कबीर साहब कहते हैं–

'जनम अनेक की अटक खोलै।'
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।।
कहैं कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।'

जनम–जनम की अटक... ये जीवन जन्म की अटक है, जीवन में बार–बार हम एक ही तरह से, एक ही जगह पर अटक–अटक जाते हैं। ये अटक कौन खोले? जैसे ग्रामोफ़ोन की सूई अटक गई रिकार्ड में तो किसी को उठाकर रख देना होता था दूसरी जगह पर, तब ग्रामोफ़ोन रिकार्ड ठीक चलने लगता था। ठीक ऐसे ही, ये जो जीवन की अटक है, जीवन का जो फेर है, कोई चाहिए जो इस अटक को खोले। जो इस फेर को हटाए, फेर से बाहर निकाले। वो गुरु करते हैं।

'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।।'

एक बारीक रास्ता बताता है गुरु कि कैसे इस फेर से बाहर निकलें, कैसे इस अटक से बाहर निकलें। हम लगातार एक ही वर्तुल में घूम रहे हैं। फिर जन्म, फिर मृत्यु।

'जाने कितने जन्म तूने अब तक लिए।
और हर बार सब छोड़कर चल दिए।।
धन कमाया बहुत, भोग कितना किया।
पुण्य कर्मों ने भी हे जनक क्या दिया।।'

ये बाहर की अटक, बाहर–बाहर हम धन कमाते हैं और फिर धर्म कमाने निकल जाते हैं लेकिन अटक बाहर ही है। बाहर धन कमा रहे थे और बाहर ही ध्यान और धर्म कमाने के लिए निकल जाते हैं। कब ये अटक खत्म हो? कैसे इस अटक से भीतर लौटें, सही दिशा मिले? गुरु चाहिए। कबीर साहब कहते हैं पूर्ण गुरु चाहिए।

एक बार की बात है– फकीर बहाउद्दीन नाम के संत हुए हैं। बड़े ख्याति नाम संत हैं और बहुत दूर–दूर से लोग इनके पास सीखने आते थे। एक बार एक साधक उनके पास सीखने आया। कहने को तो साधक था लेकिन गलत कारण से आया था, वह खुद गुरु बनने के फेर में आया था। बहाउद्दीन ने देखा उसको, उसकी शकल देखते ही उसको पहचान तो गए थे। उन्होंने कहा भी कि तुम सही कारण से मेरे पास नहीं आए हो। वह ज्यादा से ज्यादा विनम्रता दिखाता, ज्यादा से ज्यादा समर्पण दिखाता, ज्यादा से ज्यादा झुकना दिखाता, लेकिन गुरु धोखा नहीं खा सकता। उसकी नजर रहती थी कि बहाउद्दीन ऐसा क्या करते हैं कि इतने लोग इनसे प्रभावित होते हैं? उसकी नजर इस पर रहती।

एक दिन उसने देखा कि बहाउद्दीन के पास एक हीरा है और वो रख कर बैठते हैं। इस व्यक्ति ने बहाउद्दीन से बोला कि गुरुदेव मुझे कुछ गुर दीजिए, मुझे भी जीवन में कुछ ऐसा गुर दीजिए जो आपके पास है। बहाउद्दीन समझ गए इसकी नजर किस चीज पर है? उन्होंने बोला ठीक है ये गुर ले लो, ये हीरा है, इसे तुम रखकर बैठोगे तो तुम में रूपांतरण हो जाएगा, और तुम से प्रभावित होकर बहुत लोग आएंगे, भीड़ लग जाएगी।

वो ले गया, बरसों निकल गए कोई रूपांतरण नहीं हुआ, कोई भीड़ नहीं लगी, कोई नहीं आया सीखने। बहाउद्दीन को लगा अब बहुत हो गया, बहाउद्दीन स्वयं गए उस साधक के पास और कहा कि तू किस फेर में पड़ गया? तुझे पता होना चाहिए हीरा होने से कुछ नहीं होने वाला। तुम स्वयं अगर हीरा नहीं हो तो तुम्हारे हाथ में आया हुआ हीरा भी पत्थर हो जाएगा। और अगर तुम हीरा हो तो तुम्हारे हाथ में आया हुआ पत्थर भी हीरा हो जाएगा। भीतर का हीरा जीवन रूपांतरण करता है; बाहर की बात थोड़े ही है, जब तक नजर बाहर है तब तक अटक है। जिस दिन नजर भीतर मुड़ गई, भीतर के हीरे की ओर मुड़ गई, उस दिन हम उस अटक से बाहर निकल गए।

‘जे घाटशारा फिकिर–फाकार,
डूबे मोलि शेई घाटेते।।
फिकिर छिलो एकनागाड़ी,
औधोर धोरे दितामं पाड़ी
एबार होलो खोला दोंयाड़ि–
ताइ दैख रेखेछि पेते।।’

मेरी तो बस एक ही फिक्र थी उस अधर को धर कर पार हो जाऊंगा। मैंने इस बार नैया की रस्सी खोल दी है अब सब बंधनों को पार कर जाऊंगा। अधर को अगर धारण करना है, अधर को अगर पकड़ना है तो गुरु के चरणों में जाना होगा। जिसने गुरु को पहचान लिया, गुरु के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया, उसने अपनी नैया की रस्सी खोल दी। जीवन की नाव की रस्सी खोल दी, और कोई विधि नहीं है।

समर्पण मात्र...गुरु तो बहाना है, अगर तुम्हें अकारण समर्पण आ जाए तो नैया की रस्सी तुमने खोल दी; अस्तित्व की हवाओं के हिसाब से तुम बहने के लिए तैयार हो गए, तुमने सारे बंधनों को तोड़ दिया। और तुमने अस्तित्व के चरणों में समर्पण कर लिया और आत्म रूपांतरण को बुलावा दे दिया। कहते हैं लालन शाह, 'मेरी तो बस एक ही फिक्र थी कि उस अधर को धर कर पार हो जाऊंगा। मैंने इस बार नैया की रस्सी खोल दी है।'

परमात्मा हमें भेजता है इस संसार में, स्वतंत्र भेजता है; स्वतंत्रता देकर भेजता है। चाहे तो हम अधर को धारण करके ऊर्ध्वगामी हो जाएं, अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी कर लें या हम संसार की ओर बहिर्गामी हो जाएं। परमात्मा ने हमें स्वतंत्र छोड़ा और परिणाम क्या हुआ? हम सभी परतंत्र हो गए। परमात्मा ने स्वतंत्रता दी और हम हो गए परतंत्र; परतंत्र हो गए अपने मन के, परतंत्र हो गए अपनी इंद्रियों के, परतंत्र हो गए संसार के, परतंत्र हो गए अपने अहंकार के।

जब हम गुरु के चरणों में जाते हैं, गुरु हमें अनुशासन देता है। स्वतंत्रता नहीं दी, उसने अनुशासन दिया। और परिणाम क्या मिला? हम स्वतंत्र हो गए, मन से स्वतंत्र हो गए, अहं से स्वतंत्र हो गए, संसार से स्वतंत्र हो गए। अपने छंद में जीने लगे। जीवन की एक शैली गुरु देता है। अनुशासन देता है, ध्यान देता है, प्रेम देता है और मिल जाती है मुक्ति, मिल जाती है स्वतंत्रता। मिलनी थी परतंत्रता, मिलती है स्वतंत्रता। शुरू में शिष्य को लगता है कि कैसी परतंत्रता है? कितने अनुशासन, कितने तौर-तरीके, कितनी तरीकत, कितनी सौरियत? लेकिन बात अंत में स्वतंत्रता की ओर, मुक्ति की ओर, वहदत की ओर जाती है।

'ना जेने फिकिर आँटा
शिरेते पाड़ालाम जौटा
शार होलो भाँग-धूत्रो घोंटा
भौजोन-शाधोन शौब चूलोते।।'

मैं तो ना जान कर व्यर्थ ही चिन्ता में पड़ा था और सिर पर जटा धारण कर ली, भांग-धतूरा खा-खा कर भजन साधन भूल गया था, व्यर्थ के आडम्बरों में फँस कर साधन-भजन सब चूल्हे में झोंक दिया था।

अगर हम में कोई रूपांतरण नहीं हो, तो हम चाहे संसारी हों, चाहे संन्यासी हों, व्यक्ति वही के वहीं हैं। बाहर संसार में हम दिखावे में जीते थे, आडम्बर में जीते थे; फिर संन्यास में आते हैं, साधना में आते हैं, वही आडम्बर। आडम्बर...दिखावा कैसे पैदा होता है?

हमारे भीतर एक हीन ग्रंथि है...जो नहीं है उसे हम दिखाना चाहते हैं। पहले हम दिखाना चाहते थे, जैसे अगर हमारे पास धन नहीं है तो हम धन दिखाना चाहते थे। और अगर हम ध्यानी नहीं हैं तो ज्यादा ध्यान दिखाना चाहते हैं कि हम ज्यादा ध्यानी हैं, हम ज्यादा शांत हैं, ज्यादा एकांतवासी हैं, ज्यादा वैरागी हैं, ज्यादा हमने छोड़ा, ज्यादा तप

किया। यही दिखावे में हम फंस गए, वो भांग–धतूरा खाकर अपनी खुमारी दिखा रहे हैं। जबकी खुमारी का संबंध भांग–धतूरा से कहां है? भीतर मौजूद है वो खुमारी।

'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।'

भांग–धतूरा खा कर भजन साधन भूल गए। नशे में कौन भजन कर सकता है? भजन तो परम होश की दशा है। जिस दिन हमारा होश जागता है उस दिन भजन की शुरुआत होती है। आडम्बरों में फंस कर साधन भजन को चूल्हे में झोंक दिया– बोल रहे हैं।

जब संसार में कोई जीता है, वह दिखावा करता है कि हमारे पास इतना पैसा है, इतनी गाड़ियां हैं, इतने जेवरात हैं। संसार में दिखावे की जरूरत हो सकती है लेकिन परमात्मा को दिखाना नहीं है। परमात्मा को तो छुपाना है।

सहजो कहती हैं–

'सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदे माहिं दुराय।'

हृदय में छुपा कर रखो, ऐसा सुमिरन करो।

'होंठ– होंठ सो ना मिले जान सके ना कोई पाय।'

होंठ को भी पता ना चले, स्वयं को ऐसा भी पता ना चले होंठ हिल रहे हैं, इतना शांत, इतना मौन हो, इतना छुपा हुआ हो; जैसे प्रेम को हम कैसे भीतर छुपाकर रखते हैं? प्रदर्शनी थोड़े ही ना लगाते हैं। ऐसे ही भक्ति को, ऐसे ही सुमिरन को, ऐसे ही भजन को छुपा कर रखना है। परमात्मा छुपाने की चीज़ है। और याद रखना जैसे सामान्य प्रेम नहीं छुपता, परमात्मा कभी किसी का छिपा है? अगर कोई परमपद को प्राप्त हुआ है और उसके आस–पास प्रेम ना फैले, उसकी आभा, उसका प्रभामण्डल ना फैले ऐसा संभव है? ऐसा असंभव है। लेकिन जो दिखावेबाजी करता है वो कभी परमात्मा को उपलब्ध ही नहीं हुआ है।

संत सहजोबाई के गीत को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने सुमिरन की निराली व्याख्या की है। वह बाह्य–प्रदर्शन नहीं, अंतस–दर्शन है। आएं, वह प्रवचनांश सुनते हैं–

'सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदे माहिं दुराय। लेकिन सहजो कहती है परमात्मा का स्मरण इस भांति करना है– हृदय में दोहरना, किसी और को बताना मत; क्योंकि बताने की आकांक्षा तो हीन ग्रंथि से पैदा होती है। वह तो आकांक्षा है कि दूसरों को पता चल जाए कि मैं धार्मिक हूं– देखो, मंदिर जा रहा, मस्जिद जा रहा, गुरुद्वारा जाता हूं; देखो, रविवार कभी चूकता नहीं चर्च जाने से– दुनिया को पता चल जाए कि मैं धार्मिक हूं, ये तो दुनिया का ही हिस्सा हुआ।

परमात्मा को दिखाने की कोई भी जरूरत नहीं है। और अंधों

को दिखाओगे भी कैसे? जो काम में दौड़ रहे हैं, तुम्हारे राम को देख भी कैसे सकेंगे? तुम दिखाओगे, वे कहेंगे कि रखो ये अपना सामान अपने पास, अभी हमें ये खरीदना नहीं। हमारे किस काम का, ये पत्थर ले आए? पारस कहानियों में होता है, असलियत में थोड़े ही; हटो, अभी हम सोने की दौड़ में लगे हैं। तुम दिखाना मत। क्योंकि दिखाने से कोई संबंध ही नहीं है, उसे पाना है।

परमात्मा कोई प्रदर्शन नहीं है; वह कोई एक्जिबिशन नहीं है। संसार प्रदर्शन है।'

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

'फोकीरी फिकिर कौरा
होते हौबे जैन्ते मौरा,
लालोन फोकीर नेंग्टी–एड़ा,
आँट बौशेना कोनोमौते'

सब फिक्र छोड़कर फकीरी ही सार है। लालन कहते हैं फकीरी तभी सार्थक होगी, जब जिंदा मरने की कला आ जाएगी। फकीर बनना है तो जिंदा मरने की कला आनी चाहिए। कैसे मरेंगे\ कैसे हमारा अहंकार मर जाए\ जिसने अपने अहंकार को मार लिया वो जीते जी मर गया।

वाजिद कहते हैं– 'सीख एक सुन रे' एक सीख सुन लो; एक सीख क्या\ मरने के पहले मर जाओ। मरने के पहले मरना यानी अपने अहंकार को मार डालना। दो तरीके हैं अहंकार को मारने के, एक पहले 'तू' को मारो या 'मैं' को मार लो। जब हम 'तू' को मारते हैं, यानी ध्यान। ध्यानी लोग 'तू' को मार रहे हैं। बाहर को नहीं, बाहर को नकार दिया। 'तू' नहीं है। लेकिन इसमें खतरा है, 'तू' तो दब गया और 'मैं' और प्रगाढ़ हो गया। क्योंकि मेरे ही प्रयास से 'तू' मिटा। तो हम और अहंकारी हो गए। लेकिन भक्त का उपाय एकदम सरलतम है। 'तू' मिटाना कठिन है। क्योंकि हमारी जीवन धारा 'तू' की ओर उन्मुख है, जो कि बहुत कठिन है। बच्चा पैदा हुआ और जीवन धारा मां की ओर, 'तू' की ओर बह चली। तो 'तू' मिटाना कठिन है। भक्त 'मैं' को मिटाता है। 'मैं' मिटाना आसान है और जिस दिन 'मैं' मिट गया तो 'मैं' के ही तो संदर्भ में 'तू' है। उस दिन 'तू' भी मिट जाता है। तो सबसे सरल विधि है 'मैं' को मिटाने की– गुरु प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, भक्ति। भक्ति ही द्वन्द्व–मुक्ति का द्वार है। पराभक्ति 'मैं–तू' के पार है।

हरि ओम तत्सत्!

प्रेम–प्रेम में भेद

‘प्रेम ना जेने प्रेमेर हाटेर बुलबूला ओ
तार कौथाय देखि ब्रम्ह–आलाप, मोने
गौलोद शोलोकौला।।
खाँदा–बाँधा भूत–छाड़ानि
शेइटे बौड़ो भालो जानि,
ओ तोर शाधुर
हाटेर घुशघुशानि
मिछे शे आलापौना।।
बेश कौरे शे बोष्नौगिरी
रौश नाइ तार गुमौर भारी
मुखे होरिंनामे डुबाए तोरी
तिलौक नेए आर जौपेर माला।। तार
मोन मेतेछे मौदोन रौशे
शौदाय थाके शेई आबेशे,
लालोन बौले मिछे–मिछे
लोक–जानानी प्रेम–उतौला।।’

‘प्रेम करना अगर नहीं जानते तो तुम प्रेम के हाट के केवल एक बुलबुला हो। बातों में जिसके ब्रह्म–आलाप स्वरूप प्रेम की बातें हैं पर मन में सोलह आने गलत बातें छिपी हैं।

झूठा–मूठा भूत भगाना, ढोंग रचना बहुत अच्छा जानते हो। तेरा जो साधुपन है, बिल्कुल मिथ्या है। साधु बनकर बेकार का आलाप भी व्यर्थ है।

तुम तो वैष्णव–गिरि का बहुत अच्छा ढोंग कर लेते हो लेकिन रस बोध बिल्कुल नहीं है। मुख से केवल हरिनाम लेकर क्या नैया पार होती है। तिलक लगाकर माला जपने से भी पार नहीं पाया जा सकता।

जिसके मन में काम रस का जोर है, वो तो सदा उसी में डूबा रहता है। इसलिए तो लालन कहते हैं– मिथ्या ही तू प्रेम में उतावला हो गया है ऐसा दिखावा कर रहा है, तेरा प्रेम तो झूठा है।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

हम जिसे प्रेम कहते हैं, और संत जिसे प्रेम कहते हैं, इनमें बड़ा अंतर है। प्रेम–प्रेम के भेद को समरण रखना। प्रथम सीढ़ी और अंतिम सीढ़ी, दोनों एक ही सोपान के पायदान हैं। कहने को दोनों सीढ़ी हैं, किंतु एक जमीन से टिकी, दूसरी आसमान को स्पर्श करती। इसे ख्याल रखते हुए बाउल फकीर संत लालन शाह का यह प्यारा गीत सुनना–

'प्रेम ना जेने प्रेमेर हाटेर बुलबूला,
ओ तार कौथाय देखि ब्रम्ह–आलाप,
मोने गौलोद शोलोकौला।।'

प्रेम करना अगर नहीं जानते हो, तो तुम प्रेम के हाट के केवल एक बुलबुला हो। बातों में जिसके ब्रह्म–आलाप स्वरूप प्रेम की बातें हैं पर मन में सोलह आने गलत बातें छिपी हैं।

प्रेम–प्रेम में भेद है। एक प्रेम होता है 'फ़ॉलिंग इन लव' जिसमें कि हम अपनी निजता खो देते हैं, दूसरे के गुलाम हो गए।

'ना जाए वां बनी है ना बिन जाए चैन है।
क्या कीजिए हमें तो मुश्किल सभी तरह।।
अटका कहीं जो आप का दिल भी मेरी तरह।
रोया करेंगे आप भी पहरों मेरी तरह।।'

इसमें दूसरे के बिना हमारा कोई अस्तित्व नहीं है। दूसरे के बिना हमारा जीना, जीना नहीं है। और फिर ये गुलामी खटकती भी है चेतना को। इसलिए फिर–

'ना जाए वां बनी है ना बिन जाए चैन है।'

किसी तरह से आराम नहीं आता, प्रेम में कोई आनंद नहीं मिल रहा और छोड़ने की सामर्थ्य नहीं है। एक द्वंद में आदमी डोल रहा है क्योंकि चेतना गुलाम नहीं होना चाहती, कोई गुलाम नहीं होना चाहता। तो जिसमें हम अपनी निजता खो दे रहे हैं 'फ़ॉलिंग इन लव' ये प्रेम कहीं नहीं ले जाता। लेकिन ये प्रेम की शुरूआत है, जैसे बच्चा पढ़ाई की शुरूआत करे, इसमें बार–बार जो पीड़ा और दर्द और विरह मिलता है और असफलताएं मिलती हैं, वो आगे की ओर अग्रसर करती हैं।

दूसरा प्रेम फिर होता है 'बीइंग इन लव'... प्रेम में होना। ये प्रेम थोड़ा उच्चतर प्रेम है। इसमें मैत्री भाव ज्यादा है। इसमें हम जिसे प्रेम करते हैं, उसकी स्वतंत्रता का सम्मान है।

खलील जिब्रान का एक वचन है जिसमें बताया है कि वास्तविक प्रेमी कैसे हैं...जैसे मंदिर के दो स्तंभ। अगर मंदिर के दो स्तंभ बिल्कुल पास आ जाएं तो भवन गिर जाएगा,

मंदिर गिर गया। और मंदिर के स्तंभ बिल्कुल दूर चले जाएं, तब भी मंदिर नहीं बनेगा। एक ऐसा फासला चाहिए, जो कि बिल्कुल एक दूसरे की स्वतंत्रता को भंग नहीं कर रहा। इसमें स्वतंत्रता मूल्यवान है। दूसरा हमारे लिए वस्तु नहीं है। दूसरे की स्वतंत्रता, दूसरे का सम्मान, मैत्री भाव। ये हो गया 'बीइंग इन लव'।

इसके भी आगे की बात लालन शाह कह रहे हैं, वो कह रहे हैं तीसरा प्रेम– 'जस्ट लव' 'बीइंग लव' मतलब प्रेम ही हो जाना। प्रेम में होना नहीं, तुम प्रेम ही हो गए। ऐसा प्रेम है ध्यान का परिणाम।

जब हम ध्यान की पराकाष्ठा पर होते हैं तो बाहर हम प्रेम पूर्ण हो जाते हैं। वो प्रेम ऐसा प्रेम नहीं है कि एक व्यक्ति के प्रति है। वो प्रेम सर्व के प्रति है। जो सामने आ जाए उसे दीपक अपना उजाला देता है। जो सामने आ जाए फूल उसे सुगंध बिखेरता है। चाहे प्राणी हो, जीव हो, मनुष्य हो, पेड़–पौधे हों, कोई भी हो, सर्व के प्रति पूरे अस्तित्व के प्रति ये प्रेम बहता है; जब कोई आलंबन भी नहीं है। ठेठ एकांत में आप हो और सामने कोई नहीं है, तब भी आप प्रेम में हो। ये प्रेम की बात लालन शाह कहते हैं कि तुम प्रेम के बारे में तो जानते ही नहीं हो और ब्रह्म–आलाप कर रहे हो...प्रेम, प्रेम, प्रेम का। तो प्रेम के बारे में जानना होगा। जिसके लिए दूलन दास कहते हैं–

'जोगी चेत नगर में रहो रे।।
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया,
मन तसबीह गहो रे।
जोगी चेत नगर में रहो रे।।

चेतना में, चैतन्य में रहो। ये हमारे चैतन्य की अवस्था है। ऐसा प्रेम जिसमें चैतन्य का गुण है।

परमगुरु ओशो कहते हैं–'हमारी चेतना प्रेम के अणुओं से बनी है, प्रेम के ताने–बाने से बनी है। प्रेम चैतन्य का स्वभाव है। जिसने अपने चैतन्य की अनुभूति की, जिसने चैतन्य में डूबकी ली; वो प्रेम हो जाएगा।'

'खाँदा–बाँधा भूत–छाड़ानि
शेइटे बौड़ो भालो जानि,
ओ तोर शाधुर हाटेर घुशघुशानि
मिछे शे आलापौना।।'

झूठा–मूठा भूत भगाना, ढोंग रचना बहुत अच्छा जानते हो, तेरा जो साधुपना बिल्कुल

मिथ्या है। साधु बनकर बेकार का आलाप भी व्यर्थ है। हम दूसरों से तो झूठ बोलते ही हैं; खुद से भी झूठ बोलते हैं। खुद के प्रति भी प्रामाणिक नहीं हैं। खुद के प्रति भी हमने इतने नकाब ओढ़ कर रखे हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर में जगह–जगह से उधार लिया गया था, बहुत लोग आते थे मुल्ला से पैसे वापस लेने, तो घर में हिदायत दे रखी थीं कि जब भी कोई आए कितना भी खटखटाए तुम्हें द्वार नहीं खोलना है; अगर वो बोले मैं मुल्ला हूं तब भी नहीं खोलना।

एक बार की बात है मुल्ला स्वयं द्वार खटखटा रहा था। जब द्वार नहीं खुला, तब पीछे जाकर पीछे की खिड़की से अपनी पत्नी से बोलना पड़ा कि मैं मुल्ला हूं, मुल्ला नसरुद्दीन हूं; तब जाकर दरवाजा खोला। मनुष्य अपने आप से भी झूठ बोलता है। हमने खुद ही झूठ के बीज बो रखे हैं।

जहां–तहां बीज हम झूठ के बो रहे हैं। और हम सोचते हैं कि हम साधु बन जाएंगे और हम आध्यात्मिक अनुभूतियां पा लेंगे। झूठे जीवन में आध्यात्मिक अनुभूतियां नहीं आतीं। प्रमाणिक होना होगा, ऑथैंटिक होना होगा।

जिसके लिए जीसस कहते हैं बच्चों की तरह; प्रभु के राज्य में उसी का प्रवेश है जो बच्चों की तरह हैं। जिसके लिए कबीर साहिब कहते हैं–

'घूँघट का पट खोल रे तोहे पिया मिलेंगे।'

हमने जो घूँघट, जो नकाब लगा के रखा है ये झूठ का मुखौटा, इस नकाब से हटाना होगा। जिसको हम पर्सनैलिटी कहते हैं। पर्सनैलिटी यानी एक प्रकार का नकाब, मुखौटा पहन कर रखा है। जो कि पूरा ही झूठा है। उस नकाब के पार जो प्रमाणिक व्यक्ति है, जो ऑथन्टिसिटी है हमारी, जो हमारी इन्डिविजूऐलिटी है उस तक जाना जब होता है, तब हम साधु हुए; जब हम प्रमाणिक हुए, जब हम सहज हुए, जब हम सरल हुए।

अगर हमें साधु होने का अनुभव लेना है, अगर हमें वास्तविक साधु होना है तो हमें प्रमाणिक होना होगा दूसरों के सामने और अपने प्रति। पहले हमें दूसरों के सामने प्रमाणिक होना होगा क्योंकि अहंकार की मौजूदगी दूसरों के सामने होती है। अकेले में तो अहंकार नहीं होता, तो दूसरों के सामने हमें प्रमाणिक होना सीखना होगा। एक बच्चे जैसे सहज, सरल, स्वतःस्फूर्त।

'बेश कौरे शे बोष्टौगिरी
रौश नाइ तार गुमौर भारी
मुखे होरिनामे आर जौपेर माला।।'

तुम तो वैष्णवगिरि का बहुत अच्छा ढोंग कर लेते हो, लेकिन रस बोध बिल्कुल नहीं है। अंदर से कैसे हम वैष्णव होएं? हमारे रोम–रोम का विष्णु की गूंज में डूबना हो जाए। हमारा रोम–रोम विष्णु की गूंज़ में डूबा हो। विष्णु नाम हमारे रोम–रोम से निकलता हो। और उस विष्णु की गूंज़ को हमने जान लिया हो, तब हम वैष्णवगिरि हुए; तब हम सच में विष्णु के प्रेम में पड़े और असली वैष्णव हुए।

फिर कहते हैं रस बोध बिल्कुल नहीं है। जिसे राम नाम के रस का बोध नहीं है, वो राम नाम जो लिया नहीं जाता, वो विष्णु सहस्त्रनाम जो मुख से बोला नहीं जाता; जो सुना जाता है, जो भीतर निरंतर हो रहा है। उसे सुनने से निरंतर रस का बोध हो रहा है। तब जीवन में रस उतरना शुरू होता है। जब तक वो घटना नहीं घटी, तब तक हम असली वैष्णव नहीं हुए। वैष्णव होने की शुरूआत की है हमने।

जिसके लिए संत कहते हैं–

'रोम–रोम रस पीजिए'

जब लालन शाह कहते हैं तुम तो वैष्णवगिरि का बहुत अच्छा ढोंग कर लेते हो। तो ढोंग शब्द और ढोंग का कारण एक गलत धारणा से आता है। वो गलत धारणा है कि संसार खोने से परमात्मा मिलता है। जब की, जब परमात्मा मिल जाता है तो संसार खो जाता है। जब हाथ में हीरे, जवाहरात, मोती आ जाते हैं तो हाथ से कंकड़–पत्थर अपने आप विदा हो जाते। फिर ढोंग की जरूरत ही नहीं, दिखावे की जरूरत ही नहीं, वो घटना अपने आप घटित होती है।

'तार मोन मेतेछे मौदोन रौशे
शौदाय थाके शेई आबेशे,
लालोन बौले मिछे–मिछे
लोक–जानानी प्रेम–उतौला।।'

जिसके मन में काम रस का जोर है वो तो सदा उसी में डूबा रहता है। इसलिए तो लालन कहते हैं– मिथ्या ही तूं प्रेम में उतावला हो गया है, ऐसा दिखावा कर रहा है, तेरा प्रेम तो झूठा है।

झूठा प्रेम मतलब, जब तक हमारे प्रेम में मोह है, जब तक हमारे प्रेम में मालकियत की भावना है। जब हमारे प्रेम में उपयोगिता की धारणा है, जब तक हमारा प्रेम पसंद पर टिका हुआ है, हम तो वस्तुओं तक को कहते हैं 'आई लव आइसक्रीम'। वो प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं लालन। हर आकार से हट कर, वास्तविक जो चेतना, आत्मा से आत्मा का जो प्रेम है; इस प्रेम की बात करते हैं, और वो होता है आत्म रूपांतरण से। आत्म रूपांतरण कैसे होता

है? आत्म रूपांतरण होता है ध्यान से, प्रेम से, गुरु के सानिध्य से।

परमगुरु ओशो से किसी ने पूछा कि काम केंद्रित प्रेम और प्रेम केंद्रित काम की भिन्नता हमें समझाने की कृपा करें। आएं, परमगुरु ओशो के कल्याणकारी वचन सुनते हैं–

'काम केंद्रित प्रेम सीढ़ी से नीचे उतरना है, सीढ़ी वही है। प्रेम केंद्रित काम सीढ़ी पर ऊपर चढ़ना है, सीढ़ी वही है। लेकिन दिशा का भेद है।

जब तुम किसी को इसलिए प्रेम करते हो कि उससे कोई कामना, वासना पूरी करनी है, तब प्रेम तो सिर्फ बहाना होता है, फुसलावा होता है, असली नहीं होता। नजर तो काम पर लगी होती है।

काम प्रेम को भी डुबा लेता है, प्रेम काम को भी उबार लेता है। तो ध्यान यह रखना कि तुम्हारे जीवन में प्रेम प्रमुख हो। अगर काम प्रवेश भी करे, तो वह प्रेम का अंग हो। तुम्हारे जीवन में अगर किसी से शरीर के संबंध भी हों, तो वह तुम्हारे आत्मिक संबंधों की छाया हो। उससे ज्यादा नहीं। अगर आत्मिक संबंध हो तो शरीर के संबंध भी पवित्र हो जाते हैं। छाया की भांति। और, तुम्हारे जीवन में अगर शरीर का संबंध ही सब कुछ हो, और आत्मा का संबंध केवल छाया हो शरीर के संबंधों की, तो आत्मा का संबंध भी झूठा हो जाता है। वह भी गंदा और अपवित्र हो जाता है।

ध्यान रखना, दिशा महत्वपूर्ण है। श्रेष्ठ के साथ निकृष्ट में भी एक श्रेष्ठता आ जाती है। निकृष्ट के साथ श्रेष्ठ भी डूबने लगता है। स्मरण यही रखना कि श्रेष्ठ की परिधि में तुम्हारी निकृष्टता समाए, निकृष्ट की परिधि में तुम्हारी श्रेष्ठता न समाए। तुम्हारी श्रेष्ठता की परिधि बड़ी हो।'

हरि ओम तत्सत्।

गुरु चरणों में प्रभु मिलें

'औधोर मानुष धोरबो कैमोन कोरे
(ओशे) बिराजे
बिरौजा–पारे
चौर्मो, चोखे देखते पाइने तारे।।
'औधोर जोदि धौरा जेतो
धौरा रूप ताहार प्रोकाश पेतो,
आकृति निरूपौन होतो–2
पावा जेतो–शाधोन–ओनुशारे।। औधोरेर
आकृति कैमोन,
बौलो देखि रे ओ भोला मोन,
कोन् रूप भेबे कोरी शाधोन
निरूपौन आर होलो ना एबारे।। निराकार
शे आकार–शून्यो धोन्यो जौगोते
देबोता–गौन्धौर्बो–नौरेर शौकोलेरे पिते, शे
पितेर शौन्धाान पाबो
ऐमोन जोग्गो कौबे हौबे
जादूबिन्दू कौरे स्तौब
कुबीर चाँदेर जुगौल–चौरोन धोरे।।'

'उस अधर मानुष को कैसे जानूँगा? वो तो विराट में विराजता है। चर्म चक्षु से उसे देखा नहीं जा सकता। अधर को एक बार अगर जान जाओ तो उसका स्वरूप जाना जाएगा। साधना के अनुसार ही उस अधर स्वरूप का निरूपण हो पाता है।

ओ! भोला मन अधर की आकृति कैसी है, कैसे जानोगे उसके रूप चिंतन से, अगर साधना नहीं करोगे तो निरूपण नहीं कर पाओगे। क्योंकि वह तो किसी रूप–आकृति में बँधा नहीं है। वह तो अरूप व निराकार है। वह आकार शून्य अधर तो देवता–गंधर्व–नर आदि, सकल आकारों का पिता स्वरूप है अर्थात आदि रूप है। उसकी साधना के लिए योग्य बनना होता है। जादू बिन्दु अपने गुरु कुबीर चाँद के चरणों की साधना करते हैं ताकि गुरु के माध्यम से, उस अधर स्वरूप की साधना कर सकें।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

करोड़ों लोग प्रभु की तलाश में न जाने कहां–कहां भटकते हैं, और विफल होते हैं। धन्य हैं वे लोग, जिनके भीतर शिष्य भाव उमगा, वे गुरु चरणों में समर्पित होते हैं, और प्रभु उन्हें खोजता चला आता है। ईश्वर को नहीं, किसी फकीर को खोजो। ईश्वर तुम्हें खुद खोज लेगा। आज का गीत इसी ओर संकेत करता है। बाउल फकीर जादू बिंदू कहते हैं–

'औधोर मानुष धोरबो मोन कोरे
(ओशे) बिराजे बिरौजा–पारे
चौर्मो, चोखे देखते पाइने तारे।।'

उस अधर मानुष को कैसे जानूँगा? वो तो विराट में विराजता है। चर्म चक्षु से उसे देखा नहीं जा सकता।

बाउल अधर मानुष 'चैतन्य' को कहते हैं, ओंकार को कहते हैं। अधर मानुष को कैसे जानें? कैसे उसका अनुभव करें? वो तो विराट में है, पूरे अस्तित्व में हैं लेकिन अगर हम उसे बाहर इन आंखो से देखना चाहें तो देखा नहीं जा सकता।

जीसस ने बार–बार कहा है अगर आंख हो तो देख लो, अगर कान हो तो सुन लो। तो क्या जीसस अंधों से या बहरों से बात कर रहे थे? नहीं, हमारे जैसे ही लोग थे वे। फिर जीसस क्या कहना चाह रहे थे? जीसस कह रहे हैं, संवेदना, संवेदनशीलता को सिद्ध करो। एक–एक इंद्रिय में जागे ऐसी संवेदनशीलता, जैसे मशाल जले दोनों ओर से एक साथ। और जब कहते हैं दोनों ओर से एक साथ, उससे उनका मतलब है जैसे कान बाहर की अवाजें सुन रहे हैं तो पूरे चैतन्य होकर एक–एक आवाज सुनो। हम कितनी चीजें सुनते ही नहीं, कितना कुछ सुनाई नहीं देता। पूर्ण चैतन्य होकर; कान ही बन जाओ जब सुन रहे हो। और फिर यही कान जब हम बंद करते हैं और बंद कर फिर अपने भीतर सुनो। अपने भीतर भी एक आवाज आ रही है। निरंतर आवाज आ रही है। और जिसने ऐसा किया, उसने पाया अधर मानुष उसकी पकड़ में आ गया, ओंकार की गूंज उसके जीवन पर छा गई।

और उसने एक बार जब भीतर सुना, तो फिर अब जब बाहर वो कोई भी आवाज सुनता है, सरसराती हवाएं, लहरों की आवाज, पक्षियों की चहचहाहट, बारिश की बूंदे ये सब ओंकार का ही श्रवण कराती हैं। उस एक का ही अनुभव कराती हैं। इंद्रियां जब पूर्ण संवेदनशील हो गई और दोनों ओर से तब सारे अनुभव उसी के अनुभव होंगे। इस संसार में फिर संसार थोड़ी दिखाई पड़ता है, फिर परमात्मा ही दिखाई देता है। सारे अनुभव उसी एक के अनुभव बन जाते हैं।

ऋषि ने कभी अन्न ग्रहण करते समय ये उद्घोष किया था 'अन्नम् ब्रह्म' भोजन ही भगवान हो जाता है। ये जिह्वा जो स्वाद ले रही थीं अन्न का, ब्रह्म की याद दिला गई। यही

जिह्वा भीतर एक स्वाद लेती है ब्रह्म का, दिव्य स्वाद, परमात्मा का स्वाद। जिसने परमात्मा का स्वाद ले लिया, दिव्य स्वाद का अनुभव कर लिया; उसे हर स्वाद ब्रह्म की ही याद दिला जाएंगे।

ठीक ऐसे ही जो आंखें बाहर आलोक देख रही हैं। सूरज की किरणें देख रही हैं, उजाला देख रही हैं। आंखें जब बंद करते हैं तो भीतर एक उजाला है, अब उसका अनुभव होता है। फिर भीतर जब एक बार इस उजाले का अनुभव कर लिया, बिन बाती बिन तेल, तो फिर सूरज का उजाला उसी ब्रह्म की याद दिलाता है। उसी परमात्मा की याद दिलाता है। ऐसे ही थोड़ी आदि काल से लोग सूर्य नमस्कार करते रहे, सूर्य को नमन करते रहे। चंद्र देव, सूर्य देव हर कोई देवता था। चंद्र देव, सूर्य देव, नदी माता हो गई। क्यों हुआ? ब्रह्म का अनुभव भीतर हुआ तो बाहर सब कुछ दिव्य हो गया।

'औधोर जोदि धौरा जेतो
धौरा रूप ताहार प्रोकाश पेतो,
आकृति निरूपौन होतो–2
पावा जेतो–शाधोन–ओनुशरे।।'

अधर को एक बार अगर जान जाओ तो उसका स्वरूप जाना जाएगा। साधना अनुसार ही उस अधर स्वरूप का निरूपण हो जाता है।

साधना क्या है? पहले अधर जाना जाए। अधर स्वरूप को कहां से जानोगे? कैसे अधर का अनुभव होगा? गगन मण्डल में, जिसे दशम द्वार कहते हैं। ऊर्जा को जगाना होगा और उस ऊर्जा को दशम द्वार पर ले जाना होगा। और वहां जाकर उस दशम द्वार पर अधर मानुष का अनुभव होता है। उसकी गूंज सुनाई देती है, उसका प्रकाश दिखाई देता है। 'झिलमिल झलकत नूर, गगन मण्डल में अनहद बाजे।' जब हम वहां पहुंचते हैं तब उसका स्वरूप जाना जाता है। और वो जगह है दशम द्वार।

'औधोर जोदि धौरा जेतो
धौरा रूप ताहार प्रोकाश पेतो।'

उस प्रकाश रूपी अधर का अनुभव दशम द्वार पर जाकर हुआ। निरुपम आकृति है उसकी; अति सुन्दर।

'पावा जेतो–शाधोन–ओनुशरे।।'

साधना है मूलाधार से ऊर्जा को उठाकर दशम द्वार पर ले जाना।

'औधोरेर आकृति मोन,
बौलो देखि रे ओ भोला मोन,
कोन् रूप भेबे कोरी शाधोन
निरूपौन आर होलो ना एबारे।।'

ओ! भोला मन अधर की आकृति कैसी है, कैसे जानोगे उस रूप को चिंतन से? चिंतन से उसे नहीं जाना जाएगा क्योंकि उसकी आकृति नहीं है। आकार नहीं है। अगर साधना करोगे तो निरुपण नहीं कर पाओगे। साधना से उसे कैसे जानोगे? क्योंकि वह तो किसी रूप आकृति में नहीं बंधा है। उसका आकार, रूप नहीं है। पहले कह रहे हैं साधना करना है, साधना से पाया जाता है और फिर कह रहे हैं साधना से कैसे पाओगे? तो साधना–साधना में भेद है। साधना का केन्द्र अन्दर है और अगर साधना का केन्द्र बाहर है। साधना हमारी बहिर्गामी है, अगर बाहर केंद्रित है तब इस साधना से परमात्मा को नहीं पाया जा सकता।

कबीर ने कहा है– 'सूने घर का पाहुना।'

जैसे ही तुम शून्य हुए, वह अतिथि आ जाता है। परमात्मा को अतिथि कहते हैं। जब तक हम स्वयं से भरे हुए हैं, जब तक साधना कर रहे हैं तब तक स्वयं से ही भरे होंगे। हमारे भीतर अगर कर्ता भाव है तो हम स्वयं से भरे हुए हैं और उस साधना से हम परमात्मा को चूकते जाएंगे। जिस दिन हम खाली हो जाएंगे, शून्य हो जाएंगे, उस शून्य को परमात्मा का प्रेम आकर भर देता है। परमात्मा की बरसात से वो शून्य भर जाता है।

आओ, परमगुरु ओशो को सुनते हैं, और गुनते हैं–

'नानक के ये सूत्र बड़े कीमती हैं। इन्हें समझने की कोशिश करें। कहते हैं नानक–

'पाताला पाताल लख आगासा आगास।'

आकाश ही आकाश हैं। एक ही आकाश अनंत हो जाता है। क्योंकि आकाश की कोई सीमा तो नहीं है। एक ही आकाश असीम है। और नानक कहते हैं, आकाश ही आकाश हैं। अनंतानंत! इनफिनिट इनफिनिटीज। एक ही इनिफिनिट नहीं है, एक ही अनंत नहीं है, अनंत! अनंत हैं। आकाश ही आकाश हैं। जहां भी तुम जाओ, वहीं तुम असीम को पाओगे। जिस दिशा में बढ़ो, वहीं असीम को पाओगे। जो भी तुम छुओगे, वही असीम है। सब तरफ असीम हैं।

इस असीम बीच तुम शब्दों छोटे–छोटे पिंजड़े लेकर परमात्मा को पकड़ने की कोशिश कर रहे हो। तुम उसे किताबों में बंद कर रहे हो। तुम उसे वेद और कुरान में लिखने की कोशिश कर रहे हो। यह ऐसे ही है जैसे कोई मुट्ठी में आकाश को बंद कर लेना चाहे। और बड़े मजे की बात तो यह है कि जब मुट्ठी खुली होती है तो आकाश होता है। जब मुट्ठी बंद होती है तो जो होता है वह भी निकल जाता है। खुली मुट्ठी में तो आकाश होता है। क्योंकि खुली मुट्ठी आकाश में होती है।

लेकिन जितना जोर से तुम मुट्ठी बांधते हो उतना ही आकाश बाहर हो जाता है। बिल्कुल बंद मुट्ठी में कोई आकाश नहीं होता, मुट्ठी ही रह जाती है।'

बाउल फकीर जादू बिंदू कहते हैं–
'निराकार शे आकार–शून्यो धोन्यो जौगोते
देबोता–गौन्धौर्बो–नौरेर शौकोलेरे पिंते,
शे पिंतेर शौन्धान पाबो
ऐमोन जोग्गो कौबे हौबे
जादूबिन्दू कौरे स्तौब
कुबीर चाँदेर जुगौल–चौरोन धोरे।।'

वह तो निराकार है, आकार शून्य है। वह अधर तो देवता, गंधर्व, मनुष्य इत्यादि; सब का पिता स्वरूप है। अर्थात आदि रूप है। उस साधना के लिए योग्य बनना पड़ता है।

जादू बिंदू अपने गुरु कुबीर चांद के जुगल चरण की साधना करने को कहते हैं। ताकि गुरु के माध्यम से उस अधर स्वरूप की साधना कर सकें। कह रहे हैं– वह तो निराकार है, आकार शून्य है। उस साधना के लिए योग्य बनना होता है। योग्यता एक ही है– मिटना, अहंकार शून्य होना। यहीं एक मात्र योग्यता है। और उन्होंने बताया है कि ये योग्यता प्राप्त होती है गुरु के माध्यम से। कबीर चांद के जुगल चरण की साधना करने से। चरणों में मिट जाने की कला। परमात्मा को पुकारना हो तो, पुकार से पहले हृदय में एक तैयारी चाहिए, हृदय में एक उत्सव चाहिए, एक बसंत चाहिए जीवन में। सारे द्वार दरवाजें खुले हों ताकि सूरज की रोशनी भीतर आ सके। सूरज की किरणें भीतर नाच सकें और बरसात की बूंदा–बांदी भीतर आ सके। कैसे हम खुल सकें? कैसे ये द्वार–दरवाजे खुलें? इसलिए गुरु चरणों की साधना बोली है।

महमूद गजनी के दरबार में एक बार एक व्यक्ति आया। उसने कहा कि मैंने अपने बेटे को बहुत संस्कार दिए हैं, बहुत अच्छे तरीके से आपके दरबार के लिए तैयार किया है, उसे बहुत शिक्षा दी है। बड़े परिष्कृत ढंग से उसकी तैयारी की है। मुझे ऐसा महसूस होता है कि आपके दरबार में वो एक हीरा साबित होगा।

महमूद गजनी ने आंख उठाकर भी नहीं देखा, चेहरा भी नहीं उठाया, देखा भी नहीं; उसे कहा कि अगले साल आना। एक साल बाद फिर वह अपने पुत्र को लेकर आया और काहा कि मेरे पांच पुत्रों में ये पुत्र सबसे ज्यादा योग्य है, सबसे ज्यादा सुन्दर है। इससे आपके दरबार की शोभा होगी।

तो महमूद गजनी ने फिर कहा कि इसे क्यों तुम दरबार की शोभा बनाने के लिए कहते

हो? क्या योग्यता है इसमें? तो उसने बताया कि इसके पास बहुत सारी योग्यताएं हैं, यह सूफ़ी मत को जानता है, आपके दरबार में बहुत लोग हैं। पंडित हैं, भाषाविद् हैं लेकिन सूफ़ी कोई भी नहीं है, यह सूफ़ी मत को जानता है, आपके दरबार में सूफ़ी सलाह देगा। तो महमूद ने कहा एक साल बाद आना, पहले तुम किसी सूफ़ी गुरु के पास जाओ, अगर वह तुम्हें शिष्य स्वीकार कर लेता है तब फिर तुम एक साल बाद मेरे पास आना। उसका पिता युवक को एक सूफ़ी गुरु के पास ले गया। अब यह जो युवक का बेटा था, रोज सूफ़ी संत के पैर दबाता, उसके चरणों में बैठता, उसका जीवन बस यहीं रह गया। एक साल बीत गया उसके पिता लेने आए कहा कि पुत्र वापस चलो। तुम दरबार के लिए सबसे योग्य वजीर साबित हो गए। चलो मेरे साथ, सम्राट तुम्हारा इंतजार कर रहा है।

बेटा ने सुना ही नहीं, पिता ने कहा तुम बहरे हो गए हो क्या? बेटे ने कहा मुझे कहीं नहीं जाना है, बस मैं यहीं रहूंगा। नहीं तैयार हुआ जाने को। पिता गया, महमूद गजनी से कहा कि वो बेटा तो किसी योग्य ही नहीं था, मेरा अनुमान ही गलत था, मैंने गलत आंका। गजनी ने कहा अब तो मुझे ही जाना पड़ेगा उसे लेने लिए। और महमूद गजनी सूफ़ी आश्रम आया।

जैसे ही सूफ़ी गुरु ने सुना कि महमूद गजनी उस शिष्य को लेने आ रहा है तो वो शिष्य का हाथ पकड़ कर द्वार तक स्वागत के लिए लेकर आता है और सौंपता है महमूद गजनी को कि ये रहीं आपके दरबार की शोभा, आपके लिए उपयुक्त वजीर लेकिन आप पूछ लें इससे कि आपके साथ जाने के लिए तैयार हो जाए। महमूद गजनी ने कहा चलो मैं तुम्हें लेने आया हूं, मेरे साथ चलो। उस युवक ने कहा कि अब मुझे कहीं नहीं जाना है। दरबार तो मुझे मिल गया, गुरु का दरबार मुझे मिल गया, और मुझे क्या चाहिए? असली दरबार मिल गया जीवन का।

अगर किसी के जीवन में परमात्मा आया है तो उसके, जो मिट गया है गुरु चरणों में; गुरु दरबार में परमात्मा उसे खोजते हुए चला आता है।

हरि ओम तत्सत्। जय ओशो।

शून्य में उतरता है पूर्ण

'मानुषे मानुष रोयछीमिशे तोर नाई ज्ञान नायन ओरे।
अबोध मोन, शे मानुष रौतोन तुई चीनबे किशे।। तोर
नाई ज्ञान नायन ओरे अबोध मोन।
घट–घट गोरख फिरे निरूता।।
को घट जागे को घट सूता।
घट–घट गोरख, घट–घट मीन।।
आलेकेरमानुष थाके आलोकेते।
मोहो अंधो जाने न पारे चिंते।।
कौरे स्थान स्थिति ए मानुष्येते।
पालोकेते जाए पालोकेते आयशे।
सो चैतन्यो मानुष थाके हावाधोरे,
रूपेन नोयन दिंए एक्नेहारे।
गुरू चौरण सादाय भाभी आंतोरे,
ओ ऑधर धोरते पारेशे आनायशे।
गोसाईं गुरू चांद बोले दिंए गाला गाली।
थात्ते चौखो आंधो मानुष ना चेनली।।
धींकरे तार गाले ते चून काली।
सॉतो धिक तोरे राधा श्याम दासे।।'

रे मन! मानुष में ही मानुष समाया हुआ है। तेरे ज्ञान नयन नहीं है अबोध मन! उस ज्ञान रतन को तू कैसे पहचानेगा? हर घट में गोरख भी है और हर घट में मछंदरनाथ भी है, हर एक के भीतर सोया हुआ शिष्य भी है और हर एक के भीतर जागृत गुरु भी है।

वह अलख निरंजन मानुष रतन आलोक में ही तो समाया हुआ है। मोह में अंधे होकर तुम उसे नहीं पहचानते। इस मानुष में ही तो वह मानुष रतन स्थित है। पलक झपकते वह अलख आता–जाता है। चैतन्य स्वरूप मानुष ही जो है, वो अधर में अधर रूप धरता है। गुरु के सुमरिन से ही उस अधर को अनायास ही धरा जाता है, धारण किया जाता है।

गोसाईं गुरु चांद शिष्य को धिक्कारते हुए कहते हैं– आंखे रहते हुए तुम अंधे हो गए हो, और उस मानुष को नहीं पहचानते। तूने तो मुख पर कालिख पोत ली। इसलिए राधा श्याम दास स्वयं को धिक्कार कर ठीक मार्ग पर चलने की बात करते हैं। गाली कोई गुरु दे नहीं सकता, लेकिन हर शिष्य को वो गाली की तरह लगती है।

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर राधाश्याम दास कहते हैं–

'मानुषे मानुष रोयछींमिशे तोर नाई ज्ञान नायन ओरे।

अबोध मोन, शे मानुष रौतोन तुई चींनबे किशे।।'

रे मन! मानुष में हीं मानुष समाया हुआ है। तेरे ज्ञान नयन नहीं है अबोध मन! उस ज्ञान रतन को तू कैसे पहचानेगा?

'तोर नाई ज्ञान नायन ओरे अबोध मोन।

घट–घट गोरख फिरे निरूता।।

को घट जागे को घट सूता।

घट–घट गोरख, घट–घट मींन।।'

गोरख नाथ जीं का वचन है। गोरख नाथ के गुरु हैं मछंदरनाथ और मछंदर का अर्थ होता है मींन, मछली; और इस दोहे का भाव है कि 'घट–घट गोरख, घट–घट मींन।' हर घट में गोरख भीं है और हर घट में मछंदरनाथ भी है, हर एक के भीतर गुरु भीं है। इसका अर्थ हुआ कि हर एक के भीतर शिष्य भीं है और हर एक के भीतर गुरु भीं है। हर एक के भींतर वह मौजूद है जिसे जागना है और हर एक के भींतर वह सत्ता भीं मौजूद है जो हमें जगाएगीं। दोनों चकमक पत्थर हर एक के भींतर मौजूद हैं। जरा से घर्षण कीं बात है। घर्षण हुआ और आग पैदा हो गई। बाहर का गुरु दर्पण मात्र है जिसमें कि भीतर कीं गुरु कीं छवि दिखतीं है। गुरु दर्पण है, जिसमें जब शिष्य अपना चेहरा देखता है और उसे याद आ जातीं है अपने भीतर के गुरु स्वरूप कीं। फिर कहते हैं–

'आलेकेरमानुष थाके आलोकेते।

मोहो अंधो जाने न पारे चिंते।।

कौरे स्थान स्थिति ए मानुष्येते।

पालोकेते जाए पालोकेते आयशे।।'

वह अलख निरंजन मानुष रतन आलोक में हीं तो समाया हुआ है। मोह में अंधे होकर तुम उसे नहीं पहचानते। इस मानुष में हीं तो वह मानुष रतन स्थित है। पलक झपकते वह अलख आता–जाता है। अलख यानीं जो लखा नहीं जा सके, अदृश्य, जिसे हम अपना लक्ष्य नहीं बना सकें, जिस तक हमारी इंद्रियां नहीं पहुंच सकें, जिस तक हमारा मन नहीं पहुंच सके।

फिर प्रश्न उठता है जहां इंद्रियां नहीं पहुंच सकतीं, जहां मन नहीं पहुंच सकता उसे पाएंगे कैसे? फिर कैसे परमात्मा मिलता है? हमें यह बात पता होना चाहिए कि परमात्मा तक हम नहीं पहुंचते परमात्मा हम तक आता है। फिर कैसे आता है परमात्मा हम तक? जब हम मौन होते हैं, जब हम शांत होते हैं, जब हम प्रार्थना में लीन होते हैं। शून्य होते हैं, ध्यानस्थ होते हैं।

उस शून्य में उतर आता है परमात्मा।

'फूल ही फूल खिल उठे मेरे पैमाने में।
आप क्या आए बहार आ गई मयख़ाने में।।'

शिष्य में बहार आ जाती है, शिष्य अपने भीतर गुरु स्वरूप देख लेता है। उसके जीवन में जब परमात्मा उतरता है। सागर उतरता है बूंद में। पहेली बड़ी अजीब है लेकिन वास्तविकता यही है। परमात्मा हम में उतर रहा। विराट क्षुद्र में उतर रहा है। जैसे सागर चम्मच में आ रहा हो, ऐसी पहेली है ये। लेकिन यही सत्य है। जिसने भी अनुभव किया है उसने पाया है कि वह तो अपने जगह पर बैठे–बैठे खाक हो गया है और तब पाया है कि परमात्मा दौड़ा चला आता है। उसकी बरसात से उसका जीवन भर जाता है। भक्त का अर्थ ही यही है जो मिट गया है, अपनी जगह पर बैठा–बैठा राख हो गया। परमात्मा प्रतिपल चारों ओर से हमें घेरे हुए है। और वह प्रतिपल हमारे भीतर आने को आतुर है। हमें प्रवेश करने को आतुर है।

जैसे हम सांस ले रहे हैं। ऐसे वे प्रतिपल प्रवेश तो कर ही रहा है और वह जनाने के लिए भी, यह अनुभव कराने के लिए भी आतुर है लेकिन हम एक घेरे में बंधे हैं। हम उस अनुभव से गुजर ही नहीं पाते। हम मोह–माया के घेरे में बंधे हुए हैं, हमने अपने बंधनों को बना लिया है, बाहर अपनी चेतना को जोड़ लिया है; बाहर से ओर कस के इस घेरे से हम जकड़े हुए हैं। और परमात्मा हमें उस घेरे से बाहर निकालकर बार–बार अनुभूतियां देता है। लेकिन हम हैं उस अनुभव से गुजर ही नहीं पाते। क्योंकि हमारे चक्षु खुले ही नहीं है। ज्ञान नयन बंद है।

ओ रे अबोध मन! तेरे ज्ञान नयन ही बंद है। परमात्मा भीतर है, और प्रतिपल यह एहसास भीतर है तो बाहर भी है। और एक समय आता है कि वो बाहर भीतर की जो अनुभूति है, ये जो रेखा है ये ख़तम हो जाती है। और इस बाहर भीतर की रेखा को ख़तम कराने का एहसास परमात्मा प्रतिपल दे रहा है। लेकिन हम अपनी बनाई हुई सीमा रेखा से बाहर निकलें तब न।

'सो चैतन्यो मानुष थाके हावाधोरे,
रूपेन नोयन दिए एक्नेहारे।
गुरू चौरण सादाय भाभी आंतोरे,
ओ ऑधर धोरते पारेशे आनायशे।।'

चैतन्य स्वरूप मानुष ही जो है, वो अधर में अधर रूप धरता है। हवा में अर्थात् निराकार में समाया हुआ है। उसका स्वरूप चिंतन कर के एक मन से उसे निहारा जाता है। गुरु चरण का चिंतन सदा अंत में चलता रहे। गुरु के सुमिरिन से ही उस अधर को अनायास ही धरा जाता है, धारण किया जाता है।

चैतन्य स्वरूप का चिंतन अर्थात् सुमिरन। कैसे करोगे उस चैतन्य स्वरूप का चिंतन जो

कि निराकार है। उसकी याद, उस निराकार, उस अचिंत का चिंतन कैसे करोगे, जिसका कोई आकार नहीं है? जिसका कोई रूप नहीं है। उसका कैसे चिंतन हो? उसकी कैसे याद हो? एक ही विधि है। गुरु चरण का चिंतन सदा अंतर में बना रहे।

'चरण कमल तेरे धोए धोए पींवां।
मेरे सतगुरु दीन दयाला।।
सिमर, सिमर, सिमर नाम जिव्हा।
मेरो तन-मन होए निहाला।।'

जिसने गुरु का चिंतन किया, उसने पाया उसके भीतर नाम की गूंज भर गई है और फिर उस नाम की गूंज में डूब जाना, उस नाम की गूंज में जीना, उस नाम की गूंज को अपने आस-पास चारों ओर से सर्वत्र महसूस करना। यही है सुमरिन; और ये सुमरिन का द्वार है गुरु सुमरिन। गुरु सुमरिन से हट कर अगर हम सीधा उस परमात्मा के सुमरिन में जीते हैं, ऐसा सोचते हैं तो ये हमारी कल्पना मात्र है। वास्तविकता से कोसों दूर। क्योंकि निराकार की याद से कैसे भरोगे? गुरु का सहारा लेकर, आकार का सहारा लेकर, गुरु भगवान स्वरूप है, भगवत स्वरूप है; उसकी याद, और फिर वह याद माध्यम बन गई उस निराकार तक ले जाने की।

महाराष्ट्र में तीन संत हुए हैं। संत एकनाथ, निवृति नाथ और मुक्ताबाई। मुक्ता बाई सूफी संत है। संत एकनाथ ने एक पत्र भेजा, संदेश वाहक पत्र लेकर आया उन्होंने संत निवृति नाथ को पत्र दिया। संत निवृति नाथ ने पत्र खोला, पढ़ा। संदेश वाहक ने देखा कि पत्र तो कोरा है और निवृति नाथ पढ़ रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं और झूम रहे हैं। झूम-झूम जा रहे हैं। और फिर उन्होंने वह पत्र मुक्ता बाई को भी पढ़ाया और मुक्ता बाई भी नाचने लगी पढ़ कर और उसके बाद दोनों ने पढ़ा और उस पत्र को वापस पैक किया लिफाफे में और कहा संदेश वाहक को कि अब इस पत्र को एकनाथ को वापस कर दें।

संदेश वाहक ने कहा मेरी एक जिज्ञासा शांत करें। जब मैं ये पत्र लाया तब तो मुझे नहीं पता था कि इसमें कुछ नहीं लिखा, खाली है। लेकिन अब मैं जब देखा ये कोरा कागज़ और तब आपने पढ़ा और रस ले-ले कर पढ़ा, झूमे-नाचे; और मुक्ता बाई ने भी पढ़ा, ये क्या राज है?

निवृति नाथ ने कहा कि इस पत्र के माध्यम से उन्होंने ये खबर दी है कि उस निराकार को पढ़ने की विधि है, कोरे कागज को जिसने पढ़ लिया। इस शून्य को, इस कोरे कागज को जिसने पढ़ लिया। कोरी स्लेट जिसको पढ़नी आ गई। सूफ़ियों की किताब है जिसमें कि सारे पन्ने कोरे हैं। ये किताब ये संदेश देती है कि अगर परमात्मा को पढ़ना है तो हमें शून्य में जीना सीखना होगा। शून्य में डूबना सीखना होगा, शून्य को पढ़ना सीखना होगा। जो उस अलिखित को पढ़ लेता है और मौन में जो डूब जाता है उसके जीवन में परमात्मा का

अवतरण होता है। वही अधिकारी है परमात्मा को पाने का। और ये कला सिखाता है गुरु। ये कला आती है गुरु के सत्संग में। गुरु का जादू तभी घट सकता है जब तुम खाली हो जाओ, रिक्त बनो, गृहणशील बनो।

आएं, इस संदर्भ में परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'गुरु गोरख के वचन पतिआया, तब द्यौंस नहीं रहा राती।'

और गुरु एक चमत्कार करने वाला है। लेकिन चमत्कार तभी हो सकता है जब तुम पात्र हो।

'थंभ बिहूंणी गगन रचीलै।'

वो एक ऐसा आकाश तुम्हें देना चाहता है जो बिना किसी सहारे के 'थंभ बिहूंणी गगन रचीलै।' हम मंदिर बनाते हैं तो स्तंभ बनाते हैं, खंभे बनाते हैं तब कहीं मंदिर का छप्पर बन पाता है। लेकिन ये आकाश का छप्पर देखा? छप्पर तो है लेकिन बिना किसी सहारे के। ऐसा ही आकाश एक भीतर भी है जो गुरु देगा। जो किसी खंभों पर, सहारों पर नहीं है। एक ऐसा मंदिर भी है, जो ईंटों से नहीं चुना गया है। वही चिन्मय है, वही असली मंदिर है।

'थंभ बिहूंणी गगन रचीलै, तेल बिहूंणी बाती' और अभी तो तुमने वो दीये देखे हैं जिनमें तेल से बाती जलती है लेकिन तेल चूक जाएगा तो फिर दीया बुझ जाता है कि बाती चूक जाएगी तो दीया बुझ जाता है। गुरु एक ऐसा दीया देना चाहता है 'बिन बाती बिन तेल' न तो वहां बाती होगी, न वहां तेल होगा सिर्फ रोशनी होगी। निराधार प्रकाश होगा। फिर वही प्रकाश शाश्वत है, उसका कोई कारण नहीं है इसलिए उसके मिटने का भी कोई उपाय नहीं।

'गुरु गोरख के वचन पतिआया।'

'गोसाईं गुरू चांद बोले दिए गाला गाली।
थाक्ते चौखो आंधो मानुष ना चेनली।।
धीकरे तार गाले ते चून काली।
सॉतो धिक तोरे राधा श्याम दासे।।'

गोसाईं गुरु चांद शिष्य को धिक्कारते हुए कहते हैं– आंखे रहते हुए तुम अंधे हो गए हो, और उस मानुष को नहीं पहचानता। तूने तो मुख पर कालिख पोत ली। इसलिए राधा श्याम दास स्वयं को धिक्कार कर ठीक मार्ग पर चलने की बात करते हैं। ठीक मार्ग क्या है? जब तक हमारा मार्ग बाहर खुलता है, हमारी आंख बाहर देखती है, तब तक हर मार्ग गलत है। जिस

दिन मार्ग भीतर की ओर आता है, आंखे भीतर की ओर खुलती हैं, उस दिन मार्ग सही है। जब तक हम कर्ता भाव में हैं, जब तक क्रियाओं में उलझे हुए हैं तब तक मार्ग गलत है। जिस दिन हमने अक्रिया में जीने की कला सीख ली, उस दिन सही मार्ग की शुरूआत हो गई।

'रूकूं तो मंजिलें हीं मंजिलें हैं।
चलूं तो रास्ता कोई नहीं है।।
दरीचा बे सदा कोई नहीं है।
अगर चे बोलता कोई नहीं हैं।।'

मैं ऐसे जमघट में खो गया हूं जहां मेरे सिवाय कोई नहीं है। अपने ही विचारों के कोलाहल में, अपनी क्रियाओं के जाल में, अपने ही पाप-पुण्य के बंधनों में हम फंसे हुए खो जाते हैं। और सारी जिंदगी निकलती जाती है। पाप करते हैं, गलतियां करते हैं, अपराध करते हैं, पश्चाताप करते हैं, मंदिर जाते हैं फिर नारियल चढ़ाते हैं, क्षमा मांगते हैं। बस यही क्रियाओं को करते-करते सारी जिंदगी गुजर जाती है। कब हमारी आंख खुलेगी? हर संत यही कहते हैं, इस लिए हर शिष्य को धिक्कारते हैं।

गोसाईं गुरु चांद शिष्य को धिक्कारते हुए कह रहे हैं कि आंखें रहते हुए तुम अंधे हो कब तुम्हारी आंखें खुलेंगी? कब तुम सही रूप से देखना सीखोगे? सही देखना क्या है? सही देखना बाहर नहीं है, सही देखना है भीतर। जीवन की सही दृष्टि है भीतर अंतर दृष्टि जिस दिन खुल जाए वही दृष्टि सही है। तूने तो मुख पर कालिख पोत ली राधाश्याम कहते हैं। ठीक मार्ग पर चलो।

'गोसाईं गुरू चांद बोले दिए गाला गाली।'

गाली कोई गुरु दे नहीं सकता। लेकिन हर शिष्य को वो गाली की तरह लगती है। जब भी, जो भी सोया हुआ है उसे जागे हुए की बात गाली की तरह ही लगती है, चोट की तरह लगती है। कबीर दास के एक दोहे को पकड़ लो और हमें गाली ही तो लगती है। जब वो कहते हैं पत्थर पूजने से अगर हरि मिलता तब तो सब को मिल जाता। जिससे अच्छी तो चक्की है जिससे कि कम से कम संसार का काम तो होता है। और हर संत ने जगाने की कोशिश की, इसका मतलब वो गाली थोड़ी दे रहे हैं? इसका मतलब क्या उनकी श्रद्धा कम है परमात्मा के प्रति? उनके समान श्रद्धा, उनके समान परमात्मा के प्रेम में कौन जी सकता है? जिसने परमात्मा को जाना, जिसका जीवन परमात्म-मय हो गया, जो खुद परमात्मा हो गया। स्वयं को कोई कैसे गाली दे सकता है?

संतों के वचनों को, बाउल फकीरों की अनूठी वाणी को बहुत सहानुभूतिपूर्वक समझना, तो ही गहरी बात पकड़ पाओगे। अन्यथा मिस-अंडरस्टैंडिंग की, गलतफहमी की काफी संभावना रहती है। विद्यार्थी की तरह बौद्धिक नहीं, साधक-शिष्य की तरह हार्दिक होकर, भाव से, आत्मीयता से सुनना। सुनना ही नहीं, गुनना भी।

हरि ओम् तत्सत्।

प्रेम में गिरना नहीं, उठना

'निगुढ़ लीला रोशिक जाने,
शे जे ओधिकारी हौय भौजोने।
औबोतारे हौय कान्डारी जीबेर निस्तार–कारोने।।
दौया कौरो निमाइ–रूपी
आर आछे हजरत–नोबी,
निमाइ–हजरत ऐके भिन्नो छोबी,
साँई ऐका ऐकेश्शौर
काहे हिन्दुकाहे मोछोलमान
मिलजौल हौओ, मोन, साँई–शेबौने।।
केहो पुरुष केहो प्रोकृति,
शौर्बोघौटे साँई येर बौशोती
कोरछे खैला रौशो–रोती
देखि जौगोतमौय।
ऐक दिके हौय ब्रोम्हार सृष्टि,
ऐक दिके प्रेम शाधु जाने।।
गुरु देहे कौरो स्थिति,
जोदी हौय मोन निष्ठारोती,
शुद्धो भोक्ती औहोइतूकी
मूढं पाँजार घोटबे कैने।।'

'निर्गुण लीला तो कोई रसिक जन ही जान सकता है। वही साधन भजन का सच्चा अधिकारी है। अवतार के रूप में जन्म लेकर जीव का उद्धार करता है। निमाइ प्रभु भी दया करके जीव का उद्धार करने के लिए आए। हजरत नवी और निमाइ चन्द्र में कोई भिन्नता नहीं है। वही एकेश्वर है जो कभी मुसलमान, कभी हिन्दु का रूप धरते हैं; उद्देश्य तो केवल साँई की साधना ही है। कोई पुरुष है तो कोई प्रकृति। सर्व घाट में साँई का वास है। सभी उस ब्रह्म की ही सृष्टि है। इस जगत में कभी प्रेम रस में डूबते हैं, कभी उसी प्रेम की नैया से संत पार हो जाते हैं।

गुरु में ही स्थिति प्राप्त करो। अगर मन में निष्ठा है तो अहेतुकी शुद्ध भक्ति साधना करो। पंचशाह कहते हैं हे मूढ़! अहेतुकी शुद्ध भक्ति से गुरु में स्थिति प्राप्त कर सकोगे।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

आज का गीत है पंचशाह बाउल फकीर का–

'निगुढ़ लीला रोशिक जाने

निगुढ़ लीला रोशिक जाने,

शे जे ओधिकारी हौय भौजोने।

औबोतारे हौय कान्डारी जीबेर निस्तार–कारोने।।'

अर्थात् निर्गुण लीला तो कोई रसिक जन ही जान सकता है। वही साधना भजन का सच्चा अधिकारी है।

जीवन एक खेल की तरह है, बिल्कुल गैर गंभीर। खेल गंभीर नहीं होता, हम गंभीर बना लेते हैं, खेल को भी।

जीवन खेल की तरह गैर गंभीर है। इसलिए तो हम राम के जीवन को राम लीला कहते हैं। लीला की तरह, प्ले की तरह। कृष्ण के जीवन को कृष्ण लीला कहते हैं।

जो इस जीवन को, परमात्मा को, खोजने वाले हैं; वह या तो त्यागी हैं, या पलायनवादी हैं, या तपस्वी हैं। तो इस तरह से वह परमात्मा को, जीवन को, नहीं खोज सकते। रसिक होकर ही खोजा जा सकता है। ना तो आसक्त खोज सकता, ना तो संसारी खोज सकता है परमात्मा को। क्योंकि उसने भी जीवन को लीला की तरह नहीं लिया। और ना ही सन्यासी, जिसने की संसार छोड़ दिया, विरक्त हो गया है। वह भी नहीं खोज सकता उसके लिए भी अत्यंत कठिन है क्योंकि उसके लिए भी जीवन लीला की तरह नहीं है।

बाउल जो है वह रसिक जन है। यानी प्रभु का प्रेमी है और प्रभु की प्रकृति का भी प्रेमी है। सगुण का प्रेमी है और निर्गुण का भी प्रेमी है। साकार का प्रेमी है और निराकार का भी प्रेमी है। लोग एक पक्ष लिए हैं, जो साकार के प्रेमी हैं, जगत के प्रेमी हैं, संसार में हैं तो संसार में ही हैं। वह भी गंभीर हैं और जो संसार के पार जाने की कोशिश कर रहे हैं, छोड़ कर चल दिए वह भी गंभीर हो गए। लेकिन परमात्मा तक पहुंचना है तो गैर गंभीर होकर, लीला की तरह जीवन जीना होगा, क्योंकि ये सब कुछ लीला ही है। और इसे अगर समझना है तो हमें लीला के गुर सीखने होंगे। लीला के गुर क्या हैं? गैर गंभीर होना।

और याद रखना अगर हमें प्रभु से प्रेम है और प्रभु की प्रकृति से प्रेम नहीं है तो बात नहीं बनेगी। अगर हमें नृत्य से प्रेम नहीं है और नर्तक से प्रेम है तो बात नहीं बन सकती। नर्तक और नृत्य दोनों से ही प्रेम। संगीतकार और संगीत दोनों से ही प्रेम। संगीत से प्रेम नहीं तो संगीतकार तक कैसे पहुंचोगे? मूर्ति से प्रेम नहीं तो मूर्तिकार तक कैसे पहुंचोगे?

पेंटिंग से प्रेम नहीं तो पेंटर तक कैसे पहुंचोगे? ऐसे ही परमात्मा तक पहुंचने के लिए परमात्मा से प्रेम और परमात्मा की प्रकृति दोंनो से प्रेम करके ही बात बनेगी।

ये परमात्मा की जो सृष्टि है ये लीला की तरह है और जो इसे लीला की तरह जीता है गैर गंभीर होकर, वो उस सृष्टा तक पहुंच जाता है। कहते हैं बाउल फकीर–

'शे जे ओधिकारी हौय भौजोने।'

वही साधना भजन का सच्चा अधिकारी है।

प्रायः गलत किस्म के लोग, धर्म में उत्सुक हो जाते हैं। जो दुखी हैं, त्रस्त हैं, मन से रुग्ण हैं। रुग्ण चित्त के लोग चले आते हैं धर्म में, ध्यान में उत्सुक हो जाते हैं; ऐसे लोग अधिकारी नहीं है परमात्मा को पाने के। परमात्मा के शांति के द्वार इनके लिए नहीं खुल सकते क्योंकि जो रुग्ण चित्त के लोग हैं, अगर वह मंदिर जा रहे हैं तो वहां भी भिखारी वृत्ति है उनकी, प्रार्थना में लगातार मांग रहे हैं। और जिनके भीतर मांग है, उन्हें परमात्मा कभी नहीं मिलता।

ऐसे सोचो कि अगर लंगड़े लोग पहुंच जाए ओलिंपिक में तो कैसे जीतेंगे? जीत नहीं सकते। ऐसे ही अगर हमारे भीतर मांग है, मांग करने वाली ह्रदय चित्तवृत्ति है और इसे लेकर हम मंदिर पहुंच जाएं, इसे लेकर हम प्रार्थना में पहुंच जाएं, इसे लेकर हम ध्यान में बैठ जाएं, हमें कुछ नहीं मिल सकता। जब तक ये मांगने वाले वृत्ति खत्म ना हो जाए। और ये मांगने वाली वृत्ति कैसे खत्म होगी? जब तक हम जीवन को लीला की तरह नहीं देखते, हमारे लिए सब कुछ गंभीर है। तो हम मांगते ही चले जाएंगे, हम जैसा चाहते हैं वैसी परिस्थितियां हों। परमात्मा से मांगने में अपना जीवन, अपनी साधना सब कुछ केंद्रित उसी पर कर देते हैं।

'औबोतारे हौय कान्डारी जीबेर निस्तार–कारोने।।'

कहते हैं बाउल फकीर– गुरु अवतार के रूप में जन्म लेकर जीव का उद्धार करते हैं।

गुरु अवतार है, गुरु के रूप में परमात्मा अवतरित हुआ है। साकार देह में निराकार उतर कर आ गया है। और जो अधिकारी हैं उनका उद्धार करता है वह।

खिलाड़ियों का कोच किसको दौड़ना सीखा सकता है? जिसका पैर सही है। हमें जीवन की दृष्टि को बदलना होगा। भीखमंगी प्रवृत्ति हटानी होगी। सुख की ओर अपनी जीवन की दृष्टि दौड़ानी होगी। कैसे जीवन सुख से भर जाए? हम हमेशा कांटों में उलझे रह जाते हैं। हम हमेशा दुख की ओर अपनी नजरें गड़ाते हैं। परिस्थितियां बदलने वाले लोग भीखमंगे रहेंगे। जो मनोस्थिति बदलते हैं वे शहंशाह हो जाते हैं। उन्हें परिस्थिति कोई असर ही नहीं करेगी। क्योंकि परिस्थिति नहीं मनोस्थिति के कारण जीवन की दृष्टि बदल पाती है।

उसी परिस्थिति में एक व्यक्ति सुखी हो सकता है और एक व्यक्ति शिकायत से भर सकता है। और जिसने सुखी होने की ओर अपने जीवन को दिशा दे दी, वे अधिकारी हैं।

कबीर साहिब कहते हैं–

'दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करै न कोय।

जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय।।'

लेकिन दुख में सुमिरन करने से सुमिरन होता ही नहीं है। सुमिरन तो एक सुखी व्यक्ति ही कर सकता है। अगर पैर में कांटा गड़ा है तो सारी चेतना पैर में ही जाएगी। हृदय में दुख है तो पूरी चेतना उस दुख में ही डूबी रहेगी। उसकी याद सुख के क्षणों में ही आती है। सुमिरन सुख में ही हो सकता है। ये बिल्कुल गलत दृष्टि है कि जब हम दुख में होते हैं तब सुमिरन संभव हो सकता है। बिल्कुल नहीं। दुख में हमारी आवाज़ उस तक जाती ही नहीं है।

ऐसे सोचो की आप के घर में रोज़ कोई दुखी व्यक्ति चला आए, उदास, चिड़चिड़ा, दुख लेकर, शिकायत लेकर; तुम कितनी देर उसे पसंद करोगे? परमात्मा भी दुखियारे चित्त के लोगों को पसंद नहीं करता। आनंद, प्रफुल्लित लोग ही हकदार हैं प्रभु के पास जाने के लिए।

'दौया कौरो निमाइ–रूपी

आर आछे हजरत–नोबी,

निमाइ–हजरत ऐके भिन्नो छोबी।'

निमाइ प्रभु भी दया करके जीव का उद्धार करने के लिए आए। हजरत नवी और निमाइ में कोई भिन्नता नहीं है।

कहते हैं– निमाई और हजरत इन दोनों का सार निचोड़ बाउल में है। समस्त गुरु, चाहे हजरत हो चाहे निमाइ हो, समस्त गुरु उस एक ही प्रभु के रूप हैं। जैसे एक ही चांद का अलग–अलग झीलों में अलग–अलग प्रतिबिंब बनेगा और अलग–अलग तरीके से बन सकता है। किसी झील के आस–पास ज्यादा पेड़ पौधे हैं, किसी झील के आस–पास चट्टानें ज्यादा हैं तो कुछ अलग ढंग का प्रतिबिंब हो सकता है लेकिन एक ही चांद का प्रतिबिंब बनता है। ऐसे ही समस्त गुरु उस प्रभु का संदेश लेकर आते हैं, लेकिन उनके शिक्षा, संस्कार, देश, काल के अनुसार उनकी अभिव्यक्तियां अलग हो सकती हैं, ढंग अलग हो सकते हैं, विधियां तौर– तरीके अलग हो सकते हैं लेकिन मंजिल, इशारा, गंतव्य एक ही होता है। चूँकि आंतरिक चेतना की अनुभूति एक है, इसलिए मंजिल की ओर इशारा तरह–तरह से कर सकते हैं लेकिन मंजिल एक ही है।

'ऐक दिंके हौय ब्रोम्हार सृष्टि,

ऐक दिंके प्रेम शाधु जाने।।'

क्हते हैं, इस जगत में कभी प्रेम रस में डूबते हैं, कभी उसी प्रेम की नैया से संत पार हो जाते हैं।

'मोहब्बत की बन गयी एक उम्दा कहानी एक दिन।

जब समंदर से मिल दरिया का पानी एक दिन।।'

बाउल प्रेम को अधर्म नहीं मानते। लौकिक प्रेम को भी अधर्म नहीं मानते। बाउल की क्रांतिकारी घोषणा है कि प्रेम आत्मा का द्वार है। और यही परमगुरु ओशो की एक किताब का भी नाम है और उनका भी संदेश है कि 'प्रेम है द्वार प्रभु का'। जिस द्वार से हम बाहर जाते हैं, संसार में जाते हैं, उसी द्वार से हम अपने भीतर लौट सकते हैं। द्वार एक ही है।

जैसे कोई चिड़िया किसी द्वार से भीतर प्रवेश कर गई है और फकीर बाहर इंतजार कर रहा है चिड़िया कैसे निकले? लेकिन वो सब द्वार पर जाती है सिर्फ एक जगह पर नहीं जाती, सब जगह टकराती है, उस द्वार पे जहां से गई थी वहां से बाहर नहीं निकलती; केवल फकीर इंतजार ही कर सकता था, उसे कैसे समझाए। अंततः वो चिड़िया उस द्वार से बाहर निकल जाती है। गुरु केवल देखता है, इंतजार ही कर सकता है। हम जिस द्वार से बाहर संसार में उलझे फंसे, उसी द्वार से हम भीतर आ सकते हैं और परमात्मा तक पहुंच सकते हैं।

लौकिक प्रेम भी अधर्म नहीं है, इसे अगर ठीक दिशा मिल जाए, इसे उर्ध्वगामी दिशा मिल जाए, एक ऐसी श्रद्धा बन जाए, एक ऐसी भक्ति बन जाए तो ये प्रभु तक पहुंच जाता है। और यही सभी संत बताते हैं। संत इसी में डूबकर जगत के पार, भवसागर पार हो जाते हैं। और संसारी इसी में फंस कर भवसागर में फंस जाते हैं।

'खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टी वा की धार।

जे उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार।।'

'ये इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजिए।

एक आग का दरिया है, और डूब के जाना है।।'

आएं परमगुरु ओशो की वाणी को सुनते हैं–

'प्रेम में राग हो तो प्रेम नर्क बन जायेगा। प्रेम में आसक्ति हो तो प्रेम कारागृह होगा। प्रेम राग शून्य हो, स्वर्ग बन जाएगा। प्रेम आसक्ति

मुक्त हो, तो प्रेम ही परमात्मा है।

प्रेम की दोनों संभावनाएं हैं। प्रेम के साथ तुम राग और आसक्ति को जोड़ सकते हो। तो ऐसा हुआ, जैसे तुमने प्रेम के पक्षी के गले में पत्थर बांध दिए, अब वह उड़ न सकेगा। जैसे तुमने प्रेम के पक्षी को सोने के पिंजड़े में बंद कर दिया। पिंजड़ा कितना ही बहुमूल्य हो, हीरे–जवाहरात जड़े हों, तो भी पिंजड़ा पिंजड़ा ही है – पंखों को नष्ट कर देगा।

जब प्रेम से तुम राग और आसक्ति को काट देते हो प्रेम जब निर्मल होता है, निर्दोष होता है, निराकार होता है, जब तुम प्रेम में सिर्फ देते हो, मांगते नहीं, जब प्रेम दान होता है– जब प्रेम सम्राट होता है, भिखारी नहीं– जब तुम आनंदित होते हो क्योंकि किसी ने तुम्हारा प्रेम स्वीकार किया लेकिन जब तुम प्रेम का सौदा नहीं करते, जब तुम बदले में कुछ भी नहीं मांगते तब तुम प्रेम के पक्षी को मुक्त कर देते हो आकाश में, तब तुम उसके पंखों को बल देते हो, तब यह पक्षी अनंत की यात्रा पर निकल सकता है।

प्रेम ने गिराया भी है, प्रेम ने उठाया भी है। निर्भर करता है कि तुमने प्रेम के साथ कैसा व्यवहार किया। इसलिये प्रेम बड़ा बेबूझ शब्द है। वह द्वार है – उसके इस तरफ दुःख है, उस तरफ आनंद है उसके इस तरफ नर्क है, उस तरफ स्वर्ग है उसके इस तरफ संसार है, उस तरफ मोक्ष है –प्रेम द्वार है।'

हरि ओम तत्सत्।

दीया बिना उजियारा

'मोन तुइ कोरली ना घौरेर खौबोर दिन गैलो बिफौले।
मौहाजौनेर चापा जिनिश पौरेर हाते शाइष्य दिलेरे।।
नौय दौरजा आठारो कोठा, कोठाय, कोठाय धौन।
मोनी–मुक्ता, हीरा–मानिक आछे औगोनौन,
ओरे, कोन कोठाय कोन रौत्नो आछे
शिखली ना तोर गुरुर काछे रे।
शौठेर शौंगे प्रेम कोरीये रोयेछो डूबिये,
दिनेर पौर दिन गोये जाय औन्धेर मौतो होये,
ओरे, कामक्रोध छौयटि रिपू
इशाराय कूपौथे चालाय रे।।
औधोम तारोकचौन्द्रौ बौले मोनेते भाबिये,
घौरेरताला बौन्दो रोइला देखले ना खूलिये।
घौरे जोलेछे बाती, दिबा–राती,
जोलेछे ताहा बिना तोइले रे।।'

'मन! तूने स्वयं की खबर नहीं ली, तेरा तो दिन ही व्यर्थ जा रहा है। महाजन के पास तूने अपना अमूल्य धन सौंप दिया।

नौ दरवाजा जिसके अठारह कोठी और प्रत्येक कोठी में अमूल्य धन माणिक, मुक्ता, हीरा समाया है। कौन सी कोठी में कौन सा रत्न समाया है, इसे गुरु के पास ही सीखना पड़ता है। ढ़ोंगी के साथ प्रेम करके दिन पर दिन अंधे की तरह दिन बिता रहे हो।

काम–क्रोध जैसे छः रिपु के इशारे पे चलकर कुपथ पर चलते हो। अधम तारोक चंद्र अपने मन में सोचते हैं कि घर में ताला लगाकर उसे कभी खोलकर भी नहीं देखा। उस घर में दिव्य बाती सदा जल रही है, जहाँ दिन व रात्रि का कोई बंधन नहीं है। अमर ज्योति वहाँ बिना तेल के सदा जल रही है।'

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर अधम तारोक चंद्र कहते हैं–

'मोन तुइ कोरली ना घौरेर खौबोर दिन गैलो बिफौले।

मौहाजौनेर चापा जिनिश पौरेर हाते धन दिलेरे।।'

मन! तूने स्वयं की खबर नहीं ली, तेरा तो दिन ही व्यर्थ चला गया। महाजन के पास तूने अपना अमूल्य धन सौंप दिया।

हमारी हालत ऐसी है जैसे हमारे पास बहुत धन हो, और हमने बैंक में जमा कर दिया और हम भूल गए। हमारे पास बहुत जवाहरात हों और हमने महाजन के पास रख दिए और हम भूल ही गए। पहले जमाने में लोग धन गड़ाते थे और गड़ाकार भूल ही जाते थे कि कहां गड़ाया है धन? ऐसी ही हालत हमारी है।

हमारे पास परम धन है, धनों का धन है लेकिन हम भूल गए। और वो परम धन है हमारे भीतर आत्मा में छिपा हुआ, हमारी साक्षी आत्मा का जो स्वभाव है वह परम धन है। अमूल्य धन है। उसके बारे में हम भूल गए और सदा मन की सुनते हैं और बाहर ही खोजते रहते हैं। हमारी हालत कुछ ऐसी हो गई जैसे एक भिखारी बरसों–बरसों भीख मांगा और मरते समय उसने एक शर्त रख दी कि मुझे यहीं गड़ाया जाए और जब उस अंतिम समय गड़ाने के लिए गडढा खोदा तो वहां से कई हीरे जवाहरात निकले, जहां बैठ कर वो रोज़ भीख मांगता रहा।

सबकी ऐसी ही हालत है, हम बाहर खोजते रहते हैं धन को, सकून को, तृप्ति को; मगर बाहर नहीं है। जब तक धन नहीं मिलेगा तब तक तृप्ति नहीं मिलेगी और धन बाहर नहीं है। जिसको हम धन कहते हैं, बाहर वह धन नहीं है। असली धन है हमारे भीतर छिपा हुआ 'साक्षी चैतन्य'।

और उस धन को पाने के लिए हमें सार और असार को परखने की क्षमता बनानी होगी। वो क्षमता लेकर हम पैदा हुए हैं, विवेक जिसे कहते हैं। विवेक का अर्थ ही है सार और असार में अंतर पहचानना। असार को छोड़ना, सार को ग्रहण करना। जब तक हम असार के पीछे भागते रहेंगे तब तक हमारा मन खण्डित रहेगा। और जब तक हमारा मन खण्डित है तब तक हम संयम में रह ही नहीं सकते। सार को ग्रहण कर ही नहीं सकते। इसलिए जब पुराने जमाने में लोग सन्यास लेते थे तो सन्यासी का नाम रख दिया जाता था 'अखण्डानंद'।

हमारा मन कैसा है? जब तक हम साधक नहीं है, जब तक हम सन्यासी नहीं हैं, तब तक संसार में एक सामान्य व्यक्ति का मन हजारों दिशाओं में भाग रहा है। कोई दिशा कहीं खींचती है, कोई दिशा कहीं खींचती है। हमारा मन पारे की तरह है। उसे पकड़ा ही नहीं जा सकता। जैसे पारा गिरे हाथ से और उसे पकड़ने की कोशिश करो, उसे जमाने की कोशिश करो, जमा नहीं सकते। हाथ से छितर–बितर जाएगा। और जब तक मन की यह हालत है, टूटा–टूटा मन; इंटग्रेटिड हम नहीं है, एकीकृत नहीं हैं, अखंड जब तक नहीं है तो प्रभु के चरणों में हम स्वीकार नहीं हो सकते। प्रभु के चरणों में वही स्वीकार होता है जो अखंड है, इन्टग्रेटिड है।

इसीलिए कुछ परम्पराएं जैसे इस्लाम में एक परम्परा है पख्तूनों की। इसमें जब व्यक्ति का अंग भंग हो गया। मान लो कोई शरीर का अंग टूट गया, हाथ टूट गया या उसे ऑपरेट करना

पड़ा तो उस अंग को रख लिया जाता है। जब व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके साथ, उस मृत शरीर के साथ वो टूटा हुआ अंग रख दिया जाता है और फिर उसे दफनाया जाता है।

लेकिन असली बात अंग–भंग होने की नहीं है। यह मन जो भंग है हमारा, यह जो चेतना कटी–कटी हो गई है, वहां अखंड होना है। और वो अखंड कैसे होंगे हम? अपने भीतर जाकर। जब तक हम भीतर नहीं जाएंगे, जब तक हमारा मन बाहर–बाहर है खंडित ही रहेगा। हमारे मन का हाल ऐसा है जैसे हम बाज़ार कुछ खरीदने जाएं और जो खरीदने गए थे वो ही भूल जाएं। ऐसी ही तो हमारी हालत है। इस दुनिया में कुछ लेने आए थे, लेकर कुछ जाने आए थे और हम कुछ ओर ही लेकर चले जाते हैं।

'अरमान थे हंसी के, अश्कों में ढल गए।
आए बहार बन के खिजां बन के ढल गए।।
सारे जहां को रोशन कर सकते जिस शमा से
झुलसा दिया गुलशन को और खुद भी जल गए।'

हम ऐसी शमा, ऐसी रोशनी लेकर आते हैं जिससे कि हम दुनिया को रोशन कर सकते हैं। लेकिन उलटा करते हैं, रोशन तो नहीं कर सकते, उसी रोशनी से, उसी शमा से जल–भुनकर खुद भी झुलस जाते और दूसरे को भी झुलसा देते। जो शमा रोशनी दे सकती थी, उसी से हम जल–भुन कर दुखी होकर हाथ में राख लेकर लौटते हैं। जबकी हम बहार बन कर लौट सकते हैं।

'अरमान थे हंसी के, अश्कों में ढल गए।
आए बहार बन के खिजां बन के ढल गए।।
हकीकत न जान पाए गम और खुशी की हम।
थे गुल गले लगाए शूलों से छल गए।।'

'नौय दौरजा आठारो कोठा, कोठाय, कोठाय धौन।
मोनी–मुक्ता, हीरा–मानिक आछे औगोनौन,
ओरे, कोन कोठाय कोन रौत्नो आछे
शिखली ना तोर गुरुर काछे रे।'

अधम तारोक चंद्र कहते हैं– नौ दरवाजा जिसके अठारह कोठी और प्रत्येक कोठी में अमूल्य धन माणिक, मुक्ता, हीरा समाया है।

कौन सी कोठी में कौन सा रत्न समाया है, इसे गुरु के पास ही सीखना पड़ता है। हमारा मन ऐसा है, जैसे कोई द्वार होता है। प्रत्येक द्वार की संभावना है, जिस द्वार से हम भीतर आते हैं उसी द्वार से हम बाहर आ सकते हैं। मन ही हमारा द्वार है। इस द्वार से हम भीतर भी आ सकते हैं और बाहर भी जा सकते हैं। जैसे आप इस कमरे में आए, द्वार एक ही है जिस द्वार पर एक तख्ती लगी हुई है जिसपे 'इन' लिखा हुआ है और एक तरफ 'आउट' लिखा हुआ है। द्वार वही है, आपकी स्वतंत्रता है आप भीतर आएंगे या बाहर जाएंगे। ऐसे ही अगर हमें रत्न की अनुभूति करनी है, भीतर आनंद की अनुभूति करनी है, प्रभु की अनुभूति करनी है तो हमें द्वार से भीतर आना होगा, मन के द्वार से भीतर आना होगा। तारोक चंद्र कहते हैं–

'नौय दौरजा आठारो कोठा,

नौ दरवाजें हैं, यह नौ दरवाज़े क्या हैं? ...अलग–अलग चक्र हैं...जैसे मूलाधर चक्र है। मूलाधार चक्र से बाहर जाएंगे तो कामनाओं से घिरेंगे।

'झुलसा दिया गुलशन को और खुद भी जल गए।'

दुखी होंगे पीड़ित होंगे, प्रताड़ित होंगे। उसी दरवाज़े से जब हम भीतर आएंगे तो हमें शक्ति का अनुभव होगा। दिव्य शक्ति का अनुभव होगा, द्वार वही है जो बाहर ले गया था और हमें दरिद्र बना दिया था। वो ही हमें समृद्ध बना देता है, शक्ति से भर देता है।

दूसरा चक्र–स्वाधिष्ठान– इसी द्वार से जब हम बाहर जाएंगे तो सुख और दुख, सुख तो कम दुख के झोंकों में झूलते रहेंगे। सुख और दुख के झूले में झूलते रहेंगे। हर सुख, दुख में ले जाएगा और हर दुख थोड़ी देर के लिए क्षणिक सुख लाएगा। लेकिन इसी द्वार से स्वाधिष्ठान से जब हम भीतर आएंगे तो आनंद की अनुभूति होगी। सुख–दुख के पार सदा आनंद।

मणिपुर चक्र है– मणिपुर चक्र से जब हम बाहर जाएंगे तो भय में जिएंगे। लेकिन जब भीतर आ जाएंगे तो हमें दिव्य मंगल की अनुभूति होगी। पता चलेगा हम कितने सुरक्षित हैं? हमारा जीवन अस्तित्व मंगल दिशा में ले जा रहा है, इसका अहसास प्रतिपल होता रहेगा। ऐसे ही मणिपुर चक्र के बाद अनाहत चक्र। अनाहत चक्र से बाहर हम जाएंगे, हमारी उमंग कितने दिन उमंग रहेगी? बाहर एक दिन आदमी निराश हताश, सब कुछ पुराना पड़ जाता है बाहर। लेकिन वही चक्र से जब हम भीतर आते हैं तो उमंग से भर जाते हैं। प्रेम से भर जाते हैं, दिव्य प्रेम से। ऐसा प्रेम जो सदा है। मौसमी नहीं है, शाश्वत है, सदा–सदा है। जीवन में भी है, मृत्यु पर्यन्त भी है।

ऐसे ही विशुद्ध चक्र से जब हम बाहर जाते हैं तो हमें कितनी तरह से दुश्मन मिलते हैं, दुश्मनी मिलती है। मित्र मिलते हैं लेकिन जो आज मित्र है वही कल दुश्मन बन जाएगा, भावी दुश्मन। और जो दुश्मन है वो कभी मित्र हो सकता है लेकिन जब हम विशुद्ध चक्र से भीतर आते हैं तो हमें परम मैत्री की अनुभूति होगी। परमात्मा या अस्तित्व हमारे लिए मित्रता पूर्ण है। वो हमारा सुन्दर कर रहा है, हमारे लिए जो शुभ है, कर रहा है। ऐसे ही आज्ञा चक्र से जब हम बाहर जाएंगे तो हम हमेशा अशांत होंगे, भीतर आएंगे तो नाद और नूर की अनुभूति में डूब जाएंगे।

जब हम सहस्त्रार पर जाएंगे तो ऊर्जा का अनुभव होगा।

और ऐसे ही पीछे फिर सोम चक्र है जिससे हमें खुमारी का अनुभव होगा, चैतन्य का अनुभव होगा। तो यह नौ दरवाजें हैं जिनके ज़रिये हमारी चेतना हमारे शरीर के संपर्क में आती है। और विभिन्न अनुभूतियां देती है। और जब हम बाहर जाते हैं तो इन अनुभूतियों से वंचित रह जाते हैं।

कौन सी कोठी में कौन सा रत्न समाया है इसे तो गुरु के पास ही सीखना पड़ता है और याद रखना यह चक्रों की साधना गुरु के सानिध्य में ही संभव है।

तारोक चंद्र कहते हैं–

'शौठेर शौंगे प्रेम कोरीये रोयेछो डूबिये,
दिनेर पौर दिन गोये जाय औन्धेर मौतो होये,
ओरे, कामक्रोध छौयटि रिपू

इशाराय कूपौथे चालाय रे।।'

ढोंगी के साथ प्रेम करके दिन पर दिन अंधे की तरह दिन बिता रहे हो, काम–क्रोध जैसे छः रिपु के इशारे पर चलकर कुपथ पर चलते हो।

ढोंगी...हमारा मन ढोंगी है। जब तक हमारा मन बाहर से प्रभावित हो रहा है, ढोंगी ही रहेगा। बाहर बहता हुआ मन ढोंगी ही रहेगा। जब तक हम प्रमाणिक नहीं हैं तब तक हम ढोंगी हैं। जिसे हम प्रेम करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। अगर हम संसार को प्रेम करते हैं, अगर हम आकार को प्रेम करते हैं तो हम अप्रमाणिक हो जाते हैं, ढोंगी हो जाते हैं। भक्ति भी कर रहे हैं तो दूसरों को दिखाने के लिए। उपवास भी कर रहे हैं तो दूसरों से यश पाने के लिए, कीर्ति पाने के लिए। यह है ढोंग।

तरोक चंद्र कहते हैं कि तुमने दिन अंधे की तरह बिताए। प्रीति अगर संसार से है, आकार से है तो हम अंधे ही हैं क्योंकि वास्तविक स्वरूप को जान ही नहीं रहे। आकार तो है ही नहीं। हर आकार में, हर पदार्थ में भीतर चैतन्य ही तो छुपा हुआ है। तो हम जो वास्तविक स्वरूप है उसके प्रति आंख ही बंद किए हुए हैं तो अंधे ही हैं। बाहर जाना कुपथ है। तो कैसे हम बाहर से भीतर आएं? इसके लिए हमें गुरु प्रेरणा देता है। इसके लिए प्रेरणा मिलती है सत्संग में।

'औधोम तारोकचौन्द्रो बौले मोनेते भाबिये,
घौरेरताला बौन्दो रोइला देखले ना खूलिये।
घौरे जोलेछे बाती, दिबा–राती,
जोलेछे ताहा बिना तोइले रे।।'

अधम तारोक चंद्र अपने मन में सोचते हैं कि घर में ताला लगाकर उसे कभी खोलकर भी नहीं देखा। उस घर में दिव्य बाती सदा जल रही है, जहाँ दिवा–रात्रि का कोई बंधन नहीं है। अमर ज्योति वहाँ बिना तेल के सदा जल रही है।

यारी साहिब का एक शब्द है–

'बिरहिनी मंदिर दियना बार।'

भीतर एक ऐसा दीया निरंतर जल रहा है। जब हमारा मन बाहर से लौटकर भीतर आता है। आज्ञाचक्र के माध्यम से जब हम भीतर आते हैं तो हम पाते हैं एक रोशनी जो सदा–सदा जलती है। ऐसी चांदनी जो शाश्वत है, सदा छाए रहती है। भीतर आकर ही इस चांदनी का, इस बाती का, इस रोशनी का अनुभव होता है।

आएं, यारी साहब के वचन को समझाते हुए परम गुरु क्या कहते हैं; उन्हें सुनते हैं–

'तुम्हें मैं कुंजी देता हूं– बिरहिनी मंदिर दियना बार!
बिन बाती बिन तेल जुगति सो बिन दीपक उजियार।

मैं तुम्हें एक ऐसी युक्ति देता हूं। एक ऐसा चमत्कार तुम्हारे भीतर घट सकता है; क्योंकि मेरे भीतर घटा है। जो एक के भीतर घटा है, सबके भीतर घट सकता है। बिन बाती बिन तेल! वहां भीतर एक ज्योति जलती है; उसमें तेल नहीं डालना पड़ता है, उसमें बाती नहीं

लगानी पड़ती। वहां कोई दीपक भी है यह कहना ठीक नहीं; मगर उजियारा बहुत है, रोशनी बहुत है। जिन दीयों में तेल भरना पड़ता है, वे तो बुझ जाएंगे, आज नहीं कल बुझ जाएंगे, तेल चुकेगा और बुझ जाएंगे। जिनकी बाती लगानी पड़ती है, बाती जल जाएगी और बुझ जाएंगे। जिन्हें दीयों की जरूरत पड़ती है— मिट्टी के दीए हैं, कभी भी टूट जाएंगे।

एक ऐसी ज्योति खोजनी है...और वह ज्योति हमारा स्वरूप–सिद्ध अधिकार है। हम ही हैं वह ज्योति— न जहां तेल है, न बाती है, न दीया है और उजियारा बहुत! मगर तुमने तो भीतर आंख फेरनी ही बंद कर दी। तुम्हारी आंखें तो बाहर ऐसी अटक गई हैं कि भूल ही गई हैं कि भीतर भी एक लोक है। ...दौड़े चले जाते हो। बाहर की चीजों में बहुत चमक मालूम पड़ती है। बहुत चौंधियाए हुए हो।

बिन बाती बिन तेल जुगति सो बिन दीपक उजियार।

यह अपूर्व घटना घटती है साधक को। और जिस दिन यह घटती है उस दिन ही परमात्मा का रहस्य पहली दफा अनुभव में आता है— रहस्यों का रहस्य, कि हमारे भीतर एक शाश्वत उजियाला है, जो जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी रहेगा। और ऐसा उजियाला, जिसका कोई कारण नहीं है, जो अकारण है। चूंकि अकारण है, इसलिए बुझाया नहीं जा सकता। चूंकि अकारण है इसलिए मौत भी उसे मिटा न सकेगी। मिट्टी का दीया होता तो मौत मिटा देती। तुम देह नहीं हो। और अगर तेल भरा होता, तो कभी न कभी चूक ही जाता। कितना ही तेल हो, कभी न कभी चूक जाएगा।

यह सूरज करोड़ों–करोड़ों वर्षों से अरबों वर्षों से रोशनी दे रहा है। मगर वैज्ञानिक कहते हैं, यह भी चूक रहा है। इसका तेल भी चूका जा रहा है, इसका ईंधन भी चूका जा रहा है। घबड़ा मत जाना, जल्दी नहीं चूकने वाला है। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कम से कम चार हजार साल और...मगर सूरज भी चूक जाएगा। सूरज कितना बड़ा दीया है! इस जमीन से साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन उसकी रोशनी भी रोज–रोज झरती जाती है, रोज–रोज कम होती जाती है। कितने ही बड़े खजाने हों, एक न एक दिन चूक ही जाएंगे— देर–अबेर। सिर्फ एक खजाना नहीं चूकता है— वह परमात्मा का है। सिर्फ एक ज्योति नहीं बुझती है— वह परमात्मा की है। जागो! तुम उस ज्योति के धनी हो। तुम उस ज्योति के मालिक हो। तुम्हें बहुमूल्य से बहुमूल्य भेंट दी गई है। और अभागे हो तुम कि उस भेंट को न तुम देखते हो, न उस भेंट का सम्मान करते हो, न उस भेंट के लिए तुमने परमात्मा को कोई धन्यवाद दिया है।'

हरि ओम तत्सत्। जय ओशो।

परम बन्धु : अवर्णनीय

‘जे देखे शे बंधुर रूप शे तो आर भूलभे ना।
शे रूप देखे आशेकोईते माना।।
शे रूप ना मिले तुलू ना।
दौरपोनी जे रूप देखे छे तार मोनेर आंधर घुचे गेछे।
रूपे नायन दिए आछे दूर गछे पारेर भाबो ना।।
सौदाय थाके रूप धियाने, देब–देबी से मानबे केने।
मोन दिए से श्री चरणें, गुरू भिन्यों अन्यों रूप माने ना।।
तार शाब्दों शादोन गोपिर सोने भॉजे गुरू बार्ते माने।
प्राप्ति होय तार नित्तोस्थाने ऑधीन पांजे मोनेर घौर गैलोना।।’

‘जिसने उस परम बन्धु के स्वरूप को देख लिया वो फिर उसे भूल नहीं सकता। उस रूप को देख तो सकते हो पर कहने के लिए मनाही है। उस रूप की तुलना तुम किसी से नहीं कर सकते।

जिसने भी हृदय के दर्पण में उस रूप को एक बार देख लिया, उसका तो मन का सारा अंधेरा दूर हो गया। और पार की चिंता भी नहीं रहेगी।

जो सदा उस परम बंधु के ध्यान में रहता है, वो किसी और देवी–देवता को नहीं मानता। गुरु को छोड़ और कोई रूप को नहीं मानता, केवल गुरु चरण का ही ध्यान करता है।

उसका साध्य–साधन सब गोपी संग ही है, अर्थात केवल प्रेम की भक्ति की बात ही जानता है। वर्तमान में रहकर केवल गुरु भजता है। पंचशाह कहते हैं– गुरु की प्राप्ति परम नित्य स्थान में होती है। किंतु मेरे मन का फेर ना गया।’

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

बाउल फकीर पंच शाह कहते हैं–

'जे देखे शे बंधुर रूप शे तो आर भूलभे ना।
शे रूप देखे आशेकोईते माना।
शे रूप ना मिले तुलू ना।।'

जिसने उस परम बन्धु के स्वरूप को देख लिया वो फिर उसे भूल नहीं सकता। उस रूप को देख तो सकते हो पर कहने के लिए मनाही है। उस रूप की तुलना तुम किसी से नहीं कर सकते।

महावीर को जब पहली दफा ज्ञान उपलब्ध हुआ, जब उन्होंने पहली उद्घोषणा दी तो उसे सुनने के लिए कहते हैं केवल देवता ही आए, देवताओं के सिवाय और कोई भी नहीं आया। क्योंकि मनुष्य इसे समझ हीं नहीं सकते थे। देवताओं ने काफी प्रार्थना की उनसे कि आप कुछ ऐसा बोलो, ऐसी भाषा में बोलो जो मनुष्य को समझ में आए और फिर उन्होंने बाद में जो भाषा बोली वो मनुष्य को समझ में आई। देवताओं के समक्ष जो उन्होंने उद्घोषणा की थी वह शुद्धतम थी। वह क्या घोषणा थी? किसी को आज तक नहीं पता। लेकिन शुद्धतम बात देवताओं के समक्ष रखी थी उन्होनें। मनुष्य के समक्ष जब भी सत्य शब्दों में लाया जाता है, सत्य आते–आते सत्य नहीं रह जाता।

कारण है उसका। लाओत्सु कहता है कि सत्य कहा नहीं जा सकता और कहते हैं कि कहते ही वह झूठ हो जाता है। क्योंकि शब्दों का जो चौखटा है वह छोटा है और सत्य तो विराट है, वह कैसे उस फ्रेम के ज़रिये आएगा? कैसे उस चौखटे के माध्यम से आएगा? संभव ही नहीं है। इसलिए क्षुद्र से विराट कैसे व्यक्त किया जा सकता है? शब्दों की सीमा है। उस असीम को जब भी हम शब्दों के माध्यम से लाते हैं, निश्चित रूप से वह सीमा की भाषा बोलने लगते हैं, और सत्य जड़ हो जाता है।

कुछ ऐसा ही होता है जैसे आकाश को मुट्ठी में बांधा हो, कुछ ऐसा ही होता है कि सूर्य की किसी ने पेंटिंग बनाई हो और वो कहे कि इससे सूर्य का अनुभव हो रहा है। सूर्य की पेंटिंग कैसे ऊष्मा देगी? कैसे वह किरणों का स्पर्श देगी? हिमालय की कोई पेंटिंग बना ले और कहे कि मैंने कहने की कोशिश की है हिमालय ऐसा है। कैसे हिमालय की शीतलता आएगी? कैसे वो उत्तुंग शिखरों की शांति आएगी? ये संभव नहीं है।

इसलिए जब भी सत्य कहा जाता है; कहने की मनाही है, लालन शाह कह रहे हैं। मनाही सिर्फ इसलिए है क्योंकि सत्य कहा ही नहीं जा सकता। फिर कहते हैं जिसने उस परम बन्धु के स्वरूप को देख लिया, वह फिर उसे नहीं भूल सकता। कैसे भूल सकता है? हम बाहर हिमालय का सौन्दर्य देखते हैं तो उस विराटता को नहीं भूल पाते। तो उस परम बन्धु की विराटता को कैसे भूल सकते हैं? उसका परम प्रेम कैसे भूल सकते हैं?

इस संसार में एक बच्चा जिसकी मां है, पिता हैं; अपने माता–पिता का प्रेम क्या वो भूल सकता है? नहीं भूल सकता। क्या उसे याद करने की जरूरत पड़ती है कि मेरी मां है, मेरे पिता हैं? क्या वो मां का जप करता है या पिता का जप करता है? इसकी कोई जरूरत नहीं है। एहसास है कि मां है, पिता है और उनका प्रेम है। ऐसे ही उस परम बन्धु का निरंतर जिसने स्वरूप देख लिया, उसे एहसास बना है, वो भूल नहीं सकता। वह उन्हें याद करे जिसे भुलाया हो कभी। हमने

उनको न भुलाया न कभी याद किया। फिर कोई विधि की जरूरत नहीं, फिर कोई जप की जरूरत नहीं, फिर कोई राम–राम रटने की जरूरत नहीं। बस उसका एहसास निरंतर बना रहता है।

'दौरपोनी जे रूप देखे छे तार मोनेर आंधर घुचे गेछे।
रूपे नायन दिंए आछे दूर गछे पारेर भाबो ना।।'

जिसने भी ह्रदय के दर्पण में उस रूप को एक बार देख लिया उसका तो मन का सारा अंधेरा दूर हो गया। और पार की चिंता भी नहीं रहेगी। ह्रदय के दर्पण में जब उस अरूप की झलक आती है, उस परम प्रेम की झलक मिलती है तो उसका सारा अंधेरा दूर हो जाता है।

पार की चिंता किसे रहती है? ...पार की चिंता यानी मृत्यु का भय...मृत्यु का भय उसे ही रहता है जिसे अमृत का अनुभव ना हुआ हो। जिसने अपने अमृत स्वरूप को अपने ह्रदय के दर्पण में देख लिया, फिर क्या उसे पार की चिंता रहेगी। वो इस पार भी आनंद में है, उस पार भी आनंद में है। और जिसने उसके रूप को अपने दर्पण में नहीं देखा, वह सदा घबराया हुआ ही है। सदा चिंतित है, सदा बेचैन है।

'बेचैन बहुत फिरना, घबराए हुए रहना।
एक आग सी जज़्बों की दहकाए हुए रहना।
आदत ही बना ली है, तुमने तो मुनीर अपनी।
जिस शहर में भी रहना उकताए हुए रहना।।'

हम जहां भी रहते हैं, उकताए हुए रहते हैं। भीतर आनंद स्वरूप की झलक नहीं मिली तो हम जहां भी जाएंगे, हम स्वयं ही तो जाएंगे, जैसे हैं वैसे ही तो जाएंगे। तो कहां से वो आनंद आएगा, जब तक हमने आत्मानंद–सागर में गोता नहीं लगाया। कहते हैं लालन शाह जिसने भी उसे ह्रदय के दर्पण में एक बार देख लिया उसके मन का सारा अंधेरा दूर हो गया। अंधेरे का दूर होना यानी संदेह दूर हो जाता है।

एक बार की घटना है, जीसस एक बार चालीस दिन की साधना कर रहे थे। ऊंचे पर्वत पर बैठे हुए थे, साधना चल रही थी उनकी, तो अचानक एक दिन शैतान प्रगट हो जाता है कि तुम पैगम्बर हो, तुम ईश्वर के पुत्र हो और सुना है जो पैगम्बर है उन्हें तो देवदूत अपने हाथों में उठाए फिरते हैं। उनकी रक्षा करने को सदा देवदूत आतुर रहते हैं तो तुम एक परीक्षा कर लो। तुम इस पहाड़ के नीचे एक बार छलांग लगाओ और देखो देवदूत तुम्हें बचाते हैं या नहीं। तो तुम्हें उत्तर भी मिल जाएगा कि तुम पैगम्बर हो कि नहीं। ऐसा शास्त्रों में लिखा है कि देवदूत सदा तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम्हें हाथों हाथ उठाएंगे।

जीसस ने कहा बिल्कुल ठीक कहते हो। लेकिन शास्त्रों में यह भी लिखा है कि परीक्षा वह लेते हैं जिनके भीतर संदेह है मुझे तो संदेह है ही नहीं। तो मैं कैसे परीक्षा ले सकता हूं? मुझे तो मालूम है कि मेरी रक्षा तो परमात्मा कर रहा है, देवदूत सदा मेरी रक्षा के लिए आतुर हैं। मुझे संदेह ही नहीं है तो मैं परीक्षा किस बात की लूं? जीवन का सारा संदेह सारा अंधेरा विदा हो जाता है जब एक बार उसको अपने भीतर अनुभव कर लिया तो।

'सौदाय थाके रूप धियाने, देब–देबी से मानबे केने।
मोन दिंए से श्री चरणें, गुरू भिन्यों अन्यों रूप माने ना।।'

जो सदा उस परम बन्धु के ध्यान में रहता है, वो किसी और देवी–देवता को नहीं मानता।

गुरु को छोड़ और कोई रूप को नहीं मानता केवल गुरु चरण का ही ध्यान करता है। वो किसी और देवी–देवता को नहीं मानता, जो उस परम बन्धु के ध्यान में रहता है। देवी और देवता यानी जो देने वाले हैं, देने वाला अर्थात् देवता। जिसके भीतर मांग है वो देवी–देवता को मानेगा, देवी–देवता की पूज़ा करेगा। जो मांग के पार हो गया है, वो उस परम बन्धु के ध्यान में रहता है। उसकी मांग विदा हो चुकी है। अब वह क्यों देवी–देवता को मानेगा? उसकी जरूरत खत्म हो गई, उसकी मांग विदा हो गई। वह किसी और देवी–देवता को नहीं मानता और दूसरी बात ये कि उसके सब देवी–देवता उसके गुरु में हैं। गुरु को छोड़ वह किसी रूप में नहीं मानता।

'गुरु ब्रह्मा, गुरू विष्णु है, गुरू शंकर गुरू साध।
दूलन गुरू गोविन्द भजो, गुरू मत अगम अगात।।'

गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही शिव है। अब उसने गुरु में ही सारे देवता, त्रिदेव के दर्शन कर लिए। अब और दर्शन को बाकी क्या है? और क्या देखने को बाकी है। 'आप से दिल लगाकर देख लिया।'

जब गुरु के चरणों में ह्रदय झुक जाता है तो सारा जहां मिल जाता है। नानक देव के पास एक बार एक शिष्य आता है और शिष्य ने कहा कि मैंने सुना है कि आप एक ऐसी ध्वनि निकालते हो जिससे कि व्यक्ति राख हो जाता है और फिर आप उसी ध्वनि से जीवित भी कर देते हो।

नानक ने कहा ठीक है तुम इतना पूछ रहे हो और बार–बार आग्रह करते हो तो ऐसा करना तुम कल सुबह चार बजे आ जाना। वो बार–बार आग्रह करता था कि मुझे भी कुछ बताएं, मेरे सामने भी ये चमत्कार पेश करें। नानक देव जी ने अमृत वेले में बुलाया और वो पहुंच गया चार बजे। नानक देव ने कहा तुम मेरे सामने शांत होकर बैठ जाओ। व्यक्ति शांत होकर बैठ गया। बैठा रहा, बैठा रहा कहते हैं नानक ने एक अवाज निकाली, ओम कहा और वो व्यक्ति राख हो गया। और उसके बाद पुनः फिर एक ध्वनि निकाली और फिर वह व्यक्ति जीवित हो गया।

परम गुरु ओशो कहते हैं निश्चित रूप से वह ध्वनि ओम की ही हो सकती है। जिससे की जीवन निर्मित होता है, जिसमें की जीवन लीन होता है। गुरु के चरणों में सारे रहस्य खुलते हैं। जो गुरु के चरण का ध्यान करता है, उसके जीवन में सारे रहस्य खुल जाते हैं। वह गुरु को छोड़कर और किसी रूप का ध्यान करने की जरूरत ही नहीं समझता है। उसको जीवन के राज मिल गए। जीवन का रहस्य मिल गया। जीवन संपदा मिल गई।

'तार शाब्दों शादोन गोपिर सोने भॉजे गुरू बार्ते माने।
प्राप्ति होय तार नित्तोस्थाने ऑधीन पांजे मोनेर घौर गैलोना।।'

उसका साध्य–साधन सब गोपी संग ही है अर्थात केवल प्रेम की भक्ति की बात ही जानता है, वर्तमान में रहकर केवल गुरु भजता है।

पंचशाह कहते हैं– गुरु की प्राप्ति परम शाश्वत आकाश में, नित्य–स्थान में होती है। किंतु मेरे मन का फेर ना गया, अतः सब कुछ जानकर भी भटकता फिरता है। मन की आदत है भटकने की, मन कभी तृप्त नहीं होता। सब जानकर, उसे पता है कि बाहर कभी कुछ नहीं मिला है लेकिन फिर भी वह भटकता ही रहता है बाहर। मन की आदत है। जब तक हम मन में हैं। भटकते ही रहेंगे। मन के पार आना होगा। वर्तमान में रहकर केवल गुरु भजना है।

पंच शाह कहते हैं, वर्तमान में कैसे रहें? गुरु ही बताता है वर्तमान में रहने की कला। अगर हम वर्तमान में रहने की कोशिश करेंगे तो हर कोशिश हमें वर्तमान से चूक देती जाएगी और हम

कहीं ओर हो जाएंगे। वर्तमान का क्षण चुकता जाएगा। गुरु के चरणों में बैठकर, गुरु के प्रेम में डूबकर अचानक हम पाते हैं कि हम वर्तमान में आ गए। वर्तमान के क्षण में आ गए। ना आगे की चिंता ना पीछे की फिकर, सब कुछ छूट जाता है, टाईम–लेसनेस घटित हो जाती है।

कभी किसी ने अनुभव किया होगा बाहर किसी दिन गए तो अचानक उगता हुआ सूरज दिखा और ठिठक गए। पता ही नहीं चला कब वर्तमान के क्षण में आ गए। और जीवन में आनंद ही आनंद भर गया। सूरज देखने से तो आनंद नहीं आया। वो जो वर्तमान के क्षण में हम ठहर गए उसका आनंद था। लेकिन अब कोई सूरज देखने जाए ये सोच कर कि वर्तमान में ठहरना हो जाता है। इसलिए चलो आज दूसरे दिन फिर सुबह उठेंगे फिर सूर्य उदय देखेंगे। तो फिर दूसरे दिन वो बात नहीं बनने वाली। जिस दिन हम विधि के रूप में करेंगे उस दिन बात नहीं बनेगी।

इसलिए प्रेम हमें वर्तमान में लाता है। गुरु प्रेम गुरु के चरण में बैठने की कला हमें वर्तमान में रहना सिखाती है। वर्तमान ही परमात्मा की झलक देता है। वर्तमान ही आनंद को बरसा देता है हमारे ऊपर। भूत और भविष्य, ये दो द्वन्द्व समस्त दुखों के कारण हैं जिनके बारे में कबीर साहब कहते हैं– दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय, चलती चक्खी देखकर दिया कबीरा रोय।

द्वन्द्वातीत दशा में पहुंचने के लिए, परमगुरु ओशो मन का अतिक्रमण करने का सूत्र बताते हैं। आएं, हम वह सूत्र सुनें–

'मन हमेशा दुविधा में है। मन में दुविधा है– करूं, न करूं? और ऐसा नहीं है कि कोई बड़े–बड़े सवालों में दुविधा है, छोटे–छोटे सवालों में– इस फिल्म को देखने जाऊं कि उस फिल्म को देखने जाऊं? यह साड़ी पहनूं कि वह साड़ी पहनूं? और घंटों लग जाते हैं यही तय करने में कि कौन सी साड़ी पहनूं। मन दुविधा है। ताला लगा कर लोग जाते हैं घर में, फिर दस–पांच कदम के बाद लौट आते हैं और खटखटा कर देखते हैं– लगा गए कि नहीं। जो होशियार हैं, वे तो और भी गजब कर देते हैं।

मुल्ला नसरूद्दीन की पत्नी उसे कह गई कि दरवाजे पर नजर रखना। गई थी बाहर शादी–विवाह में किसी के घर और देर से लौटेगी रात को। मुल्ला किसी तरह थोड़ी बहुत तो देखता रहा दरवाजे को अब कब तक देखता रहे? उसे जाना है मधुशाला, सो उसने उखाड़ा दरवाजा, रखा कंधे पर और चल पड़ा। रास्ते में पत्नी आती थी। वह बोली कि कहां जा रहे हो? दरवाजा कहां ले जा रहे हो?

मुल्ला ने कहा तू कह गई कि दरवाजे पर नजर रखना। अब कब तक वहीं बैठा रहूं? तो रखूंगा दरवाजे पर नजर.. अब जहां भी बैठूंगा वहीं पर सामने रख लूंगा।

मन का अर्थ ही यही होता है कि जो सदा बंटा हुआ है, जो सदा द्वंद्व में है– कहता है बाएं चलो, कहता है दाएं चलो; जो कभी एक जूट नहीं होता। और उसको एक जूट करने का एक ही उपाय है कि जीवन में कुछ ऐसे निष्कर्ष लो जो तुम्हारी सारी शैली को बदल जाएं, जो तुम्हें आमूल रूपांतरित कर जाएं। जीवन में कुछ ऐसे निष्कर्ष लो कि वे निष्कर्ष तुम्हारे टूटे हुए खंडों को जोड़ जाएं।'

हरि ओम तत्सत्। जय ओशो।